लेख संग्रह

श्री पीताम्बरापीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु प. पू. श्री अनन्त श्री स्वामीजी
महाराज दतिया रचित अभूतपूर्व
लेख संग्रह

प्रकाशक :-
श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया (म.प्र.)

लेख-संग्रह

卐

परमपूज्य राष्ट्रगुरु
श्री अनन्तश्रीस्वामी जी महाराज
(ब्रह्मलीन)

卐

✿ प्रकाशक ✿
श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया, (म.प्र.)

प्रकाशक -

श्री पीताम्बरा पीठ

दतिया (म.प्र.)

तृतीय आवृत्ति : संवत् 2053

सन् 1995

प्रति-2000

चतुर्थ आवृत्ति 2058

सन् 2001

प्रति - 2000

पंचम आवृत्ति : संवत् 2065

प्रति - 3000 सन् 2008

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य : 60=00 रुपये

मुद्रक -

शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.

नयागांव, ग्वालियर रोड, झाँसी (उ.प्र.)

फोन नं. - 0510-2441092

भूमिका

प्रस्तुत ''लेख-संग्रह'' परम पूज्य राष्ट्रगुरु श्री अनन्तश्री स्वामी जी महाराज कृत उस ज्ञान गङ्गा का संग्रहीत रूप है जो समय समय पर 'चण्डी' 'कल्याण' 'सरस्वती' आदि पत्रों में प्रवाहित होती रही है। इस संग्रह में मुख्यत: शाक्त दर्शन एवं शक्ति उपासना सम्बन्धी लेखों का संग्रह किया गया है। परम तत्व की प्राप्ति में शाक्तों की तान्त्रिक उपासना विधि का उपयोग प्राय: सभी धार्मिक सम्प्रदायों में देखने को मिलता है। वैदिक युग के मन्त्र द्रष्टा ऋषि शाक्तों की इस साधना विधि के प्रथम प्रवक्ता एवं प्रयोग कर्ता थे। भगवान परशुराम एवं ऋषि याज्ञवल्क्य तांत्रिक साधक थे जैनों के तांत्रिक ग्रन्थ ''भैरव पद्मावती कल्प'' में शाक्त तन्त्रों का ही ग्रहण किया गया है। बौद्ध स्वयं तान्त्रिक साधक थे और उनका एक नाम वैरोचन बुद्ध भी है जो कि तान्त्रिक नाम है। प्राय: सभी वैष्णव सम्प्रदायों में साधना की तान्त्रिक विधि को ही ग्रहण किया गया है। अद्वैतवादी आचार्य जगद्‌गुरु का भी वही मत है जिसे काश्मीर के शैव एवं शाक्तों ने माना है तथा वसुगुप्त एवं सोमानन्द ने जिसका विस्तार किया है। शाक्तों की यह साधना आर्य भूमि तक ही सीमित रही हो सो बात नहीं, विश्व के अन्यान्य देशों में भी इस साधना का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। ईजिप्त व ईराक, चीन व मङ्गोलिया, तिब्बत तथा बर्मा आदि देशों में भी तान्त्रिक उपासना प्रचलित है। इस प्रकार शक्ति उपासना की सार्वभौमता, सार्वकालिकता एवं सार्वजनीनता का निरूपण इन लेखों में किया गया है।

शाक्त दर्शन श्रुति आगम सम्मत दर्शन है और है मनीषी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की रहस्यमयी साधना। वैदिक वाङ्‌मय में शक्ति तत्व का निरूपण बड़े ही रहस्यमय ढंग से किया गया है जिसे प्रतिभा सम्पन्न

महर्षि ही समझ सकते है। वेदों में शक्तितत्व का निरूपण करने वाले अनेक सूक्त पाये जाते है जिनमें देवी सूक्त, रात्रि सूक्त, सरस्वती सूक्त तो प्रसिद्ध ही हैं। वेदमन्त्रों की मन्त्रशास्त्रीय व्याख्या भी की जा सकती है। इस संग्रह में अनेक मन्त्रों की इसी प्रकार व्याख्या देखने को मिलेगी। पहले अथर्ववेद के आकूति-सूक्तं को ही लें। आकूति इच्छा शक्ति को कहते हैं। इच्छा शक्ति से ही सृष्टि कार्य प्रारम्भ होता है। 'सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्याम्' में भी यही सिद्धान्त निरूपित है। इसी सूक्त की व्याख्या में कादि, हादि एवं सादि क्रमोपासना की सङ्गति वेद मन्त्रों के साथ बैठाई गई है। 'वैदिक शाक्त यज्ञ' में शाक्तों के सत्र का निरूपण किया गया है। सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण में इस सत्र का उल्लेख है। सर्वसिद्धियों का साधक छत्तीस संवत्सर पर्यन्त अनुष्ठित होने वाला यह सत्र है। जिसे शाक्त ऋषि ने यव्यावती नदी के तट पर करके सभी सिद्धियों को प्राप्त किया था। शाक्त ऋषि के इस सत्र की मन्त्रशास्त्रीय व्याख्या है जिनमें शाक्तों का तान्त्रिक साधना के सिद्धान्तों का समन्वय बड़ी ही खूबी के साथ किया गया। 'वेद में शक्तितत्व' नामक लेख में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूक्त के चार मन्त्रों की व्याख्या की गई है। इस सूक्त के देवता विद्युत है। आधुनिक युग के वैज्ञानिकों ने विद्युत के केवल भौतिक रूप को ही समझा है। इस लेख में विद्युत के आध्यात्मिक रूप का भी निरूपण किया गया है।

''चत्वारिश्रृङ्ग' इस मन्त्र की आगम शास्त्रीय व्याख्या की गई है। वेद भाष्यकारों ने इस मन्त्र की यद्यपि अनेक व्याख्यायें प्रस्तुत की है, परन्तु उनसे भिन्न एक नवीन मौलिक चिंतन युक्त व्याख्या यहाँ देखने को मिलेगी। वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक एवं शाबर चार मन्त्र ही चार श्रृंग है, कादि, हादि और सादि ये तीन विद्याएँ ही जिसके तीन पाद

हैं। इस प्रकार तान्त्रिक साधना से अपूर्व मेल रखती हुई व्याख्या आगे बढ़ती है। वैसे तो प्रसङ्गानुकूल प्रायः सभी लेखों मे शक्ति उपासना के वैदिक स्वरूप को प्रकट किया गया है, परन्तु ये तो वैदिक वाङ्मय में शक्ति तत्व के प्रतिपादक विशिष्ट लेख हैं। संहिता ब्राह्मण ग्रन्थों की भाँति उपनिषदों में भी शक्ति उपासना का निरूपण बड़े ही रहस्यमय ढंग से किया गया है। उपनिषद् मन्त्रों में घटित शाक्त सिद्धान्तों के विशिष्ट ज्ञान के लिये तो परमपूज्य राष्ट्रगुरु श्री अनंतश्री स्वामीजी महाराज कृत 'पञ्चोपनिषद्' (प्रकाशभाष्य) प्रश्नोपनिषद् (प्रकाशभाष्य) का ही अध्ययन अपेक्षित है। इस संग्रह में 'ईशोपनिषद् में शक्तिकारण वाद' नामक एक ही लेख का चयन किया गया है। जिसमें ईशोपनिषद् के मन्त्रों का वास्तविक मन्तव्य शक्ति कारणवाद में ही पर्यवसित किया गया है। 'ईशावास्यम्' 'विद्यां चाविद्यां च' सम्भूति एवं 'असम्भूति' आदि पदों की व्याख्या में परमतत्व के शक्ति रूपों को ही स्वीकार कर शक्ति तत्व को ही सृष्टि का मूल कारण सिद्ध किया है। इस प्रकार शाक्त-दर्शन एवं शाक्त-साधना दोनों ही आगम और निगम सम्मत हैं तथा आगम और निगम का भेद निराधार एवं शास्त्र विरुद्ध है।

शैव एवं शाक्त सिद्धातों का मूल केवल वैदिक वाङ्मय में ही देखने को मिलता हो सो बात नहीं, वेदान्त सूत्र एवं गीता आदि ग्रन्थों में भी शक्ति तत्व का संकेत रूप में निर्वचन किया गया है। वेदान्त सूत्रों में 'अक्षराम्बरान्तघृतेः' 'सा च प्रशासनात्' आदि सूत्रों की व्याख्या शक्ति कारणवाद के ही अनुसार की गई है।

'शाक्त-दर्शन' नामक लेख में शाक्तों के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों में शिव एवं विष्णु को प्रधान माना जाता है। शाक्त मत में इसके विपरीत शक्ति तत्व को

प्रमुख माना जाता है। वेदान्त में जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का मूल आधार ब्रह्म है, उसी प्रकार से शाक्त मत में चिति प्रधान शक्ति तत्व ही स्वतंत्र रूप से जगद् रचना का हेतु है। 'प्रत्यभिज्ञा हृदय' में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः' अर्थात् विश्व का कारण चिति प्रधान शक्ति तत्व स्वतन्त्र है। वेदान्त की भांति शाक्त दर्शन से भी शिव शक्ति का रूप धारण करके जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। इस मत में छत्तीस तत्व माने जाते है। पराशक्ति इन छत्तीस तत्वों को धारण करने पर भी इनसे परे है। 'षट् त्रिंशत् तत्वात्मा, तत्वातीता च केवलाविद्या' इसी सिद्धान्त का प्रतिपादक वाक्य है। इन छत्तीस तत्वों का निरूपण 'षट्त्रिंशत् तत्व संदोह' नामक ग्रन्थ में किया गया है। इन तत्वों को शुद्ध तत्व, शुद्धाशुद्ध तत्व एवं अशुद्ध तत्व की तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। उपनिषदोक्त ब्रह्म की भाँति पराशक्ति भी सच्चिदानन्दस्वरूपिणी है। पराशक्ति के आनन्दांश से शिव और शक्ति तत्व, चित अंश से सदाशिव ईश्वर और शुद्ध विद्या, सत् अंश से शेष इकतीस तत्व व्यक्त होते है। शिव शक्ति, सदा शिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या, शुद्ध तत्व, माया, कला, अविद्या, काल, राग, नियति और पुरुष शुद्धाशुद्ध तत्व तथा सांख्य दर्शनानुमोदित शेष चौबीस तत्व अशुद्ध तत्व कहे जाते है। शांकर मत में सृष्टि को ब्रह्म का विवर्त माना जाता है 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' ही वेदान्तियों का सर्वमान्य सिद्धांत है। शाक्त मत में भी विवर्त माना जाता है, परन्तु शाक्तों को जगत् का मिथ्यात्व स्वीकार नहीं। सौन्दर्य लहरी में जगद्गुरु ने परिणामवाद भी माना है। माण्डूक्योपनिषद् के भाष्य में परमपूज्य राष्ट्रगुरु श्री स्वामी जी महाराज ने भी सम्पूर्ण जगत के मिथ्यात्व की कल्पना को निरर्थक बताया है। ''सर्वस्य जगतो मिथ्यात्व कल्पना निरर्थकमेव, भेद मात्रस्य मिथ्यात्वात्।'' भेद मात्र ही मिथ्या है।

शाक्तों के दार्शनिक सिद्धान्तों के निरूपण करने वाले लेखों के अतिरिक्त उपासना सम्बन्धी लेखों का भी संग्रह किया गया है। 'समयाचार' 'परोपासना' एवं ''षट् पारायण विधि'' इसी कोटि के लेख हैं। जिनमें शक्ति

उपासना के रहस्य एवं तान्त्रिक योग का निरूपण किया गया है। शाक्त साधना में मुख्य रूप से दो क्रम माने जाते है-सृष्टि एवं संहार। साधना के भी दो ही प्रकार हैं जिन्हें कालीकुल एवं श्री कुल कहते हैं। नामान्तर से कौलाचार एवं समयाचार भी कहा जाता है। शाक्तों में कौलाचार की ही साधना अधिक प्रसिद्ध है। कौलाचार बाह्य पूजन है एवं समयाचार आन्तरिक। यह शाक्तों का आन्तरिक योग है। यह श्री क्रम की साधना है। समयाचार साधन क्रम पर बहुत ही अल्प सामग्री उपलब्ध है। अस्तु, इस लेख की महती उपयोगिता स्वयं ही सिद्ध है। परोपासना जो अजपा जप नाम से साधकों में प्रसिद्ध है अभेद या अद्वैत सिद्धान्त की साधना है। यह साधना स्वाभाविक गति से श्वास प्रश्वास के साथ सतत चला करती है। अजपा जप जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चला करता है। यह जीवन की अखण्ड साधना है। इस साधना का पूर्ण विधान परोपासना नामक लेख में बताया गया है। 'श्री बगला महाविद्या' लेख में बगलामुखी शब्द की व्युत्पत्ति तथा श्री बगला जी के वैदिक स्वरूप का विवेचन किया गया है। श्री छिन्नमस्ता जी की साधना विषयक सामग्री अत्यन्त दुर्लभ है। गोपनीय होने के कारण अनेक रहस्य लुप्त भी हो चुके हैं। श्री छिन्नमस्ता जी के रहस्यों को प्रकट करने के लिए परम पूज्य राष्ट्रगुरु श्री अनन्तश्री स्वामी जी महाराज ने 'श्री छिन्नमस्ता नित्यार्चन' की रचना की है जो चण्डी कार्यालय अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग से प्रकाशित है। इस लेख में श्री छिन्नमस्ता जी के प्रादुर्भाव एवं संक्षिप्त उपासना विधि के निरूपण के साथ ही प्रसंगानुकूल तान्त्रिक उपासना के व्यापक प्रभाव का भी निरूपण किया गया है।

स्वप्न विज्ञान पर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने पर्याप्त विचार किया है। परन्तु आर्य शास्त्रों कहे हुये से अधिक नहीं बता सके है। पाश्चात्यों की भाँति में स्वप्नविज्ञान का अध्ययन केवल मनोविज्ञान की परिधि तक ही सीमित रहा हो सो बात नहीं। साधना में भी इसका विशिष्ट उपयोग है। तान्त्रिक साधना में स्वप्नानुभूति का विशेष महत्व है। 'स्वप्न विद्या' पृथक

साधना ही है। मन्त्र-साधना में स्वप्न की उपादेयता को दृष्टिगत रखते हुये यह लेख महत् उपयोगी है। इस लेख में स्वप्नविज्ञान पर ज्योतिष-शास्त्रीय एवं आयुर्वेदीय विवेचन के साथ ही वैदिक एवं तान्त्रिक दृष्टि से भी विचार किया गया है। शाक्त सम्प्रदाय के मूर्धन्य ग्रन्थ "देवी भागवत" पर लिखा गया लेख विशेष महत्व का है।

पुराण देवी भागवत् है या श्रीमद्भागवत्-यह सदैव से विवाद का विषय रहा है। प्रस्तुत लेख में अनेक प्रमाणों एवं युक्तियों से देवी भागवत् को ही पुराण सिद्ध किया गया है। सौन्दर्य लहरी के 'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्' पद में मूलाधार के बाद मणिपूर बताया गया है। चक्रों का यह क्रम तान्त्रिक एवं यौगिक पद्धतियों के प्रतिकूल है। विद्वानों की इसी शङ्का का समाधान 'एक समाधान' नामक लघु लेख में किया गया है।

तान्त्रिक पंचांग नामक लेख विद्वानों एवं साधकों के समक्ष नवीन विषय प्रस्तुत करता है। 'तान्त्रिक-पञ्चांग का विज्ञान सौभाग्य के प्रथम पटल में बताया गया है।' इसका पूर्ण एवं क्रमबद्ध ज्ञान अद्यावधि विद्वानों एवं साधकों को अविदित ही था साधना में इसके उपयोग की दृष्टिगत रखते हुये इसके पूर्ण विज्ञान का प्रकाशन उपासकों के लिए परमोपयोगी है। पूर्ण पञ्चाँग तो चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद से प्रकाशित है, इस लेख में तो पञ्चाँग के विज्ञान को ही प्रकट किया गया है।

प्रकृत संग्रह में शाक्तोपासना सम्बन्धी लेखों का तो बाहुल्य है ही साथ ही भारतीय दर्शन के विवादस्पद विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। 'आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति पर चर्चा' एवं 'अमेरिका को संस्कृत में पत्र' इसी श्रेणी के निबन्ध हैं। सर्वोदयी विचारक आचार्य विनोबा भावे ने अपनी ईशावास्यवृत्ति में एक नयी समस्या को जन्म दिया। आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति आपने आत् धातु से सिद्ध की। आत् धातु को पूर्व वैदिक धातु बताते हुये भगवान पाणिनि को इस धातु से अनभिज्ञ बताया तथा कथित लेख में विनोबा जी के मत का खण्डन किया गया है। एवं आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति

निष्पन्न करने वाली अद् भक्षणे, अत् सातत्य गमने आदि धातुओं के औचित्य को सिद्ध कर आत् धातु को निर्मूल बताया गया है। इसी प्रकार से बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त दर्शन के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में भी विद्वानों में अनेक धारणायें प्रचलित है। दोनों दार्शनिक सम्प्रदायों में किंचित् साम्य देखकर विद्वानों ने इस समस्या को जन्म दिया है, परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के भ्रान्ति मूलक मतों का प्रतिपादन किया जाने लगा। शांकर मत को प्रच्छन्न बौद्ध मत बताया गया, जगद्गुरु को नागार्जुन का अनुकरण करता कहा गया और शांकर मत की अप्रतिष्ठा कर बौद्धाचार्यों को उत्कृष्ट स्थान दिया जाने लगा। इस लेख में दर्शन एवं वेदान्त दर्शन में प्रयुक्त 'शून्य' व 'शिव' शब्द के वास्तविक मन्तव्य को प्रगट किया गया है। ये दोनों निर्णायक कोटि के लेख है।

इन लेखों में पाठकों को शास्त्रोक्त सम्यक् विवेचन, मौलिक चिंतन एवं अधिकारपूर्ण विषय प्रतिपादन के सर्वत्र दर्शन होंगे। पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने जिस किसी भी विषय पर लेखनी उठाई है उसे करतला-मलकवत स्पष्ट कर दिया है। यद्यपि लेखों में विषय गाम्भीर्य तथा अप्रतिम पाण्डित्य का ही प्राधान्य है, परन्तु परम तत्व की सिद्धि जैसे दुरूह विषय को सुगम बनाने के 'लिये किसी से न बन पाया इन्कार तेरा' जैसी सहज हृदयङ्गम होने वाली युक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। अनावश्यक विस्तार भय से समास शैली का ही प्रयोग किया गया है अतएव पाठकों को समास में ही व्यास के दर्शन करने होंगे। लेखों की भाषा सुगम एवं शैली सुबोध है परन्तु लेखों की गहनता का अनुभव पाठक वृन्द पुनः पुनः अवलोकन, चिन्तन एवं मनन के पश्चात ही कर सकेंगे। निस्सन्देह ये लेख विद्वानों को अध्ययन एवं चिन्तन की नयी दिशा में प्रवृत्त कर साधकों को समान रूप से उपयोगी होंगे।

दतिया — रामेश्वर तिवारी

प्रकाशकीय
(चतुर्थ संस्करण)

परमपूज्य प्रात: स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित राष्ट्र गुरु श्री स्वामी जी महाराज द्वारा समय-समय पर लिखे गये एवं चण्डी, सरस्वती, कल्याण एवं लोकपथ आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का संग्रह- लेख संग्रह नाम से सर्व प्रथम सन् 67-68 में प्रकाशित हुआ था। तब से आजतक इस संग्रह के तीन संस्करण निकल चुके हैं। यह चौथा संस्करण सुधीजनों एवं जिज्ञासु पाठकों के हितार्थ प्रकाशित करते हुए श्री पीताम्बरा पीठ न्यास मण्डल प्रसन्नता का अनुभव करता है।

इस ग्रंथ की उपयोगिता और साधकों की रुचि तथा ग्रंथ की बढती मांग को देखकर नया संस्करण पुन: प्रकाशित करने का अवसर प्राप्त हुआ यह पीताम्बरापीठ के लिए गौरवास्पद है। हमें खुशी है साथ ही विश्वास है कि, लेख संग्रह का यह नया संस्करण विद्वानों, तंत्र मार्ग के जिज्ञासु पाठकों एवं साधकों के लिये महत्वपूर्ण उपयोगी सिद्ध होगा।

गीता जयंती, २०५८
२६ दिसम्बर, २००१

श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म.प्र.)

प्रकाशकीय

(पाँचवा संस्करण)

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित राष्ट्र गुरु श्री स्वामी जी महाराज की लेखनी से समय-समय पर मुख्यतः शाक्तदर्शन एवं शक्ति उपासना आदि विषयों में सारगर्भित लेख लिखे गये, जो चण्डी, सरस्वती, कल्याण एवं लोकपथ आदि सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये, इन लेखों का संग्रह 'लेख संग्रह' नाम से सर्वप्रथम सन् ६७-६८ में प्रकाशित हुआ था, तब से आज तक इस संग्रह के चार संस्करण निकल चुके हैं। यह पाँचवा संस्करण सुधीजनों एवं जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित करते हुये श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद् अति प्रसन्नता का अनुभव करती है।

श्री पीताम्बरा-पीठ संस्कृत परिषद्
दतिया (म०प्र०)

लेख-संग्रह

विषय-सूची

क्र.	विषय		पृष्ठ संख्या
१.	वेद मे शक्तितत्व	('चण्डी' चैत्र २००४)	१
२.	श्री तारा महाविद्या	('चण्डी' कार्तिक २००४)	२०
३.	आकूति सूक्त	('चण्डी' आश्विन २००५)	३१
४.	वैदिक शाक्त यज्ञ	('चण्डी' माघ २००५)	४२
५.	ईशोपनिषद् में शक्तिकारणवाद	('चण्डी' उपनिषदाङ्क)	५१
६.	श्री बगला महाविद्या	('चण्डी' पौष २००६)	५९
७.	गुह्य आदेश	('चण्डी' आषाढ़ २००७)	७४
८.	श्री देवी भागवत	('चण्डी' कार्तिक २००७)	८१
९.	श्री दुर्गानाम महात्म्य	('चण्डी' चैत्र २००८)	९४
१०.	श्री भगवती गीता	('चण्डी' आषाढ़ २००८)	१०१
११.	स्वप्न-विज्ञान	('चण्डी' माघ २००९)	१११
१२.	समयाचार	('चण्डी' श्रावण २०१०)	१२७
१३.	सनातनी शक्ति गाथा	('चण्डी' भाद्रपद २०११)	१४९
१४.	सार्धनवचण्डी प्रयोग	('चण्डी' चैत्र २०१२)	१५५
१५.	श्री छिन्नमस्ता महाविद्या	('चण्डी' फाल्गुन २०१३)	१६१
१६.	एक समाधान	('चण्डी' चैत्र २०१५)	१८१

क्र. विषय		पृष्ठ संख्या
१७. तान्त्रिक पञ्चाङ्ग		१८४
१८. श्री रमा पारायण	('चण्डी' वैशाख २०१८)	१९०
१९. अक्षर अनन्य का वेदान्त ज्ञान	(दतिया-दर्शन)	१९७
२०. आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति पर चर्चा	('सरस्वती' श्रावण १०१३)	२०७
२१. परोपासना	('कल्याण' उपासनाङ्क)	२१५
२२. अमेरिका को संस्कृत में पत्र	('चण्डी')	२२६
२३. शाक्त दर्शन	('चण्डी' भाद्रपद २००४)	२४२
२४. शुद्धतत्व वर्णन		२४६
२५. शाक्तसाधना		२५४
२६. षट्-पारायण विधि		२५८
२७. अहं पदतत्व		२८०
२८. पुनर्जन्म		२८४
२९. श्री सूर्य का विवेचन		२९२
३०. गणेश विज्ञान		२९६
३१. शान्ति प्रार्थना		३०३

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्री अनन्तश्री स्वामी जी महाराज
पीताम्बरा पीठ, दतिया (म०प्र०)

१. वेद में शक्तितत्त्व

शक्तितत्त्व की उपासना अनादिकाल से ही संसार में होती आ रही है। लौकिक और पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्धि इससे होती है। इसीलिये आर्य जनता सनातन काल से ही बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य, नि:श्रेयस आदि तत्वों को अपने धर्म तथा समाज के अङ्ग रूप में मानती आ रही है। ये सारी वस्तुयें शक्तितत्त्व के रूपान्तर हैं। उपनिषदों में जिसे ब्रह्म कहा गया है, वह भी शक्ति पदार्थ का अभिन्न रूपान्तर ही है। इसीलिये श्री आचार्य भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी में कहा है- "शिव: शक्तया युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं न चेदेवं देवो: न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि" अर्थात् ब्रह्म शक्तितत्त्वयुक्त ही कार्य करने में समर्थ है अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। अनुभव से भी यह बात प्रत्यक्ष है कि शक्तिमान् ही कोई भी कार्य करते देखा गया है। संसार के इतिहास से भी यह प्रकट है कि सदैव संसार में शक्तिशालियों का ही बोलबाला रहा है। आर्य-जाति ने अतीत में जो कुछ भी ऐश्वर्य, ज्ञान, तप आदि की उन्नति की थी, उसका मूल कारण शक्तितत्त्व की उपासना ही है, क्योंकि बिना शक्ति के ये सब असंभव है।

संसार के सबसे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के अवलोकन से भी यह बात पुष्ट होती है, जिनका उद्धरण आगे दिया जायेगा। वैदिक साहित्य में भी सबसे प्राचीन संहिता ग्रन्थों में अनेक

मन्त्रों में शक्तितत्व का रहस्य कहा गया है। देवीसूक्त, रात्रिसूक्त और सरस्वतीसूक्त तो प्रसिद्ध ही हैं आज अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूक्त पर ही चण्डी के पाठकों की सेवा में कुछ निवेदन करते हैं जिससे शक्ति विषयक ईश्वरीय आदेशों का रहस्य समझने का भाव हृदयंगम किया जा सकता है। शक्तितत्त्व को प्रधान रूप में बताने वाले तान्त्रिक साहित्य के भावों का सामञ्जस्य भी यथा स्थान किया जाएगा, जिससे नवशिक्षित जनता में तान्त्रिक साहित्य के 'विषय में जो भ्रान्तधारणा हो गयी है, उसका निराकरण होगा। सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के साथ तान्त्रिक सिद्धान्त का मिलान करते हुए विचार किया जायेगा।'

इस सूक्त में चार मन्त्र हैं। भृगु आंगिरस इसके ऋषि हैं और विद्युत देवता हैं। इस विद्युत्तत्व के द्रष्टा या आविष्कारक भृगु मुनि की शक्ति का उदाहरण महाभारत, पुराणादि ग्रन्थों में जिस तरह बताया गया है। उस तरह का कोई दूसरा उदाहरण आर्यग्रन्थों में नहीं मिलता है। वे इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भी परीक्षा ली थी और विष्णु को भी लात मारी थी। यजुर्वेद में भृगु आंगिरस के विषय में इस प्रकार कहा गया है-

"भृगुणामाङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्" (अ. १-१८) अर्थात् अंगिरागोत्र वाले भृगुओं के तेज से तेजस्वी होओ। इसी के अनुसार शतपथ ब्राह्मण भी कहता है- "इत्येतद वै तेजिस्ठं

तेजो यद्भृग्वंगिरसाम्" अर्थात् भृगु अंगिरसों का ही यह सर्वश्रेष्ठ तेज है। गोपथ ब्राह्मण में - 'एतद् वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद्भृग्वाङ्गिरसाम्' (गो-पू-३-४) कहा गया है। यह सब महत्व शक्ति पदार्थ का ही है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:' के अनुसार उक्त शक्तिशाली भृगु अङ्गिरामुनि इस रहस्यमय सूक्त के ऋषि है। उन्होंने ही इस अनादि शक्ति- विज्ञान को जगत के सम्मुख प्रकट किया है। विद्युत इस सूक्त का प्रतिपाद्य देवतारूप शक्ति पदार्थ है। द्युत् दीप्तौ इस धातु से क्विप् प्रत्यय होकर कर्त्रर्थक दीप्ति-प्रकाश आदि अर्थों की सिद्धि होकर विद्युत का अर्थ स्पष्ट है। विद्युत् सबका प्रकाशक हैऔर स्वस्वकार्य करण में समस्त पदार्थों को वह योग्यता प्रदान कर रही है। आजकल पाश्चात्य विज्ञान के प्रचार से बिजली-तत्व का जो प्रचार एवं उपयोग हो रहा है, वह इसका स्थूल रूप है। शुद्ध चेतनरूप, जो सारे जगत का नियामक है, इससे परे है। वही इस सूक्त का प्रतिपाद्य है। उसे ही दार्शनिक ग्रन्थों में सच्चिदानन्दरूपिणी बताया गया है। वही ब्रह्मतत्व है। यह भाव सूक्त के अक्षरों पर ध्यान देने से प्रकट होता है, जिसका पहला मन्त्र इस प्रकार है - नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि ॥१॥ अर्थात् हे प्रकाशरूपवाली देवि, विद्युत शक्ति रूप, तुझे नमस्कार है। शब्द रूप से गर्जना करने वाली देवि तुझे नमस्कार है। अश्म वज्र भी तेरा रूप है, अत: हे देवि उसे नमस्कार है, जिससे तू हमारे क्लेशों को नष्ट करती है।

बिजली का मुख्य सम्बन्ध जल से है उसका कारण रूप मेघ है। उसमें बिजली की चमक, गर्जना तथा वज्रपात तीनों होते है। ये तीनों विद्युत शक्ति के भौतिक रूप है। जगत के व्यवहार में इन तीनों चीजों का उपयोग करके आज भौतिक विज्ञान अनेक चमत्कारिक दृश्य नित्य नये रूप में दिखा रहा है, परन्तु इससे केवल ऐहिक लाभ ही सब लोग उठा सकते हैं, मानसिक या आध्यात्मिक उन्नति में इसका कोई साक्षात् उपयोग नहीं है, केवल बाह्योपकरणमात्र में ही इसका उपयोग हैं। इसलिये इसे मनुष्य जीवन का लक्ष्य मानने वाले पाश्चात्य समाज का इस समय विनाशोन्मुख प्रवाह हो रहा हैं। इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन इन दो प्रकार की बिजलियों से सारे पार्थिव पदार्थों की सृष्टि हुई है। पृथिवी का यह वर्तमान रूप इन्हीं दोनों विद्युतों के योग का परिणाम है। यह साइन्स वेत्ताओं का मत है। इसीसे मिलता जुलता वैदिक सिद्धान्त भी है-'इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा' (श.१४-१-२-१०) अर्थात् भूत भौतिक सृष्टि के पहले यह पृथिवी ही उत्पन्न हुई। विद्युत के विषय में उक्त मंत्र में जितने शब्द आये हैं, उनकी निरुक्ति वैदिक ग्रन्थें में भिन्न भिन्न प्रकार से की गयी हैं। 'विद्युत शक्तिः तान् देवान् व्यद्युत्पाप्नः सकाशात् वियोगित्वान् यद्' विद्युत (तै. ३-१०-९-१) अर्थात् देवताओं को पापों से छुड़ाने की वजह से उसका नाम विद्युत हुआ;'विद्युद् ब्रह्मेत्याहुः' (श.६-१-३-१४) विद्युद् ही ब्रह्म हैं; 'विद्युद् वाऽशनि' (श.६-१-३-१४) बिजली ही वज्र है; 'विद्युद् वाऽअपां ज्योतिः'(यजुर्वेद१३-५३) बिजली ही जल की ज्योति है;

वृष्टिवैयाज्या विद्युदेव विद्युद्हि इदं वृष्टिमन्नाद्यं सम्प्रयच्छति' (ऐ.२-४१) अर्थात् समस्त जलकणों का एकीभाव ही बिजली है; बिजली ही वृष्टि, अन्नादि की पुष्टि को प्रदान करती हैं; ''यो विद्युतिपुरुष: स सर्वरूप: सर्वाणि ह्ये तस्मिन् रूपाणि'' (ऐ.४-१) अर्थात् बिजली में वह पुरुष हैं, उसी के येसब रूप हैं; उसी में ये सब रूप रहते हैं।

बिजली में गति हैं। जहां गति हैं, वहां शब्द का रहना या होना नियम सिद्ध हैं। शब्द ही वज्र हैं, या उसकी अभिन्न शक्ति ही वज्र कहलाती हैं, जिसे कहा गया हैं, ''वज्र एव वाक्'' (ऐ. २-२१) 'वाग्धिवज्र:' (ऐ.४-१) महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में कहते है-- ''सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति'' अर्थात् वह वाणी वज्र होकर यजमान का विनाश कर देती है। इन उक्त प्रमाणों पर विचार करने से विद्युत शक्ति के भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक रूपों का रहस्य स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है।

महर्षि यास्क का मत है। कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का अर्थ भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक इन तीनों रूप में वैदिकों को जानना चाहिये। ''यत्कामऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्'' स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद् दैवतो समन्त्रो भवति तास्त्रिविध: परोक्षकृता: प्रत्यक्षकृता: आध्यात्मिक्यश्च'' (नि. ७-१) अर्थात् जिस अर्थ की इच्छा से ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है, वह मन्त्र उस देवता का होता है। उसके तीन भेद हैं-- परोक्ष, प्रत्यक्ष और आध्यात्मिक । अन्य पुरुष

की अपेक्षा से जो वर्णन होता है, उसे परोक्ष मध्यम पुरुष (तुम) की अपेक्षा वाले को प्रत्यक्ष तथा मैं (अहम् रूप से तादात्म्य करके बतलाने वाले मन्त्रों को आध्यात्मिक कहते हैं। इस नियमानुसार सूक्त की यह ऋचा प्रत्यक्ष कृत है। ऋषि प्रत्यक्ष रूप में उस महाशक्ति का वर्णन कर रहे है। वेदान्तशास्त्र में अन्य पुरुष का अन्तर्भाव मध्यम तथा उत्तम पुरुष में किया जाता हैं। 'युष्मदस्मद् गोचरयोः' इत्यादि भाष्य में श्री स्वामी शंकराचार्य ने अहम् और त्वम् को ही निकट सम्बन्धी माना है। इनमें भी 'अहम्' ही मुख्य है। तुम का व्यवहार भी कल्पित है, क्योंकि व्यवहारकाल में तुम का उपयोग मानकर भी अपने को सब कोई मैं ही कहते हैं, इसलिये तुम का व्यवहार कल्पित ही है, क्योंकि भेद मायिक है और भेद कृत समस्त वर्णन मायिक है। परमार्थ आध्यात्मिक वर्णन है। परोक्ष, प्रत्यक्ष वर्णनों का अभिप्राय अध्यात्मवाद में तात्पर्य रखता है। महर्षि व्यास भी 'तत्तु समन्वयात्' (वे.द. १-४-४) इस सूत्र से समस्त वैदिक वाक्यों का तात्पर्य ऐसा ही मानते हैं। महर्षि यास्क ने 'अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चरामि' इस देवी सूक्त को आध्यात्मिक अर्थमें ही बताया है। अतः अध्यात्मवाद की अपेक्षा से इस मन्त्रका आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है। दैविक अर्थ अध्यात्मवाद के ही अन्तर्गत है। हे देवि, विद्युतरूपे, मूलाधार चक्र में सार्धत्रिवलय रूप से रहने वाली तुझे नमस्कार है। ध्वनि-वर्ण रूप से गर्जना करने वाली, तुझे नमस्कार है। स्वाधिष्ठान आदि चक्रों के भेदन में वज्र का कार्य करने वाली, तुझे नमस्कार है। इन तीनों कार्यों

की सिद्धि शक्ति से ही होती है, जिसे तन्त्रशास्त्राभ्यासी साधक अच्छी तरह से जानते हैं। इसके सुसम्पन्न होने पर सभी साधकों के कष्ट (पाप) निवृत्त हो जाते हैं। इसीलिये ऋषि कहते हैं 'येना दूडाशे अस्यासि' अर्थात् हमारे (साधकों के) सभी क्लेशों को दूर करती हैं।

शक्ति पदार्थ का विशद रूप में निरूपण करने वाले तन्त्र ग्रन्थों में भगवान शिव ने बताया है कि मूलाधार चक्र में सोये हुये सर्प के आकार में सार्धत्रिवलय रूप में इस जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण शक्तितत्व है, जो आन्तरिक साधन से जाग्रत होता है। उक्त मन्त्र के वर्णन के ही अनुसार तान्त्रिक साधना में शक्ति पदार्थ का वर्णन किया गया है। त्रिपुरासारसमुच्चय में कहा गया है-- शक्तिः कुण्डलिनीति या निगदिता आईम संज्ञा जगन्निर्माणे, सततोद्यता प्रविलसत् सौदामिनी सन्निभा शंखवर्तनिभां प्रसुप्तभुजंगाकारां जगन्मोहिनीम् तन्मध्ये परिभावयेद् विसलतातन्तुपमेया कृतिम्।१०। हूं कारेण गुरूपदिष्टविधिना प्रोथाप्य सुप्तां ततः कृत्वा तां कलया तयापर मया चिदरूपया संगताम। मायां कुण्डलिनी समाहितमनास्तामृच्चरेत् कौशिकी शक्तिं ब्रह्ममहापथेन संहिता माधारतः स्वात्मना (४ प. ११) अर्थात् आईम संज्ञा वाली जगद्रचना में सततोद्यत् चमकती हुई बिजली के सदृश शंख के मुख के समान आवर्त (चक्करदार) सदृश, सोये हुए सर्प के समान, सारे जगत को मुग्ध करने वाली, विस तन्तु के सदृश कुण्डलिनी शक्ति मानी गई है। गुरूपदिष्ट रीति से 'हूं'

बीजाभ्यास द्वारा सोई हुई कुण्डलिनी को उठाकर परम चित्कला से उसका योग करके आधारपद्म से लेकर सहस्रारपर्यन्त समस्त षट्चक्रों का समाहित मन द्वारा अनुभव करना चाहिए ।१०॥११॥

इसी मार्ग में शब्द या नाद का भी अनुभव योगी साधकों से होता है। इस सम्बन्धमें कहा गया है-- 'आदौ मत्तालिमाला गलपथविगलत्तार झंकारहारी नादोऽसौ वंशिकांस्यानिलभरितलसद वंशनिस्वानतुल्य:। घंटानादानुकारी तदनुजलनिधि ध्वानधीरोगभीरो, गर्जत्पर्जन्यघोष: पर इह कुहरे वर्तते ब्रह्मनाड्या:' (३ पृ.श्लो) अर्थात पहले मत्त भृङ्ग की गुञ्जार होती है। बाद में वेणू की मधुर ध्वनि सुनाई देती है। तत्पश्चात् घंटानाद समुद्र की ध्वनि सदृश सुनाई देता है। यह सब घोष ब्रह्मनाड़ी में सुनाई देता है। द्रि. इ- ५०। नौ नाद तथा वर्णों की भी उत्पत्ति तन्त्रों में कुण्डलिनी के जागने पर ही मानी जाती है। कुण्डलिनी का यह रहस्य षट्चक्रों के सहित वेद में भी माना गया हैं-- गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी नवपदी वभूवुषी सहस्त्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋ. सं. १-१६४-४९) अर्थात गौरी वाक् कुण्डलिनी महाशक्ति जलों को तोड़ती हुई (जल से पंचतत्वों का उपलक्षण है, जो षट्चक्रों में चिंतित होते हैं। तोड़ने से वज्रपात ग्रहीत होता है। इस प्रकार 'तक्षूतन्करणे' का अर्थ संगत होता है) एकपदी, ॐ द्विपदी, सोऽहम् सा ॐ चतुष्पदी, ॐ भूर्भुव: स्व: अष्टपदी, अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग तथा नौ नवपदी नवनाद वाली है। सहस्रार में सहस्राक्षर वाली भी हो जाती है। यह रहस्य तन्त्रवेत्ता योगियों को भली-भाँति विदित

है। यहां इसे लिखने का अभिप्राय ये है कि सूक्त के प्रथम मन्त्र में "विद्युते स्तनयित्नवे अश्मने" इन शब्दों द्वारा तन्त्रोक्त सिद्धान्त का भी एकीकरण होता हैं षट्चक्रों में जिन-जिन देवताओं का वास माना जाता है, वे व्यष्टि रूप हैं। 'यः पिण्डे सः ब्रह्माण्डे' की उक्ति के अनुसार वे देवतागण भी उसी परामहाशक्ति के अंश हैं। जैसे शरीर के संचालन में उनका उपयोग हैं, वैसे ब्रह्माण्ड में भी उनका रूप है। पिण्ड ब्रह्माण्ड के अभेद का अनुभव कर अद्वैत तत्व पर पहुँचना ही शाक्तवाद का परम लक्ष्य है। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार प्रथम मन्त्र में कहा हुआ शक्ति का स्थूल रूप इस पराशक्ति का ही रूपान्तर है, जो गुण वैचित्र्य से नानाकार प्रतीत हो रहा है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' का यही अभिप्राय है। द्वैत अवस्था में रहते हुये योग क्षेम की प्राप्ति करना भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः सूक्त के दूसरे मन्त्र द्वारा ऋषि कहते हैं--'नमस्ते प्रवतो न पाद्यतस्तपः समूहसि' मृड्या नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ।।२।। अर्थात् हे देवि, प्रकष्ट ज्ञान वालों को तू पतन की ओर नहीं ले जाती है, इसलिये तुझे नमस्कार है, क्योंकि तू तप, ज्ञान आदि श्रेष्ठ वस्तुओं का समूह है। अपने कल्याणात्मक रूपों से हमारी रक्षा कर। हम तेरी सन्तान हैं। हमारे लिये (मय) कल्याण का दर्शन करा।

भुक्ति-मुक्ति दानों प्रकारों की प्राप्ति शक्ति साधना से होती है। इसी अभिप्राय से सप्तशती ग्रन्थ में सुरथ तथा समाधि इन दोनों अधिकारियों को मेधा महर्षि ने उपदेश दिया है। 'भोगश्च

मोक्षश्च करस्थ एव' वाला सिद्धान्त इसी तत्व पर माना गया है। सूक्त के उक्त मन्त्र में यही बात कही गई है। सप्तशती के इस मन्त्र में भी ऐसा कहा गया है-- 'विद्या सुशास्त्रेषु विवेकदीपेस्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या। ममत्वगर्तेऽतिमहान्ध कारे विभ्रामयत्येतद तीव विश्वम्' (अ. ११-३०) इस मन्त्र की व्याख्या सर्वस्वकार ने जैसी की है, उसका तत्व यह है कि देवि, ज्ञान उपाय के साधन आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं में जिससे लोक के योग क्षेम का विधान होता है मनु आदि शास्त्रों द्वारा प्रवृति एवं निवृति तथा विवेक के दीप स्वरूप वेदांत आदि शास्त्रों का जो अनादर करते हैं, उन्हें अहम् मम अभिमान रूप संसार में, जो अन्धकार रूप है, तू उन्हें घुमाती है। 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते' इस मन्त्र में भी उक्त तत्व को कहा गया है। अर्थात् अविद्या की उपासना करने वाले अन्धकार में चले जाते हैं, यही पतन है। 'विद्यया-मृतमश्नुते' विद्या से ही अमृत की प्राप्ति होती है। इसलिये तू विद्वानों को पतन की ओर नहीं ले जाती है, अतः हमें भी वही मार्ग बता, क्योंकि लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे। महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोस्तुते (सं. ११-२१) अर्थात् ऐश्वर्य, लज्जा (शुभ गुण), महाज्ञान (अविद्यानिवर्तक), श्रद्धा, पुष्टि रूप सुधा, नित्य महारात्रि रूप अन्धकार, अज्ञान स्वरूपावरण करने वाला भी हे नारायणि, तेरा स्वरूप है। अतः तुझे नमस्कार है। वेद में इसे ही कल्याण रूप वाली शिवा तनू कहा गया है। 'या ते रुद्र शिवातनूरघोरा पापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्त मया गिरिशन्ताभि चाकशीहिं' (यजु. १६-२) अर्थात् हे रुद्र, आपकी

कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्य आदि को प्रदान करने वाली जो शिवा (महाशक्ति) तनु है, उसके द्वारा हमें आप निरीक्षण करें। हम सब तेरे पुत्र हैं, हमारा (मय) कल्याण कर। 'अमृतस्या पुत्रा:' इस श्रुति से सारा विश्व उसकी ही संतति हैं, यह सिद्ध होता है। 'यद् वै शिवं तन्मय:'(तै.२,२, ५-५) यहां पर कल्याण कावाचक मय शब्द का व्यवहार किया गया है। उक्त बातों की सिद्धि के लिये वैदिक कर्मकाण्ड एवं तान्त्रिक कर्मकाण्डों का निर्माण महर्षियों ने किया है, जिनका आचरण करके सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है। महर्षि कणाद ने धर्म की व्याख्या की है कि 'यतोऽभ्युदयनि:श्रेयस सिद्धि स धर्म:' अर्थात् जिससे अभ्युदय ऐश्वर्य और मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है। यह लक्षण शाक्त धर्म में पूर्णतया घटित होता है।

अब तीसरे मन्त्र से श्री परा शक्ति के अस्त्र शस्त्रों को नमस्कार करते हुए उस पर उत्कृष्ट सर्वव्यापक तथा योगियों के हृदय में वास करने वाले स्वरूप को ऋषि बताते है। प्रवतो नयान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्म:।' विद्यते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभि:।।३।। अर्थात् उच्च पदवी पर आरूढ़ योगियों को तू गिराती नहीं है प्रत्युत उन्हें अपनी सायुज्य पदवी प्रदान करती है। हम तुझे नमस्कार करते है। तेरे अस्त्र शस्त्र को भी हमारा नमस्कार है, जिन्हें तूने असुरों के विनाशार्थ ग्रहण किया है। तेरा परमधाम गुप्त हृदय-प्रदेश है उसमें आधार रूप से तू छिपी हुई हं,

उसे हम जानते है। अहं ममरूप अविद्या जन्य संसार में ही लगे रहने वाले जीव बार-बार जन्म मरण रूप संसार में आते रहते है, क्योंकि उनके सुख का आधार क्षणिक, विनाशी, आपात रमणीय यह संसार ही है। उन्हें शाश्वत शान्ति नहीं मिलती। अतः मुमुक्षु इससे विरक्त होकर विद्या का अनुसरण करता है। उसी को 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' (गीता) वाली उक्ति से कहा गया है। 'सोऽध्वनः पारमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते' (कठ) अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त होने पर फिर संसार में मुमुक्षु नहीं आता। इसी तत्व को 'प्रवतो न पात्' इस पद से कहा गया है। यही शक्ति का परमधाम है। सप्तशती में कहा गया है 'मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्त - दोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी' (अ. ४८) अर्थात् समस्त, अविद्या दोषों से रहित होकर मोक्षार्थी मुनिगण विद्यारूप से तुम्हारा ही अभ्यास करते हैं। वह विद्या तुम हो जब जब भक्त समुदाय असुरों से पीड़ित होता है, तब तब असुरों के विनाशार्थ श्री आदिशक्ति का आविर्भाव होता हैं, जिसे किसी न किसी प्रकार से सभी आस्तिक समुदाय मानता है। 'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि संक्षयम्।' इस मन्त्र से यही बात कही गयी है। उस समय अनेक तेजः स्वरूप अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर श्री अम्बा प्रकट होती है। इसे ही सूक्त में 'हतये च तपुषे' पद से कहा गया है। सप्तशती में भी श्री भगवती के अस्त्रों से रक्षा की प्रार्थना की गयी है-- 'खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।' करपल्लव सङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः (४-२६)

अर्थात् हे अम्बिके, खड्ग, शूल, गदा आदि जितने तुम्हारे अस्त्रशस्त्र हैं, उनसे तू हमारी सब ओर से रक्षा कर। हे देवि, समुद्र परमात्मा में अभेद सम्बन्ध सामरस्य भावापन्न होकर तू छिपी हुई है, उसे हम उपनिषद् द्वारा जानते हैं। 'मम योनिरप्सु अन्तः समुद्रे' देवि सू. ७ इस मंत्राश में भी समुद्र पद आधारार्थों में व्यवहृत हुआ हैं। सायणाचार्य ने इसका अर्थ परमात्मा ही किया है-- 'समुद्रवन्त्यस्मादभूतानि इति समुद्रः परमात्मा' अर्थात् सब प्राणी समूह जिससे प्रकट होते हैं। इसलिये परमात्मा को समुद्र कहते हैं। बहुत लोग इस मन्त्रांश से ब्रह्म को कारण तथा शक्तितत्व को कार्य समझते है, परन्तु यह भ्रम है गीता में ब्रह्म का योनि कारण शक्ति को भी कहा गया है--'मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भ दधाम्यहम्' वास्तव में निर्मित की अपेक्षा से ब्रह्म, शक्ति दोनों के परमकारणत्व का व्यवहार होता है। 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति' (तै.उ.) इस उपनिषद वचन में भी मन्त्रार्थ को विशद किया गया है उक्त तीनों मन्त्रोंद्वारा शक्तितत्व का भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक रहस्य बताया गया है। वैदिक तान्त्रिक एवं पौराणिक मतों में जो शक्ति का स्वरूप माना जाता है, उसका अभेद दिखलाया गया है। जो लोग पौराणिक एवं तान्त्रिक सिद्धान्त को वेदबाह्य अनार्यो की वस्तु बताते है तथा उसमें वर्णित काली आदि शक्ति रूपों की पूजा को अनार्यपूजा कहते हैं, उन्हें वैदिक सिद्धान्त को विचारपूर्वक देखना चाहिए तथा समझ बूझकर सम्मति देनी चाहिए। वैदिक साहित्यमें अनेक बार देवी या शक्ति का

प्रयोग हुआ है। 'प्राणों वा अपानो व्यानस्तिस्त्रो देव्य: (ऐ. २-४) अर्थात् यहाँ पर प्राण, अपान और व्यान इन तीनों को देवी बताया है। अपान व्यान भी प्राण के ही रूप हैं। वास्तव में प्राण ही शक्ति है। इसी को लोक में दम कहते हैं। इसीलिये ऐसी कहावत है कि दम से आदम है अन्यथा मुर्दा है। इसी प्राण, अपान और व्यान को पौराणिक सिद्धान्त में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। महाविद्या क्रम में यही काली, तारा, षोडशी कहलाती हैं। 'अथैषक: प्रजापतिस्तद्देव्यश्च कश्च तस्माद् देविका: पंच भवन्ति पञ्च हि दिश: (श ९-५-१-३९७) अर्थात प्रजापति (परमात्मा) और उसकी देवियां पांच हैं, क्योंकि दिशायें पाँच ही है। पञ्चाम्नाय में ही देवी- देवताओं का समस्त विभाग है। दीक्षाकाल में दिशा क्रम से ही घटस्थापन करके पांचों आम्नायों का उपदेश होता है। षष्ठाम्नाय अधराम्नाय कहलाता है या अनुत्तराम्नाय। उसका उपदेश अमुख्य होने से पाँच में ही गतार्थ होने से पांच ही कहा गया। ता वा एता देव्य: दिशो हयेता(देव्य: दशदिशा:) (श ९, ५, १, ३१) अर्थात् ये दशों दिशायें ही दश देवियाँ हैं।

महाभागवत में ऐसी कथा आयी है कि जब सती अपने पिता दक्ष के घर जाने लगी, तब उन्हें शंकर ने रोका। तब अपने भयानक रूप से प्रकट होकर उन्होंने अपना महत्व दिखाया। श्री महादेव उसे न देख सकने के कारण उठकर भागे। तब श्री भगवती ने दशों दिशाओं में अपने दश

महाविद्यारूप धारण कर श्री शंकर को रोका था। इस कथा का मूल उक्त श्रुति ही है। दशों विद्याओं की लय-भावना की भी कथा वहीं पर कहीं हुयी है। सभी रूपों का लय श्री काली रूप में किया गया है। यही रूप सब शक्ति रूपों में मुख्य है। इसका एक स्वतन्त्र ही विज्ञान है। कालीरूप की प्रधानता क्यों है, यह लेख के बाहर की बात है। अतः पुनः किसी प्रसङ्ग में इसकी चर्चा हो सकेगी। रूद्ररूप शिव की ही ये शक्तियाँ हैं। रुद्र अग्नि को कहते है-- 'अग्नि र्वे स देवः तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति' (श. १-७-३-८) अर्थात् उस देवी को शर्व, पूर्व देश वाले उसी को भव, वाहीक देशोद्भव पशुपति रुद्र अग्नि आदि नामों से कहते हैं। 'रुद्रो हि वै एष देवानामशान्तः सञ्चितो भवतो' (कौ. १९-४) देवताओं में रुद्र अशान्त अग्नि तत्व है इसलिये रुद्र रूप में हीं संहार युद्ध आदि कार्यों के लिये मुख्यतः इसकी उपासना की जाती है। रौद्र रूपों में काली रूप प्रधान होने से मुण्डक उपनिषद् में 'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सु-धूम्रवर्णा। विस्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी लेलाय माना इति सप्तजिह्वा' प्रथम निर्दिष्ट है। 'पञ्चशून्य स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता' इस तन्त्र वाक्य द्वारा भी काली की प्रधानता सिद्ध होती है। 'चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता। विद्याराज्ञी सिद्ध विद्या कलौ-शीघ्र फल प्रदा' शक्ति संगम तंत्र। कलौ काली विशिष्यते' आदि वचनों से काली रूप की प्रध ानता ज्ञात होती है। रौद्र रूप की प्रचण्डता को लक्ष्य करके

शिल्प-विज्ञान के अनुसार शक्तियों की मूर्ति कल्पना की गई है। वैदिक साहित्य में शक्ति-तत्व की प्रचण्डता का निरूपण अनेक स्थानों में कहा गया है। इस सूक्त के चौथे मन्त्र में यही तत्व तथा संगठन शक्ति का रहस्य बताया गया है। जो सप्तशती मध्यम चरित्र की कथा का मूल है। इसी रहस्य को लेकर मार्कण्डेय पुराण में विस्तार से कहा गया है -
यां त्वां देवा असृजन्त विश्व इषुं कृणवाना असनाय बृष्णुम्।
सानौमृडविदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ।।४।। अर्थात् जिस महाशक्ति को धृष्णु सब देवो को कष्ट देने वाले महिषासुर को मारने के लिये युद्ध में स्तुति द्वारा सब देवताओं ने बाण अर्थात् इसके नाश के साधन रूप से बनाया था, वह देवी हमारी रक्षा करे। हे देवि, तुझे नमस्कार है क्योंकि, युद्ध में तेरी स्तुति होती है। सप्तशती के दूसरे अध्याय में कथा है कि महिषासुर दैत्य ने एक समय अपने आतंक से देवताओं को पीड़ित किया था। देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ मिलकर एक महान तेज प्रकट किया। वह तेज दिव्य स्त्री रूप में प्रकट हुआ। अपने - अपने अस्त्र-शस्त्रों को उसे सब देवताओं ने प्रदान किया। सभी के अङ्गरूप से वह महाशक्ति बनी थी, जिसे कहा गया है, 'निःशेषदेवगणशक्ति समूह मूर्त्या' अर्थात् समस्त देवताओं के शक्ति समूह से ही वह मूर्ति बनी थी। इसे ही सूक्त में 'यां त्वा देवा असृजन्त विदथे गृणाना' इन रहस्यमय पदों से कहा गया है, उस सामूहिक शक्ति ने महिषासुर को युद्ध में मारा, जिसे अकेले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी नहीं मार

सके थे। सप्तशती के तीसरे अध्याय में यह प्रसंग स्पष्ट रूप से कहा गया है। चौथे अध्याय में इसी महत्वपूर्ण महती देवता की स्तुति भी देवताओं ने की है, जो अपूर्व है। 'संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्' ऋ. वाले वैदिक एकता के रहस्य को प्रकट करने के लिये ही यह मध्यम चरित्र की कथा लिखी गई है। शक्तितत्व के समस्त रहस्यों के प्रकट करने वाले इस (सप्तशती) ग्रन्थ रत्न में यदि संगठन शक्ति का निरूपण न होता तो एक बड़ी भारी कमी रह जाती, क्योंकि 'संघे शक्तिः' वाली युक्ति सर्वश्रेष्ठ शक्तिवाद की उक्ति है। 'यूनियन इज स्ट्रैन्थ' 'डिवाइडेड बी फाल' ही परमतत्व है। इसी का निदर्शन मध्यम चरित्र है। इसलिये सप्तशती के तीनों चरित्रों में यह चरित्र सबसे श्रेष्ठ है। प्रथम, उत्तर चरित्रों का पाठ अकेले करना मना है, परंतु मध्यम चरित्र के विषय में यह बात नहीं है। इसका पाठ अकेलें भी कर सकते हैं।- 'एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह' (वै. रहस्य. ३२) अर्थात् एक मध्यम चरित्र के पाठ से ही पूर्णता हो जाती है, परंतु प्रथम, उत्तर चरित का पाठ अकेले न करें, इत्यादि। इसी एकता के विषय में वेद कहता है 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (यजु. ४०-४) अर्थात् एकता देखनेवाले ज्ञानी समाज को शोक कहाँ और मोह कहाँ। युद्ध के समय ही एकता का परम उपयोग होता है। इसीलिये 'विदथे गृणाना' कहा गया, क्योंकि युद्ध ही महान आपत्ति है। स्वार्थपरायणता के ही समय युद्ध होता है। अप-स्वार्थ में ही फूट का बीज होता है किसी देश, संस्कृति, जाति के पतन में व्यत्तिगत अपस्वार्थ

की प्रधानता रखकर सामूहिक स्वार्थ की उपेक्षा करना होता है, जिसे इतिहासज्ञ पूर्णरीति से जानते हैं।

ऐसे समय महालक्ष्मी ही सुमति प्रदान कर अपने राष्ट्रभक्तों की रक्षा करती हैं। अतः उनकी स्तुति पूजा को खूब स्मरण रखना चाहिये। भारतीय युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने इसीलिये गीतोपदेश के प्रथम श्री दुर्गा भगवती की स्तुति करने को कहा था, जिसे भीष्म पर्व में बड़े ही सुन्दर रूप में अंकित किया गया है जो इस महाशक्ति की उपासना करने की आवश्यकता को व्यक्त करती है। इसीलिये सूक्त के तीसरे मंत्र में कहा गया है – 'नमएवास्तु तुभ्यम्' अर्थात तुम एक ही को हमारा नमस्कार है। इस सूक्त में सात बार नमः शब्द का प्रयोग होने से संसार की संचालिका सप्त मातृका रूप को, तथा निवृत्ति की सप्त भूमिका को नमस्कार किया गया। तस्यै ते नमो अस्तु 'देवि' इस स्त्रीलिंगवाचक 'तस्यै देवि' पदों से यह सूक्त शक्तिवाद का ही पोषक है, यह निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है। देवि पद सम्बोधन का होने से प्रत्येक सूक्त के मन्त्र से इसका सम्बन्ध है।

युद्ध के प्रसंग में एक बात कहना रह गई कि विजय प्राप्त होने पर अभिमान का होना स्वाभाविक है।, जिसे बताने के लिए केन उपनिषद की यक्ष की आख्यायिका बताई गई है। असुरों पर विजय प्राप्त करने पर देवताओं के अभिमान को निवृत्त करने के लिये साक्षात कृपामयी हेमवती उमा का आविर्भाव उपनिषत्कार ने क्या ही सुन्दर रूप से लिखा है।,

जिसका दूसरा उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलना कठिन है। ब्रह्मविद्या ही अभिमान अहंकार आदि रहित शाश्वत शांति को देने वाली है। उसके बिना लौकिक विजय फिर पतन का हेतु हो सकती है। इसीलिये उपनिषत् का उपसंहार 'ज्येये स्वर्गेप्रतितिष्ठति' रूप में किया गया है। आजकल केवल ऐहिक भावना से प्रेरित होकर ही शक्ति की उपासना एवं साधक लोग परिश्रम करते रहते हैं, जिससे यह परम रहस्य लुप्त होता जा रहा है। अतः श्री जगन्माता से बार-बार यही प्रार्थना है कि अपनी सभी सन्तानों के अन्दर अपने सभी रहस्यों को प्रकट कर कल्याण करें।

उपर्युक्त सूक्त की विवेचना यथामति की गयी। इन मंत्रों में और भी बहुत से रहस्य होंगे, क्योंकि वेदों के विषय में यह कहा गया है कि 'तपसा मन्त्राणामनेकेऽर्थाः भवन्ति' अर्थात् तप से वेद मन्त्रों के अनेक अर्थ हो जाते हैं। शक्ति विषय के और भी कितने सूक्त हैं शक्ति साधना के रहस्य भरे हुये हैं। विद्वानों का यह कर्तव्य है कि उसे प्रकट कर शक्ति साधना को विशद करें तथा जनता को कल्याण मार्ग की ओर ले चलने का सदुपयोग करें। यह तो एक नमूना मात्र है, समय हुआ तो अन्य सूक्तों के अर्थो पर भी यथामति प्रकाश डाला जायेगा।

॥ ॐ शम् ॥

२. श्री-तारामहाविद्या

शून्यस्थामतितेजसां च दधतीं शूलाब्ज खड्गं गदाम्।
मुक्ताहार सुबद्धरत्नरशनां कर्पूरकुन्दोज्वलाम्।।
वन्दे विष्णु सुरेन्द्र रुद्र नमितां त्रैलोक्यरक्षापराम्।
नीलां तामहिभूषणाधिवलयामत्युग्रतारां भजे।।

नाना योनियों में अविद्या वश घूमते हुये जीवों को अनेक क्लेशों से अनवरत संतप्त देखकर परम करुणामयी जगन्माता श्री तारा रूप से उनको भवसिन्धु से तारती है अतः उसे तारा नाम से साधक समुदाय पुकारता है। इसीलिये कहा है – 'उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता।' एक समय श्री पार्वती ने श्री शंकर से पूछा – हे सर्वेश्वर सर्व रहस्याभिज्ञ विश्वात्मन्। वह कौन सी विद्या है, जिसे प्राप्त कर परम विद्वान व्यास मुनि ने भारतादि ग्रन्थों का निर्माण किया?

उत्तर में श्री शंकर ने कहा -- हे पार्वती ! श्री तारा महाविद्या के प्रभाव से ही व्यास मुनि ग्रन्थ रचना में समर्थ हुये थे। हे गिरिनन्दिनि, तारा महाविद्या अज्ञान रूपी ईंधन के लिये अग्नि स्वरूप है, जिसे प्राप्त कर धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ अनायास ही मिल जाते हैं। इस विद्या के प्रभाव से कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है। श्री तारा का साधक काव्य कला में प्रवीण होकर गंगा- प्रवाह के सदृश कविता करता है, राजा को वश में कर सकता है, सभा में बाद उपस्थित होने पर प्रतिवादी की वाणी का स्तम्भन कर सकता है। इस विद्या के आराधन से अनेक

अद्‌भुत चमत्कार साधक में आ जाते है। कहाँ तक कहें, श्री तारा मन्त्र के ज्ञान मात्र से साधक सर्वज्ञ हो जाता है।

श्री तारा के अनेक मन्त्र तथा साधना प्रकार हैं, तथापि तीन भेद ही मुख्य माने जाते हैं जो तारा तन्त्र में इस प्रकार कहे गए हैं-- "प्रणवं पूर्वमुद्‌धृत्य हृल्लेखां कुल-कामिनीम्। कूर्चमस्त्रं मन्त्रराजो देवद्रुम् इवापरः (प्र. प. ६) पूर्वोक्त मन्त्रराजस्य मध्यबीजत्रयं प्रिये। कुल्लुका नाम देवी सा महानील सरस्वती।" एकैव सा महादेवी नाम मात्रं त्रिधा भवेत्। प्रणवव्यतिरेकेण तृतीयैकजटा भवेत्।" अर्थात प्रणव, माया, वधू, कूर्च और अस्त्र (ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्) यही तारा भगवती की पञ्चाक्षर महाविद्या है। 'ह्रीं स्त्रीं हूं' इस त्र्यक्षर को नील सरस्वती कहते हैं। यही तारा कुल्लुका नाम से प्रख्यात है। 'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' इसे एकजटा तारा कहते है। किसी-किसी के मत से 'स्त्रीं' बीज के स्थान पर 'त्रीं' बीज माना जाता है, परन्तु यह विद्या वशिष्ठ मुनि से शप्त होने के कारण शीघ्र फलदा नहीं हैं, किन्तु तारा भक्ति सुधार्णव में कहा है-- कृष्ण अवतार होने पर विद्या शाप से मुक्त हो जायेगी। इन विद्याओं के और भी कई भेद हैं तथापि साधक समुदाय में इन्हीं का विशेष प्रचलन है। मन्त्र महोदधि में कई भेद बताये गये हैं। श्री ब्रह्मा ने जिस मन्त्र से आराधना की थी, उसे सप्ताक्षर कहते है। दूसरी विद्या द्वादशाक्षर है, जिसकी सिद्धि बौद्ध मार्ग से होती है। सप्ताक्षर के पांचवे वर्ण के स्थान पर 'सौं'

बीज लगाकर बलराम ने आराधन किया था। 'त्रीं हूं फट् क्लीं ऐं' पञ्चाक्षर को नारायण ने जपा था। 'ॐ ह्रीं हूं ह्रीं हूं फट्' इस षडक्षरी विद्या को सूर्य ने अदिति को प्रदान किया था। श्री शंकर जी कहते हैं कि 'स्त्रीं हूं ह्रीं हूं फट्' इस पञ्चाक्षर को जप कर मैंने जालन्धर को मारा था। ये प्रकार मेरुतन्त्र में बताये गये हैं। तारा की पूर्ण दीक्षा विधि में षडाम्नाय के भिन्न-भिन्न मंत्र दिये जाते हैं जैसे पूर्वाम्नाय में 'त्रीं' जिसे स्पर्शतारा कहते हैं। नील तारा मन्त्र को चन्द्रघण्टा, महातारा, 'त्रीं त्रीं हूं' को त्रैलोक्य विजय तारा कहते हैं। ये चार भेद पूर्वाम्नाय के हैं। दक्षिणाम्नाय में 'चिन्तामणि तारा', एकजटा सिद्धजटा, त्रिजटा, क्रूरमारिका, क्रूरचण्डा, महाचण्डा और चतुर्वेदादरी हैं। इन आठों के योग से माहेश्वरी तारा का स्वरूप बनता है। नारसिंही, वज्रतारा, ब्रह्माराधिता तारा, मणितारा आदि भेद हैं। पश्चिमाम्नाय में - 'हंसतारा, मणिधरवज्रिणी, असु रेखा, महोग्रतारा, वज्ररेखा और सर्वविघ्नोत्सारिणी आदि। उत्तराम्नाय में तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी और भद्रकाली हैं। ऊर्ध्वाम्नाय में--हंस मन्त्र सम्पुटित पञ्चाक्षर, नील सरस्वती का त्र्यक्षर शाम्भव तारा, वाग्वादिनी, महानील शारदा, चीन सुन्दरी, नीलसुन्दरी, महानील सुन्दरी, उग्रतारा, शांकरी, प्रसाद मन्त्र, पराप्रसाद आदि। अधराम्नाय में--रसायन उग्रवेताल उग्रमुखवेताल अग्निमुखवेताल, वटयक्षिणी, अप्सरा मन्त्र आदि रूप से तारा उपदिष्ट होती है। उक्त प्रायः सभी तारा मन्त्रों

में पञ्चाक्षर अनुगत होने से तारा तन्त्रोक्त पञ्चाक्षर विद्या ही प्रधान है।

मन्त्रार्थ :-

मन्त्रार्थ-साधन तन्त्र संग्रह में इस प्रकार किया गया है--"प्रणवाद ब्रह्मरूपा सा सोहं तत्वस्वरूपिणी व्योम्ना प्रकाशमान त्वं ग्रसमान त्वमग्निना। तयोर्विसर्ग ईकारो विन्दुना तान्त्रिकी मता। तकार: सर्व पापघ्नो रेफस्तत्वप्रकाशक:। विन्दुमाली महाबीजं शब्द-ब्रह्म-प्रकाशकम् कूर्चं प्रबोधरूपं स्यादस्त्रं जाड्यविनाशकम्-एवं यो वेत्ति शुद्धात्मा स तु साक्षान्महेश्वर:।" अर्थात् मन्त्र के प्रथमाक्षर ॐ से ब्रह्मरूपता सिद्ध होती है। इसे ही तत्वस्वरूपिणी सोहं विद्या कहते हैं। हकार से प्रकाशमानता, रेफ (रकार) से अज्ञान की निवृत्ति और इन दोनों से बिन्दुयुक्त ईकार के मिलने पर 'ह्रीं' बीज तन्त्र शास्त्राभिमत होता है। इस एक के अभ्यास से कविता, ज्ञान आदि सभी सिद्धियां मिलती हैं। तारा कर्पूर में कहा है -- 'व्योमार्णं वामनेत्रान्वितमनलयुतं विन्दुचन्द्रार्धयुक्तं, बीजं ते गुह्यमेतत् त्रिभुवन-जननि त्रिक्षणे ये जपन्ति। तेषां वक्त्रांरविन्दे विहरति मधुरा गद्यपद्यावली गीर्मातश्चन्द्रार्ध चूडे सकलभयहरे सिद्धिभाजां नराणाम्।' इसी तरह पांचों बीजों के स्पष्ट अर्थ उक्त स्तोत्र में कहे गये हैं। तकार सब पापों का विनाशक है रेफ तत्व का और विन्दुयुक्त 'त्रीं' या 'स्त्रीं' महाबीज शब्द ब्रह्म तत्व का प्रकाशक, 'हूँ' ज्ञानस्वरूप

और 'फट्' जड़ता या मूर्खता का विनाशक है। इस प्रकार जो मन्त्रार्थ जानता है, वह साक्षात् महेश्वर हो जाता है।

संक्षिप्त साधन प्रकार :-

इस तारा मन्त्र के द्रष्टा अक्षोभ्य ऋषि, वृहती छन्द, श्री तारा देवता, हूँ बीज, फट् शक्ति शेष वर्ण कीलक और चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्ति का विनियोग है। मतान्तर से 'ह्रीं' बीज 'हूँ' शक्ति, 'स्त्रीं' कीलक है। षड्दीर्घमायाबीज से षडङ्गन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे--

प्रत्यालीढ्पदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ।
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्।
चतुर्भुजां ललज्जिव्हां महाभीमां वरप्रदाम्।
खड्गकर्त्रीधरां सव्ये वामे मुण्डोत्पलान्विनाम्।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्।
वालार्कमण्डलाकार- लोचनत्रय भूषिताम्।
प्रज्वलत्पितृभूमध्यगतां दंष्ट्रा करालिनीम्।
सावेशस्मेरवदनामस्थ्यलंकार भूषिताम्।
विश्व व्यापकतोयान्ते श्वेतपद्मोपरिस्थिताम्।

अर्थः वामपाद आगे कर पैतरे से खड़ी, भयानक, मुण्डमाला विभूषित, ठिगना कद, लम्बे पेटवाली, कमर में व्याघ्र चर्म लपेटे हुये, नवीन यौवन से भरी हुई, पंचमुद्रा से विभूषित, चार भुजायें, जिह्वा लटकती हुई, अति विशाल,

वरदान देने वाली, दाहिने हाथों में खड्ग और कर्त्री तथा बायें हाथों में मुण्ड एवं कमल धारण किये हुये, पिंगल वर्ण की एक ही जटा, मस्तक में अक्षोभ्य, प्रातः सूर्यमण्डल के सदृश नेत्रत्रय से शोभित, जलते हुये श्मशान में स्थित, विकराल दांतों वाली, आवेशयुक्त मुसकाती हुई, हड्डी के अलंकारों से भूषित, विश्वव्यापक, जल के मध्य में सफेद कमल के ऊपर स्थित तारा का ध्यान करे।

अब जप करे। जप के लिये महा शंख की माला ही तारा जप में प्रशस्त है। नरकपाल-खण्ड की माला महाशंख माला कहलाती है। इसके अभाव में स्फटिक माला भी ग्राह्य है। नियमपूर्वक लक्ष संख्या का जप करने पर पुरश्चरण होता है। नील कमल घृताप्लुत का दशांश होम, कमल के अभाव में बिल्वपत्र ले। कालागरयुक्त सुगन्धित जल से तर्पण कर, तद् दशांश अभिषेक तद् दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से मन्त्र सिद्ध होता है। कलि में चतुर्गुण जप करें इस पुरश्चरण क्रिया के पश्चात् ब्राह्मण को एक वर्ष, क्षत्रिय को दो वर्ष, वैश्य को तीन वर्ष और शूद्र को चार वर्ष साधना में लगते हैं।पंचांग अभ्यास पूर्वक यह क्रिया होनी चाहिए। तारामन्त्र के साथ अक्षोभ्य मंत्र का जप अत्यन्त आवश्यक है। 'अं मं अक्षोभ्य स्वाहा श्री' यह मंत्र है। इसी से पूजन भी करे। तारा के साधन में वाम और दक्षिण दोनों ही आचारों का पालन होता है। मेरुतन्त्र में

कहा है--

''मया पंचमुखैर्जप्तो दक्षमार्गेण भी सुराः।।
देवांशेषु च विप्रेषु तथा धर्मपरेषु च ।।
यमानां नियमानां च तन्त्रस्था नान्य देवताः।।
वाममार्गाराधितास्तु कार्य साधयितुं क्षमः।।
दक्षिणाराधिता देवा रणसाहाय्य कारकाः।।
तेजोविधीन् रिपून् हत्वा नयन्ति ब्रह्मशाश्वतम्।।
क्षत्रियाणां क्षयार्थं हिमया रामाय चार्पिता।।
पञ्चामृतं सुरास्थाने मांसस्थाने च सूरणम्।।''

मत्स्यस्थाने भवेत् खण्ड़ोधर्मपत्न्यांरतं स्मृतम् इत्यादि। इसके अतिरिक्त तारा सिद्धि के सम्बन्ध में वृहन्नील तन्त्र में चीनाचार को ही झटिति सिद्धिप्रद्र बताया है। पूजा के लिये ताम्र, श्मशान काष्ठ, सोना चांदी या लोह के यन्त्र बनवाने चाहिये। यन्त्र का संस्कार करके पूजन करें। अन्यथा फल नहीं होता। प्रात: कृत्य, सन्ध्या, शिव पूजन और महापूजा तारा की साधना में अत्यन्त अपेक्षित है।

मन्त्र सिद्धि के सुलभ उपाय :-

साधना के द्वारा साध्य सिद्धि प्राप्त करना प्रत्येक साधना का लक्ष्य है। साधकों के अधिकार भेद से साधना भिन्न भिन्न रूप से शास्त्र निर्दिष्ट होती है। ज्ञानयोगी शुद्ध बुद्धि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करते है। राजयोगी चित्त वृत्ति-निरोध से समाधि द्वारा अनेक अद्‌भुत सामर्थ्य प्राप्त करते है। हठयोगी प्राणायाम की समान गति में स्थिति

द्वारा अनेक सिद्धि प्राप्त करते है और मन्त्रयोगी मन्त्राभ्यास से अपनी अभिलषित सिद्धि प्राप्त करते हैं। संसार में जितनी आध्यात्मिक साधनायें है, इन्हीं चार प्रकारों में विभक्त है। यद्यपि प्रत्येक साधना में इन चार प्रकारों का उपयोग होता है तथापि अधि कारी की योग्यता से एक की प्रधानता एवं अन्य का गौण रूप से उपयोग होता है। गौण-प्रधान न्याय से चारों की पृथक पृथक गणना की जाती है। ज्ञानयोग, राजयोग और हठयोग इस घोर कलियुग में सर्वसाधारण के लिये बिलकुल अशक्य है। इसलिये परम कृपालु भगवान् शंकर ने तन्त्रशास्त्र का उपदेश देकर कलिमलग्रस्त जीवों को इष्ट देव के स्वरूप की भक्ति द्वारा श्रेय प्राप्ति का निश्चय किया है। तन्त्रशास्त्र मन्त्र शास्त्र की साधना है। मन्त्र द्वारा उपास्य देव के समस्त दिव्य गुण, क्रिया, स्वभाव का परिचय होता है। मन्त्रभ्यास से साधक में उक्त सभी गुण व्यक्त होते हैं। इष्ट के समस्त गुणों के व्यक्त होने पर साधक भी इष्टवत् ही हो जाता है। तभी पूर्ण रूप से मन्त्र सिद्ध होता है। यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठादि प्रयोगों से मन्त्र सिद्ध देवता का अविर्भाव संकल्प सिद्धि से होता है। संकल्प सिद्धि मन्त्र चैतन्य होने पर ही होता है। वास्तव में संकल्प सिद्धि ही सिद्धि का द्वार है। इसीलिये प्रत्येक कर्म में संकल्प ही शुद्ध रीति से प्रथम उपादेय होता है। उक्त तीनों साधना में मन्त्र साधन सुगम एवं सुलभ है। 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः' जो मनन करने से साधक की रक्षा करता है।, उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्रशास्त्र में ध्यान, यन्त्र, प्रयोग आदि की भी प्रधानता मानी जाती है, तथापि ये सारी क्रियाऐं मन्त्र सिद्ध होने पर ही यथावत फलप्रद होती है।

मन्त्र-सिद्धि का सर्वश्रेष्ठ साधन मन्त्र का पुरश्चरण हैं। तीनों काल में इष्ट देव का पूजन, मन्त्र का जप, तर्पण, होम, और ब्राह्मण-भोजन इन पंचाङ्ग, क्रियाओं का समुच्चय पुरश्चरण कहलाता है (सा.त.पं. ७) ये क्रियायें अर्थ, समय, श्रम और सामर्थ्य-साध्य हैं। ऐसे समय पर जब कि सभी वस्तुओं का अभाव तथा श्रद्धा विश्वास की कमी हो रही हो और धर्म की ग्लानि पूर्ण रूप से अपना आधिपत्य जमाये हो, तब कर्मकाण्ड का पालन कर मन्त्र सिद्धि का चमत्कार पाना मनुष्य के लिये सर्वथा असम्भव तो नहीं लेकिन कठिन अवश्य है। तन्त्र शास्त्र में कई सरल साधन बताये गये हैं।इनमें ग्रहण पुरश्चरण मन्त्र चैतन्य का साक्षात्कार कराने वालाविशेष साधन है। श्री तारा मन्त्र की सिद्धि के लिये कर्पूर स्तोत्र श्लोक २० में कहा है -- हे मातः! यदि चन्द्र सूर्यग्रहण की तिथि में साधक आपके मन्त्र को जपता है तो वह कविता करने में पटु तथा सभी सिद्धियों का पात्र हो जाता है।

ग्रहण पुरश्चरणः-

गायत्री तन्त्र में कहा है -- चन्द्र सूर्य ग्रहण काल में अपने इष्ट मन्त्र को जप कर साधक ब्रह्ममय हो जाता है, तर्पण होमादि पुरश्चरण के अङ्गों को भी करने की आवश्यकता नहीं है। अज्ञानवश जो दशांश रूप से विहित होमादि क्रियाओं को करता है, उसका जप निष्फल हो जाता है, क्योंकि ग्रहण काल का जप अनन्त फल वाला होता है और अनन्त का दशांश असंभव है। बीजार्णव तन्त्र में कहा है - चन्द्र सूर्य ग्रहण होने पर स्नान, सन्ध्या, प्राणायाम, भूतशुद्धि आदि की भीआवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह काल

अत्यन्त मूल्यवान् हैं इन क्रियाओं में समय न बिताकर केवल मांनस संकल्प करके जप करना चाहिये। उक्त पुरश्चरण के अङ्गों के बिना ही सिद्धि हो जाती है। कवच, स्तोत्र, ध्यान, न्यास की भी एकावृत्ति मात्र से सिद्धि होती है। चन्द्र और सूर्य ग्रहण काल में किया हुआ जप असंख्य फलवाला होता है। आगे फिर कहते है - जब ग्रहण जप असंख्य फलवाला है तो होम, अभिषेक, तर्पण, भोजन आदिकैसे हो सकते है? इसलिये चन्द्र-सूर्यग्रहण में पञ्चाग नहीं है। पंचांग के बिना ही साधक सिद्ध हो जाता है। हे देवि विधिवद्मानस संकल्प ही ग्रहण जप में अपेक्षित हैं। इसी से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्थूल संकल्प की इनमें आवश्यकता नहीं है पहले प्रहर में यदि चन्द्र ग्रास हो तो उस दिन भोजन न करे। उस दिन भोजन करने से मनुष्य नरक गामी होता है। यदि अर्धरात्रि में ग्रहण हो तो उस दिन भोजन पान करने में कोई दोष नहीं है तथा जप, यज्ञादि करना ठीक है। सूर्य, गणपति, वैष्णव और शक्ति मन्त्रों में सतत जप करना ही प्रशस्त है। यह ज्ञानी साधकों का प्रकार है, जिसे भगवान शिव ने बतलाया है। जो ज्ञानी नहीं है, उनका प्रकार गन्धर्व तन्त्र में इस प्रकार कहा गया है--जब चंद्र या सूर्यग्रहण हो तो पहले उपवास करके समुद्रगामिनी नदी में नाभि मात्र जल में स्थित हो ग्रहण के आदि से मोक्ष पर्यन्त एकाग्र चित्त से सुन्दर संकल्प युक्त मन्त्र का जप करे। जप के अनन्तर दशांश होम करे। यदि होम न हो सके तो दशांश होम की संख्या का द्विगुण जप करे। होम के दशांश का तर्पण का दशांश अभिषेक तथा अभिषेक के दशांश का ब्राह्मण भोजन करावे। इसके पश्चात् महापूजा का अनुष्ठान करे। श्री गुरु को दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भक्ति से प्रसन्न

करे। काली-तन्त्र और धर्मसिन्धु में भी इसी के अनुसार कहा है। दीक्षा केवल सूर्य ग्रहण में ही लेना चाहिए, यह किसी आचार्य का मत है। चन्द्रग्रहण की दीक्षा निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न महीनों में नक्षत्र, वार आदि युक्त विशेष रात्रियां आती हैं, जिनमें किया हुआ जप सिद्धि प्रदान करता है। जैसे कृष्णपक्ष की मंगलवार युक्त चतुर्दशी मन्त्रसिद्धि के लिये प्रशस्त है: भाद्रपद की कृष्णाष्टमी, दीपावली, भैरवाष्टमी, शिवरात्रि, क्रोधरात्रि, वीररात्रि आदि रात्रियों में पुरश्चरण के ही समान मन्त्र जप सिद्धिप्रद है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी वटुकमन्त्र सिद्धि का श्रेष्ठ काल है। संक्रान्ति काल में भी जप प्रभावशील होता है। इसलिये धीरतापूर्वक उक्त कही हुई रीतियों का अनुष्ठान मनोयोग से साधकों को करना चाहिये।

उपसंहार

श्री तारा महाविद्या का स्वरूप निश्चय करने में कौन समर्थ हैं? ब्रह्मादि देवों की भी गति उसके स्वरूप विवेचन में कुण्ठित हो जाती है तो अन्य की कथा ही क्या! यहां यत्किंचित् विषय जो कहा गया है, सब उसकी प्रेरणा का ही परिणाम है। अन्त में 'त्वदीयाभिर्वाग्भिर्जननि तव वाचा स्तुतिरियम्' इस आचार्य भगवत्पाद की उक्ति का सहारा लेते हुये लेख व्यापार से उपरत होता हूँ तथा श्री तारिणी के चरणों में यह प्रार्थना करता हूँ कि तेरे भक्तों तथा देश, धर्म पर जो आपत्ति इस समय आयी है, उससे तारकर हम सबको कल्याण मार्ग पर ले चल।

॥ ॐ शम् ॥

३. आकूति सूक्त

शक्ति साधना को मुख्य रूप में बतलाने वाले तान्त्रिक साहित्य को ही लोग समझते है कि यही शाक्त साहित्य है, इसके अतिरिक्त शक्ति साधना में कोई प्रमाण नहीं है, परंतु यह धारणा यथार्थ नहीं है। आर्य साहित्य के मूल वैदिक ग्रन्थों में भावात्मक रूप से शक्ति तत्व का जो वर्णन मिलता है, उसकी योग अनुभूति के साथ तान्त्रिक साहित्य व्याख्या करता है। इन दोनों साहित्यों को पृथक करना किसी प्रकार संभव नहीं है। इसे अनुभव करने के लिये आचार्य भास्कर राय के ग्रंथों का अनुशीलन उक्त आशंका के उन्मूलन करने के लिये पर्याप्त साधन है।

प्रस्तुत लेख द्वारा जिस वैदिक सूक्त का परिचय 'चण्डी' के पाठकों को दिया जायेगा, उससे भी शक्ति-साधना का रहस्य बहुत कुछ प्रकट होता है। इस सूक्त में शक्ति तत्व को 'आकूति' नाम से कहा गया है। यह नाम प्रायः सभी शक्ति-भेदों के लिये समान रूप से व्यवहृत हुआ है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन प्रमुख तीनों भेदों को आकूति नाम से ही सूक्त में कहा गया है।

पहले इच्छाशक्ति के विषय में ही विचार करते है। यद्यपि प्रथम मन्त्र में आकूति नाम नहीं आया है तथापि अन्य मन्त्रों में आने से इच्छाशक्ति के विषय में भी व्यवहार किया है, क्योंकि सामान्यार्थ में ही यह नाम आया है। सारा संसार आकूति या इच्छाशक्ति का विलास है। ज्ञान, क्रिया या जिन्हें शिव शक्ति नाम से व्यवहार करते है, इच्छाशक्ति से

ही स्वरूप लाभ करते है। समष्टि व्यष्टि उभय रूप से इच्छाशक्ति ही जगत के समस्त व्यवहारों का मूल है। समष्टि में प्रतिफलित इच्छाशक्ति शुद्ध अनिष्फल सामर्थ्यवाली है। व्यष्टि में अविद्या आधार होने से हीनत्व, अल्पत्व आदि भावों से युक्त होकर वह अल्प, सामर्थ्यवाली हो जाती है। समष्टि ईश्वर, व्यष्टि जीव पद कहे जाते है। हीनता दुःख का कारण होने से तथा दुःख प्रतिकूल वेदनीय होने से जिज्ञासा का विषय है। जीव जब तक अपनी संकल्पशक्ति को समष्टि में नहीं मिला देता तब तक वह संसारी रहता है। महत्वाकांक्षी जीव योग द्वारा परम शक्ति को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाता है। इसे ही शिव सूत्र में कहा गया है "इच्छाशक्तिरुप कुमारी ३१ - १३ अस्यामवस्थाया - मागतस्य योगिन इच्छाशक्तिः कुमारी उमेति उच्यते कुंमारयतीति अज्ञान निवर्तकेति यावत् विवृतिः।" सिद्धावस्थापन्न योगी की इच्छा-शक्ति को ही कुमारी उमा कहते है, जो अज्ञान का नाश करने वाली है। इसी तत्व को बताने के लिये अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड के चौथे सूक्त में आकूति नाम से इच्छाशक्ति का वर्णन किया गया है। इस सूक्त में चार मन्त्र हैं। इसके द्रष्टा अथर्वाङ्गिरस ऋषि तथा अग्नि स्वरूपा आकूति (इच्छाशक्ति) देवता है पञ्च पदा विराट् अति जगती, जगती तथा अन्त के दो मन्त्र त्रिष्टुभ् छन्द वाले हैं। चार ऋचाओं का यह सूक्त है। काली अंक के 'वेद में शक्तितत्व' नामक निबन्ध में ऋषि एवं देवता का विवरण बताया जा चुका है। इस सूक्त का पहला मन्त्र इस प्रकार है--

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः। तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ।।१।। अथर्वा 'थर्वगतौ' इस धातु से निष्पन्न होता है। 'नथर्वतीति' अथर्वा अर्थात् निश्चल, पूर्ण, व्यापक, सच्चिदानन्द, परमात्मा अथवा योग सम्पन्न गुरु भी अथर्वा हैं। उसने एकोहं वहुस्याम्, अपनी आत्म अग्नि रूप समष्टि में प्रथमा आद्या आहुति का आदान प्रदान किया अर्थात् इच्छाशक्ति का विस्तार किया। परमात्मा वास्तव में अचल, क्रियाहीन है। उसकी इच्छाशक्ति ही का विस्तार किया। परमात्मा वास्तव में अचल, क्रियाहीन है। उसकी इच्छाशक्ति ही का प्रथम आदान प्रदान हुआ। वही अनेक रूप से परिणित हुई। जैसे चन्द्रकान्त मणि के 'सन्निधान' से अग्नि की दाहक शक्ति तिरोहित होती है। और अग्नि के समीप से उसे हटा लेने पर दाह शक्ति पुनः प्रसार पाती है, इसी प्रकार शक्तितत्व में आविर्भाव तिरोभाव होते है। बहुत से विद्वान ब्रह्म का परिणाम मानते है परंतु यह युक्तिविरूद्ध है। अथवा मन्त्र के इस शब्दार्थ से भी विपरीत है। कहा भी है- "शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते।" "शक्तियश्च जगत्सर्व शक्तिमाँस्तु महेश्वरः। (स्पन्ददीपिका) शक्ति और शिव ये दो पदार्थ हैं। शक्ति जगत है, शक्तिमान महेश्वर हैं। स्पन्दकारिका में कहा है--"यत्र स्थितमिदं सर्व कार्य यस्माश्च निर्गतं।" 'तस्यानावृतरूपत्वान्न निरोधोऽस्ति कुत्रचित्' (स्प० २)। जिस शिव स्पन्द तत्व में रहा हुआ सारा कार्य उसी से बाहर प्रकट होता है, उस अनावृत स्वरूप तत्व के

निरोध परिणामादि नहीं हो सकते। आचार्य भगवत्पाद ने भी कहा है- 'त्वयि परिणतायां नहि परम्' (सौ-ल०)। अर्थात् हे भगवति पृथिवी, जल आदि रूपों से तुम्हीं परिणत होती हो। 'नहिं परम्' अर्थात् ब्रह्म का परिणाम नहीं होता है।

'प्रकृतिर्ह्यस्योपादानादमाधारः पुरुषः परः' (भागवत)। इस जगत का उपादान कारण प्रकृति ही है, ब्रह्म केवल अविकृत अधिष्ठान मात्र है। 'या जाता' जो पराशक्ति स्वयं ही प्रकट हुई, 'या' जिससे 'जातवेदाः' परमात्मा ने हव्य हवनीय सभी पदार्थों को बनाया, 'तां' उसी महाशक्ति को 'प्रथमः' ईश्वर कहते हैं कि हे जीव, तुझे 'ते तुभ्यमेताम् जोहवीमि' व्यष्टि रूप से उस इच्छाशक्ति को प्रदान करता हूँ। उसे महाशक्ति की उपासना द्वारा विकसित कर अथवा प्रथमः 'प्रथम' उपासना के योग्य श्री गुरु शिष्य को आदेश करते हैं कि उसी परम शक्ति का तुझमें उद्बोध करता हूँ, जिससे प्रज्वलित आत्मज्ञान रूप अग्नि हव्य को समर्पणीय भाव को तथा प्रार्थित सभी वस्तुओं को तुम्हें प्राप्त करावे। उस अग्नि के अर्थ 'स्वाहा'-स्वस्य-आहा-ओहाक् त्यागेस्व के त्याग या समर्पण का अर्थ ज्ञात होता है। अभिलाषा या व्यष्टि इच्छाशक्ति निःसंदिग्ध रूप से सफल रूपवाली पूर्णतः समर्पण से ही होती है। 'ददाति प्रतिगृहणाति नान्यथैषा प्रसिद्ध्यतिं दान प्रतिदान में ही प्रसिद्ध्यति अर्थात् प्रकृष्ट सिद्धि होती है। इस मन्त्र में कहे हुये तत्व से काली तत्व का बोध होता है। अग्नि तत्व का मुख्यतः संबंध काली शक्ति से ही

है। 'काली कराली च मनोजवा च' इस उपनिषद मन्त्र में सर्वप्रथम कालीतत्व का महत्व वर्णित है। मन्त्र में प्रथम शब्द का प्रयोग होने से भी काली तत्व ही इससे गृहीत होता है। काली को प्रथमा या आद्या कहते हैं। त्रिपुरोपनिषद में भी कहा है--'एका सा आसीत प्रथमा या न वासीत्' (त्रि० ३) सूक्त के मन्त्र में अग्नितत्व का प्रतिपादन होने से कादिकूट के मूल वाग्भव बीज का उद्धार भी इससे होता है। 'अग्निर्वाग भूत्वा मुखं प्राविशत्' यह श्रुति इसे स्पष्ट करती है। 'ऐंकारो च वाग्भवोऽथ सुतराम् सौर्देवी च पराशक्तिः क्लीं कामो' (मन्त्राभिधान) सूक्त के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ मन्त्रों से क्रम से 'ऐं सौः क्लीं' इन तीनों बीजों का उद्धार होता है। प्रथम मन्त्र में अग्नितत्व का प्रतिपादन होने से इसका बीज 'ऐं' वाग्भवकूट का मूल है, द्वितीय में देवी, पराशक्ति आदि नामों से 'सौः' बीज बनता है, यद्यपि 'ऐं' क्लीं सौः' ऐसा ही मन्त्र क्रम है तथापि सूक्त में 'परोक्षप्रिया देवाः' के अनुसार क्रम बदल दिया गया है। त्रिपुरासार समुच्चय में सूक्त के अनुसार ही एक मंत्रक्रम दिया हुआ है। सूक्त के अनुसार कालीतत्व ही सर्वप्रथम आद्या तत्व है। इसे तन्त्र शास्त्र भी मानता है, जिसका उपासना क्रम रहस्यमय तान्त्रिक साहित्य में वर्णित है। काली तन्त्र, श्यामा-रहस्यादि ग्रन्थ गुरुमुख द्वारा श्रवण कर कालीतत्व का स्वरुप अवगत करना चाहिये।

शक्ति के कादि, हादि और सादि इस त्रिकूट को रहस्य रूप से कहा गया है। उसी का भावमय वर्णन क्रम

है। 'काली कराली च मनोजवा च' इस उपनिषद मन्त्र में सर्वप्रथम कालीतत्व का महत्व वर्णित है। मन्त्र में प्रथम शब्द का प्रयोग होने से भी काली तत्व ही इससे गृहीत होता है। काली को प्रथमा या आद्या कहते हैं। त्रिपुरोपनिषद में भी कहा है--'एका सा आसीत प्रथमा या न वासीत्' (त्रि० ३) सूक्त के मन्त्र में अग्नितत्व का प्रतिपादन होने से कादिकूट के मूल वाग्भव बीज का उद्धार भी इससे होता है। 'अग्निर्वाग भूत्वा मुखं प्राविशत्' यह श्रुति इसे स्पष्ट करती है। 'ऐंकारो च वाग्भवोऽथ सुतराम् सौर्देवी च पराशक्तिः क्लीं कामो' (मन्त्राभिधान) सूक्त के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ मन्त्रों से क्रम से 'ऐं सौः क्लीं' इन तीनों बीजों का उद्धार होता है। प्रथम मन्त्र में अग्नितत्व का प्रतिपादन होने से इसका बीज 'ऐं' वाग्भवकूट का मूल है, द्वितीय में देवी, पराशक्ति आदि नामों से 'सौः' बीज बनता है, यद्यपि 'ऐं' क्लीं सौः' ऐसा ही मन्त्र क्रम है तथापि सूक्त में 'परोक्षप्रिया देवाः' के अनुसार क्रम बदल दिया गया है। त्रिपुरासार समुच्चय में सूक्त के अनुसार ही एक मंत्रक्रम दिया हुआ है। सूक्त के अनुसार कालीतत्व ही सर्वप्रथम आद्या तत्व है। इसे तन्त्र शास्त्र भी मानता है, जिसका उपासना क्रम रहस्यमय तान्त्रिक साहित्य में वर्णित है। काली तन्त्र, श्यामा-रहस्यादि ग्रन्थ गुरुमुख द्वारा श्रवण कर कालीतत्व का स्वरुप अवगत करना चाहिये।

शक्ति के कादि, हादि और सादि इस त्रिकूट को रहस्य रूप से कहा गया है। उसी का भावमय वर्णन क्रम

से इस सूक्त में किया गया है। उक्त मन्त्र कादि कूट का रहस्यमयी भाषा में वर्णन करता है। इसी तरह शेष मन्त्रों में भी समझना चाहिये। दूसरे मन्त्र में हादि कूट का रहस्यात्मक वर्णन जो आया है, उसका रूप इस प्रकार से ज्ञात होता है। इसे कामराज कहते है –'आकूतिं देवीं सुभगां पुरोदधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु। यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥'

अर्थात् 'सुभगा' सौभाग्य विद्या रूप तथा सौभाग्यार्चन से अभिपूजित, समस्त ऐश्वर्यो को प्रदान करने वाली आकूति देवी मनस्तत्व के भीतर अभिप्राय या भावतत्व (दिव्य, वीर और पशू) रूप से प्रकाशित देवी 'दिव्' धातु के जितने अर्थ है, उन सब अर्थो से अपना रूप प्रदर्शित करनेवाली को मैं (परमात्मा या साधक) 'पुरोदधे' धारण करता हूँ। शिव शक्ति सामरस्य भावापन्न होकर जो रहती है, वह माता मातृतत्व सबका पालन करने वाली हम साधकों के "सुहवा" सुन्दर आवाहनादि पूजोपचारों से पूजित होकर हमारे सर्वदा सम्मुख रहे। 'यां आशाम् एमि' जो दश विद्या रूप से दशों दिशाओं में व्याप्त है, उसे प्राप्त करूँ। वह 'केवली' शुद्ध विद्यास्वरूप पराविद्या हमें प्राप्त हो तथा अध्यात्म रूप में मनस्तत्व में प्रविष्ट उसे हम जानें या साक्षात् करें। हादिक्रम में बाला, बगला, षोडशी आदि विद्यायें 'श्री' या सुन्दरी रूप से उपास्य है। इसी का प्रतीक 'सुभगां' पद मन्त्र में आया है। भुवनेश्वरी, भैरवी, कमला आदि श्री क्रम की समस्त

विद्याओं का समावेश इस मन्त्र में किया गया है। 'सौः' बीज के अतिरिक्त सप्तशती मध्यम चरित के अनुरोध से 'ह्रीं' बीज भी इस मन्त्र से बनता है। चामुण्डा मन्त्र में बीजों का क्रम 'ऐं ह्रीं क्लीं' रूप से है। सारस्वत 'क्ली' बीज इस क्रम में प्रसिद्ध है। पूर्व मन्त्र में कूट के हिसाब से क्रम परिवर्तन किया गया है। तन्त्रान्तर में 'ह्रीं' बीज सुन्दरी का माना गया है। सर जान उडरफ् द्वारा सम्पादित कर्पूर स्तोत्र की टीका देखिये। त्रिपुरोपनिषद के 'सुभगा च सा सुन्दरी सिद्धिमता' (त्रि० ६) इस मन्त्र में उक्त मन्त्रार्थ को स्पष्ट किया गया है। इस क्रम से शक्ति का उद्‌बोधन कर साधक भुक्ति मुक्ति दोनों ही वस्तुओं को प्राप्त करता है। इसका रहस्य श्री क्रम के ज्ञानार्णव, नित्याषोडशिकार्णव, त्रिपुरारहस्यादि ग्रन्थों द्वारा तथा इसी क्रम के गुरुओं की सहायता से समझना चाहिये। सभी शक्ति पीठों का समन्वय इस क्रम में होता है। इस क्रम का विज्ञान अतिशय गूढ़ है।

शिव शक्ति का समानभाव में रहस्यावगम करना शक्ति साधना का सर्वोच्च स्तर है। 'हंसः' 'सोऽहम' 'हसौः' 'स्हौः' मन्त्र इसके प्रतीक है। अजपा के नाम से साधक इसका अनुसन्धान श्वासानुसार करते हैं। प्रातः कृत्य में यह एक आवश्यक अङ्ग माना जाता है। इसे कुलार्णव में पराप्रसाद संज्ञा दी गई है। आगे के सूक्त मन्त्र से तथा त्रिपुरोपनिषद् से इस बीज का उद्धार होता है तथा इसका महत्व बताया जाता है -आकूत्या नो बृहस्पति आकूत्या न

उपागहि। अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३॥ अर्थात् हे बृहस्पते ! सारे संसार के स्वामिन् ! आकूति शक्तितत्व के साथ तद्रूप होकर हमें प्राप्त होईये तथा 'भग' ऐश्वर्य रूपात्मक शक्ति को हमें दीजिये एवं हमारे पूजोपचारों को ग्रहण करो या हम सभी से सुन्दर आहूत होईये अर्थात् इस समय हमारी रक्षा कीजिये। उपनिषद् में कहा है--'भगः शक्तिर्भगवान् कामईशः उभादाताराविह सौभगानाम् । समप्रधानो समसत्वौ समो तयोः॥' "सम शक्तिरजरा विश्वयोनि" (त्रि० १४) अर्थात् भग नाम शक्ति का है और भगवान काम ही ईशा या शिव है। ये दोनों ही समान रूप में ऐश्वर्य के देने वाले हैं। ये दोनों सब प्रकार से समान हैं। शिव का बीज हकार और शक्ति का बीज 'सः' दोनों इस मन्त्र से उद्धृत होते है, जिन्हें इस मन्त्र की व्याख्या की अवतरणिका में बताया गया है। सामरस्य भाव का बताने वाला यह मन्त्र है। योगी इसका अनुसन्धान करते हैं। ह, स इन दोनों अक्षरों में सभी विद्याओं कापर्यवसान होता है। इसकी सिद्धि होने पर योगी को अन्य कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता है। सभी आर्य साधनाओं की इसमें समाप्ति है, परा प्रसाद इसकी संज्ञा अन्वर्थ है ही।

चौथे मन्त्र में सादिक्रम का उपदेश देते हुये हादि क्रम के शिव काम या जिन्हें कामेश्वर कहते है उसी में सूक्त की समाप्ति करते है। यह शक्ति कूट के नाम से प्रख्यात है।

बृहस्पति में आकूतिमाङ्गिरसः प्रतिजानातु वाचमेताम्
यस्यदेवादेवताः सम्बभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्तेत्वस्मान् ।।४।।

अर्थात बृहस्पति 'वाग् वै बृहती तस्या एष पतिः इस श्रुति द्वारा वाणी का नाम बृहती है। उसका स्वामी प्राण ही बृहस्पति है। वाक् तत्व का साक्षात्कार करने वाला साधक ही बृहस्पति है। देव गुरु भी बृहस्पति है। क्योंकि उसकी वाणी भी यथार्थ है। परब्रह्म भी बृहस्पति है, क्योंकि उसकी वाणी भी पूर्ण बलवती तथा अवितथ भाव वाली है। इसे अनुभव करने पर पुरुष को वाक् सिद्धि हो जाती है। परावाक् साधक के अर्थानुकूल अनुसरण नहीं करती है। 'वाचमर्थोऽनुधावति' उक्ति इसी भाव को द्योतित करती है। अर्थानुकूल उसे बोलना पड़ता है अर्थात् अर्थ उसके कथन के पीछे पीछे चलता है। साधना में गुरुतत्व भी इसे ही कहते है। वाग्भव ही इसका बोधक है, जो आङ्गिरस ऋषि के प्रति कही हुई मेरी (ईश्वरीय) इस महती वाणी को 'वाचमेताम्' जानता है जो कि पदवाक्य तात्पर्यवाली हैं यथार्थतः वही जाने वाला है। महानील क्रम में प्रतिपादित सादिकूट ही, जो नील सुन्दरी तत्व है यहाँ आकूति पद का वाच्यार्थ है। 'यस्य' जिस क्रम के अधीन देव तथा देवता (देवियां) 'सुप्रणीताः' पूजित होते हैं, वह सब ऐश्वर्य सम्पन्न कामदेव हम साधकों पर 'अन्वेतु' अनुग्रह करें। इस मन्त्र का बीज 'क्लीं' पहले वताया गया है, जो कि चामुण्डा मन्त्र के अनुसार सारस्वत तत्व के साथ सम्बन्ध

रखता है। इस मन्त्र का प्रतिपाद्य तत्व सारस्वत है। वह सारस्वत सादिकूट का अर्थ है। सूक्त का पर्यवसान सुन्दरी तत्व में होने से 'ऐं क्लीं सौः' का व्यत्यय उपस्थित हुआ। इस प्रकार कादि, हादि, सादि इन प्रसिद्ध संकेतों में कोई विरोध नहीं आता हैं। इस क्रम द्वारा साधक परावाक् तत्व को प्राप्त कर समाष्टि शक्ति से तादात्म्य प्राप्त करता है। इस क्रम के ग्रंथ श्री तारिणी के रहस्यों को प्रकट करने वाले हैं। तारा रहस्य, तारा भक्ति तरङ्गिणी, नीलतन्त्र आदि में यह विषय स्फुट है। इस क्रम के गुरुओं द्वारा साधना प्रिय जनों को इसका तत्व प्राप्त करना चाहिए। पराविद्या का यह विषय संक्षिप्त रूप से इस मन्त्र में कहा गया है। अपराविद्या का विषय भी 'आकूति' शब्द से लिया जा सकता है। शब्दार्थ एवं वाक्यार्थ तात्पर्य वृत्ति भी शब्द शक्ति का विषय है। वैयाकरण मत में वाच्य, वाचक का तादात्म्य मूल संबंध ही अर्थबोध करता है। इस मत में यही शक्ति है। इससे ही शब्दार्थ ज्ञात होता है। मीमांसा में शब्दार्थ बताने वाला शक्ति पदार्थ पदार्थान्तर है और वह स्वतंत्र है। न्याय मत में ईश्वरेच्छा या इच्छा ही शक्ति पदार्थ है। शक्तिवाद में श्री गदाधर भट्टाचार्य ने कहा है - "इदं पदमिममर्थ बोधयतु"। 'अस्माच् छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इति ईश्वरेच्छा संकेत रूपा वृत्तिः'।। वेदान्त के शब्द में अर्थ बोधन सामर्थ्य ही शक्ति है। इन दार्शनिक वादों में भी शक्ति पदार्थ परावाक् के स्थूल रूप से अनुगत है। 'वाचमेताम्' इन पदों से ये भी अर्थ ले सकते हैं।

इस प्रकार शाक्त सिद्धान्त में प्रतिपादित पराशक्ति के कादि, हादि और सादि त्रिकूट का रहस्य उक्त वैदिक सूक्त से प्रकट होता है। साधकों की साधना की भावना की अभिवृद्धि के लिये इन मन्त्रों का अर्थ यथामति लिखा गया है।'सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु' के अनुसार तत्व ग्रहण कर साधना मार्ग में श्रद्धातिशय के साथ संलग्न होने में ही लेख श्रम की सफलता है। ऊपर व्याख्यात तीनों क्रमों में किसी भी एक क्रम से साधना आरंभ कर सकते हैं। प्राप्तव्य स्थान एक होने से सिद्धावस्था में भेद नहीं है। अत: परस्पर इन तीनों क्रमों में न्यूनाधिकता प्रतिपादन का अवकाश भी नहीं है।

।। ॐ शम् ।।

४. वैदिक शाक्तयज्ञ

वर्तमान में शाक्तमत की क्रियाओं का आधार प्रधानत: तांत्रिक साहित्य है। इसी के आधार पर सभी उपासनाओं की विधियां की जाती है। अत: कह सकते हैं कि शाक्तमत केवल तांत्रिक ही है। इस समय ऐसा बोध भी होता है। बहुत से महानुभाव ऐसा मानते भी हैं। तथापि ऐसा मानना ठीक नहीं है। वैदिक शाक्त विद्वानों का तो इस विषय में यही निश्चित मत है कि शाक्त मत वैदिक एवं तांत्रिक दोनों रूपों वाला है। यदि ऐसा न होता तो तन्त्रों में वेदाचार मानने की प्रणाली न होती सप्ताचारों में वेदाचार प्रथम ही गणित है तन्त्रों में जो क्रियायें मानी गई हैं, उनका मूल वेद में पूर्णरूप से मिलता है। यही बताने के लिये यह निबंध लिखा गया है।

सामवेद के ताण्ड्यमहाब्राह्मण में सर्व समृद्धियों का साधक षट्त्रिंशत संवत्सर पर्यन्त अनुष्ठित होने वाला शाक्तों का सत्र बताया गया है, जिसे गौरीवीति शाक्त ऋषि ने यव्यावती नदी के तट पार करके सभी समृद्धियों को प्राप्त किया था-- 'एतेन वै गौरीवीति शाक्तस्तरसपुरोडाशो यव्यावत्यां सर्वामृद्धि माध्नोंत सर्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एतदुपयन्ति' (ता०ब्रा० २५, ७,२)। तरस का अर्थ मांस है, यही पुरोडाश इस यज्ञ का है। शक्ति के मानने वाले को शाक्त कहते हैं। शक्तिगोत्रोत्पन्न ऋषि भी शाक्त हैं, यह अर्थ आपस्तम्ब तथा सायणाचार्य ने किया है। इस यज्ञ के अनुष्ठान का प्रकार

इस तरह बताया गया है। --'नवत्रिवृत: संवत्सरा नवपञ्चदशा नवसप्तदशा नवैकविंश: शाक्त्यानाँ षट्त्रिंशत्संवत्सरम्' (तां० ब्रा० २५-७-१) अर्थात् त्रिवृत्त मन्त्रों का अनुष्ठान नौ (९) संवत्सर तक, पञ्चदशस्तोत्रों का अनुष्ठान नौ तक सप्तदश का नौ तथा २१ स्तोत्रों का प्रयोग नौ संवत्सर पर्यन्त होने से षट्त्रिंशत संवत्सर को चार तरह से नौ संख्या विभक्त करने से छत्तीस होते है। शाक्त सिद्धान्त में नौ संख्या बड़े महत्व की वस्तु है। श्री भगवती के आराधन का समय नवरात्र में संसार में प्रसिद्ध है। श्रुति भी कहती है -- 'नवरात्रेणामृतत्व प्रायच्छत' (तां० २२-१२-१) अर्थात् प्रजापति ने मृत्यु से बचाने के लिये नवरात्र द्वारा देवताओं को अमृततत्व प्रदान किया। चैत्र, आषाढ़, आश्विन और पौष इन चारों महीनों में त्रिवृत मास क्रम से नवरात्र माने जाते हैं। सम्वत्सर शब्द, दिन, मास, वर्ष के अर्थ में व्यवहृत होता है।

मीमांसा - दर्शन में -- 'अहानि वाभि संरव्यत्वात्' (मी0 ६-७-४१) सूत्र में संवत्सर का वाचक दिन है।

'यो मास: स संवत्सर' ता० इस वचन में मास अर्थ है। वर्ष प्रसिद्ध है। अधिकार के अनुसार इसका विनियोग होता है। प्रत्येक दिन में छहों 'ऋतुओं का वर्ताव होने से संवत्सर कहा जाता है।' उक्त सूत्र की सुबोधिनी वृत्ति में कहा है -- 'आदित्यो वै सर्वर्तव:' सदोदेति अथ वसन्त: यदासङ्गवोऽथ ग्रीष्म: यदा मध्यंदिनेऽथ वर्षा यदपराह्णेऽथ शरत यदास्तमेत्यथ

हेमन्तशिशिरावित्येकस्मिन् अहनि षड्तुपरिगणनात् क्रम षड्तुमत्वरूपसंवत्सरत्वं युक्तम्' (मी0 अ० ६-७-४१सु०वृ०) तांत्रिक षट् कर्म साधन में भी ऋतुओं का उक्त प्रकार का ही प्राय: माना जाता है। षोडशी के पारायण (सत्रायण) सौभाग्य तन्त्र में छत्तीस माने गये हैं। अठारह दिन का पक्ष होने से शुक्ल कृष्ण भेद से एक मास छत्तीस दिन का होता है। इसे भी संवत्सर कहते हैं। षडाम्नाय की छत्तीस शक्तियों का पारायण आम्नाय पारायण तत्व पारायण नाम से कहा जाता है। इस प्रकार छत्तीस शब्द तांत्रिक साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इसी को (सत्र को) वीर साधना के नाम से भी उक्त ब्राह्मण में कहा गया है। तदेतच्छाकृत्यानां दशवीरमेषां दशवीरा जायन्ते या एतदुपयन्ति वा (वा०ब्रा० २५-७-४) अर्थात् इस सत्र को दश वीर शाक्तों का सत्रायण कहते हैं, क्योंकि इन्हीं में दश महाविद्याओं का पारायण होता हैं। इसे करने वालों को दशवीर पुत्र प्राप्त होते हैं।

इस शाक्त सत्र को ब्राह्मणकार ऋषि ने ब्रह्मा प्रजापति से देखे हुये तत्वों से भी श्रेष्ठ बताया है।' 'गौरीवीतिर्वा एतच्छाक्त्यो ब्राह्मणोऽति रिक्तमपश्यत् तद्गौरी वितमभवत् अतिरिक्तं वा एतदतिरिंक्तेन वा स्तुवन्ति यद् गौरीवितेन षोडशिनं श्वस्तनवान् भवत्यपि प्रजाया: उपक्लृप्त:' (ता०ब्रा० १२-१३-१०) अर्थात् गौरी महावाक् कुण्डलिनी महाशक्ति का जानने वाला शाक्त ऋषि ब्रह्मा प्रजापति से अतिरिक्त अधिक फल वाले साम

का द्रष्टा हुआ। इसी से षोडशी स्तोत्रों का प्रणयन करके स्तुति किया। इससे पुत्र पौत्रादि की समृद्धि प्राप्त हुई। ब्राह्मण के इस अर्थ का साक्षी यह मन्त्र भी है जो षोडशी पात्र के अवेक्षण में विनियुक्त होता है। "यस्मादन्यो न परोऽस्ति जातो य आवभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संविदानः त्रीणि ज्योतींषि सच ते स षोडशी" (य०अ० ३२) जिससे परे और कोई नहीं है, वही सम्पूर्ण भुवनों का रूप धारण किये हुये है। प्रजापति ने अपनी प्रजाा के द्वारा उसे जाना। तीन ज्योतियों का समुदाय ही वह षोडशी विद्या का श्रेष्ठत्व तन्त्र प्रसिद्ध है तीन ज्योतियाँ बाला, पञ्चदशी और षोडशी ये प्रत्येक साधक को ज्ञात है। इन्हीं का समुदाय परा श्री विद्या है। षोडशी पात्र, षोडशी याग और षोडशी विद्या तीनों में यह शब्द समान रूप से व्यवहृत होता है।

समान विधान न्याय के अनुसार ज्योतिष्टोम के अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, आप्तोर्याम और वाजपेय इन सत्रों का प्रयोग होता है। समान विधान का निर्णय मीमांसा में इस प्रकार किया गया है-- "संस्थास्तु समान विधानाः प्रकरणा विभगात्" (मी० ३-६-४१)। ज्योतिष्टोम की चार संस्थायें हैं--अग्निष्टोम उकथ्य, षोडशी और अतिरात्र। संस्था स्तोत्रों के पाठ की समाप्ति को कहते हैं। अवशिष्ट तीनों सत्रों की इन्हीं चारों में गतार्थता है। इनके विषय में श्रुति का आदेश ऐसा है-- "ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्, पशुकां उक्थ्यं गृह्णीयात् षोडशिना वीर्यकामः स्तुवीत, अतिरात्रेण प्रजाकामं

याजयेत्।'' वाक्यों में से जो वीर्य अर्थात् बल ऐश्वर्य की इच्छा वाला है, उसे षोडशी देवता के सत्र का विधान है। तैत्रीय संहिता और ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा है- ''गौरीवितं षोडशि साम भवति'' (१८-६-१८) अर्थात् षोडशी याग में भिन्न-भिन्न मन्त्रों से सामगान किया जाता है। यहाँ तीन ऋचाओं का एक सूक्त विवेचन के साथ देते हैं, जिसमें यज्ञ का रहस्य स्पष्ट रूप से व्यक्त हो जाता है।

सूक्त विवेचन :-

आजागृविर्विविप्र ऋतं मतीनां,
सोमः पुनानो असदच्चनूषु।
सपलित्लयं मिथुनासो निकामा,
अध्वर्यवा रथिरासस्सुहस्तः।।१।।
स पुनान उपसूरे दधान ओभे,
अ प्रारोदसी वीष आवः।
प्रिया चिदस्य प्रियसास,
अति सतोधनं कारिणेन प्रयंसत्।।२।।
सवर्चितावर्धनः पूयमान स्सोमो,
मीढ्वाँ अभिनोज्योतिषावीत्।
यत्रनः पूर्वे पित्तरः पदज्ञाः,
स्वर्विदा अभिगा अद्रि मिष्णन्।।३।।

इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं। इसका देवता सोम ऋषि पाराशर और त्रिष्टुप् छन्द है सोम शब्द के अनेक अर्थ हैं। सोम का अर्थ चन्द्रमा, ब्रह्म आचार्य होता है। इन ऋचाओं का

सोम याग में विनियोग होने से सोम का अर्थ औषधि भी है, जिसके रस का पान किया जाता है। अग्नि, सूर्य और चन्द्र यही शक्ति तत्व के मुख्य रूप हैं। मूलाधार में कुण्डलिनी देवता का इसी से त्रिवलय कृत रूप माना जाता है। त्रिवलय का अभिप्राय इन्हीं तीनों देवताओं से हैं। अग्नि तत्व का सम्बन्ध कालीशक्ति से, सूर्य का सम्बन्ध तारा से तथा सोम का सम्बन्ध षोडश कला विशिष्ट होने से षोडशी से है। षोडशी नित्या, तिथि कला आदि इसके भेद हैं। षोडश स्तोत्रों के प्रयोग से इस वैदिक सत्र को इसीलिये षोडशी कहते है, शक्ति शक्तिमान का अभेद होने से शक्तितत्व की स्तुति भी इससे होती है। सर्वदा जागरणशील (शक्ति को जाग्रत करने वाले) यथार्थ स्तुतियों का ज्ञाता वह सोम पवित्र करता हुआ चमसपात्रों (आहुति पात्रों में) में स्थित होता है। उसे यज्ञ के नेता साधक गण मिथुनी भाव, शक्ति सहित, इकट्ठे होकर अपने सुन्दर हाथों से ग्रहण करते हैं ।।१।। संस्कार युक्त शोधा हुआ सोमरस द्यौ लोक एवं भू लोक में ऐश्वर्य युक्त महिमा से पूर्ण करता है, वह अत्यन्त प्रिय सोम हमारी रक्षा एवं ऐश्वर्य को प्रदान करें।।२।। देवताओं को तृप्त करने वाला स्वरूप कामनाओं की वर्षा करने वाला वह सोम हमारी अपने तेज से रक्षा करे, जिसके प्रसन्न होने पर हमारे पूर्वजों ने अपना मार्ग प्राप्त किया था।।३।।

इन ऋचाओं का अर्थ उक्त सभी अर्थों में घटित होता है। प्रथम स्तोम में यह पहला स्तोम है। तीन, पन्द्रह, सोलह, सत्तरह एवं इक्कीस बार पाठ से एक विंशति स्तोम होकर यज्ञ की पूर्ति होती है।

मांस पुरोडाश

अनेक वैदिक विद्वानों का यह मत है कि संहिता काल में यज्ञों में मांस का उपयोग नहीं होता था। राजा मरूत ने इसका प्रचलन किया, परन्तु ब्राह्मण एवं मूल ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मांस का उपयोग देखा जाता है। बहुत से विधायक वाक्य स्पष्ट रूप से इसका प्रतिपादन करते है। जैन बौद्ध के अहिंसावाद के प्रभाव से यह प्रथा बन्द हो गई, परन्तु वैदिक ब्राह्मणों ने इसे अधर्म रूप से नहीं माना। वेदान्तियों ने भी इसे धर्म ही माना है- "अशुद्धमिति चेन्नशब्दात्" (वे० ३-१-२५) इस सूत्र के भाष्य में सभी आचार्यो ने वैदिकी हिंसा को धर्म ही बताया है। शक्ति भाष्य कर्ता श्री पंचानन भट्टाचार्य ने तो देवी मन्दिरों पर होने वाले बलिदान को धर्म ही बताया है। मीमांसक तो सर्वथा धर्मरूप से इसका समर्थन करते है। सवनीयानां मांसमयताधिकरण पर मीमांसा में कहा गया है --"मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषात्" (३-८८, २२-४२) भक्तिरस निधा वन्याप्येति चेत्।।४३।। स्यात प्रकृति लिङ्गाद् वैराजवत् ।।४४।।" इस अधिकरण के अनुसार शाक्त्यों का मांस ही पुरोडाश होता है। पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष के द्वारा भाष्य शास्त्र दीपिका की टीका मयूखमालिका में व्यवस्थित किया गया है। आपस्तम्ब के

''एतेन ह वै शाक्त्यो गौरीविति तस्य पुरोडाश आभावीति'' प्रमाणद्वारा सिद्ध किया गया है, परन्तु मीमांसा सूत्रों की सुबोधिनी वृत्ति में शाक्त्य की जगह पर शाक्य पद दिया हुआ है जो कि भ्रममूलक प्रतीत होता है। उक्त सभी प्रमाणों से विपरीत है। इसी के अनुसार मीमांसा सूत्रों का इंग्लिश अनुवाद करने वाले पंडित मोहनलाल सन्दल एम.ए., एलएल.बी. ने भी शाक्त्य के स्थान पर शाक्य ही लिखा है। पंडित जी ने मि० कुण्टे महाशय की अपूर्व कल्पना का उदाहरण भी दिया है -- ''मिस्टर कुण्टे, दि लर्नेड एडिटर ऑफ दी षड्दर्शन चिन्तनिका सेज दैट अङ्गिरसामयन एन्ड शाक्यानामयन् आर दी एम्ब्लेम्स ऑफ दी माइग्रेशन ऑफ दि आंगिरस एण्ड शाक्य रेसेज इन टू इंण्डिया। ही इज फर्दर ऑफ ओपीनियन दैट दि ट्रेसेज ऑफ दि एशियण्ट कोलोनाइजेशन वाइ दि आर्यन एण्ड आङ्गिरस रेसेज इन सदर्न कन्ट्री एण्ड स्टिल फाउन्ड अमंगस्ट दि प्रेजेण्ट ब्राह्मनै हू काल देमसेल्व्ज अय्यर्स (आर्य) एण्ड आयंगर्स (अङ्गिरस) इट इज वेरी प्लानिव्ल थ्योरी।''

शाक्त्य का अर्थ

जिस तृच का गान षोडशी साम में होता है, उसके द्रष्टा ऋषि के पुत्र पाराशर ऋषि हैं। अपत्यार्थक यत् प्रत्यय होकर शाक्त्य शब्द की सिद्धि होती है। शक्ति के उपासक होने से इन ऋषि को शक्ति कहते है। वे वसिष्ठ ऋषि के पुत्र थे। इस

प्रकार ब्राह्मण एवं मन्त्र द्रष्टा होने से शाक्त्य सत्र पाराशर ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'शाक्तो गौरविति:' इत्यादि वाक्य में इन्हीं के लिये शाक्त का व्यवहार किया गया है। पाणिनीय के 'भक्ति:' इस सूत्र के अण् प्रत्यय होने से नि:संदिग्ध रूप से ऋषि की शक्ति पदार्थ में एकनिष्ठ भक्ति का होना सिद्ध होता है।

उपसंहार

शक्ति उपासना में जो तत्व आज तन्त्र साहित्य द्वारा प्रचलित हैं, वही तत्व उक्त वैदिक ग्रन्थों में भी परम प्रामाणिक रूप से माने जाते हैं। दोनों सिद्धान्तों में किंचित भी अन्तर नहीं है। यह हमने पूर्व के लेखों में बताया है एवं इस वैदिक शाक्त यज्ञ से भी यह बात सिद्ध होती है। आशा है, विद्वत्समुदाय इन विचारों से लाभ उठायेगा।

।। ॐ शम् ।।

५. ईशोपनिषद् में 'शक्तिकारणवाद'

सृष्टि के आदिकाल से ही मनुष्य अक्षय सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता रहा है। उसी का परिणाम धार्मिक जगत में विस्तृत भिन्न-भिन्न सिद्धान्त एवं पंथ भेद हैं। प्रारम्भ काल में प्रत्येक पंथ में अनेकता देखने में आती है पर जब सतत अभ्यास से राग द्वेष, आग्रह अहंकार आदि अज्ञान जन्य दोष निवृत्त हो जाते हैं तथा वास्तविकता झलकने लगती है, तब भेदभाव का मूल्य जाता रहता है और सर्वत्र एक तत्व का ही अनुभव होने लगता है। इस प्रसङ्ग को वैदिक साहित्य के मूर्धन्य उपनिषद ग्रन्थों में जिस प्रकार से उपस्थित किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

सनातन काल से ही तत्वज्ञानियों ने परमतत्व को भिन्न-भिन्न नाम रूपों से अनुभव किया हैं एवं उसी के अनुसार चलकर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की है; क्योंकि चरम लक्ष्य की प्राप्ति उसी परम तत्व की उपलब्धि में है और उसी में अक्षय सुख एवं शान्ति है। पिता, बन्धु, सखा आदि भावों के आलम्बन से जिस प्रकार सम्बन्ध जोड़कर हम उसे पहचानते है। वैसे ही मातृभाव से भी उसे प्राप्त करते हैं इसी का परिणाम शक्ति की उपासना है जो कि सनातन काल से ही हमारे देश में प्रचलित है और कृपा, दया, करुणा, स्नेह आदि भावों की अभिव्यक्ति के लिये उपासना मार्ग में अपना श्रेष्ठ स्थान रखती है। स्वामी श्री रामतीर्थ जी ने अपने अमेरिका के एक व्याख्यान में इसे बड़े ही सुन्दर शब्दों में कहा है--

"In this country you worship God as the father `My father which are in heaven'. But in India God is worshipped not only as the father but as the mother also. the mother is the dearest word in the Indian Language (MATAJI) the blessed God the dearest God."

"इस देश में आप सब ईश्वर की उपासना पिता के रूप में करते हैं, जो कि स्वर्ग में रहता है, पर हिन्दुस्तान में पिता के ही रूप में उसकी उपासना नही है, बल्कि उसे माता के रूप में भी पूजित करते है। भारतीय भाषा में 'माताजी' यह अत्यन्त प्रिय शब्द है। यह परम कल्याण का करने वाला परम प्रिय ईश्वर तत्व है।"

शक्ति तत्व

नाम रूप से व्यक्त सभी पदार्थों में शक्तितत्व धर्म या गुण रूप से व्यक्त हो रहा है, इसी से पदार्थ का परिचय होता है और उसका व्यवहार किया जाता है। यह तत्व परम सत्ता ब्रह्म में अपृथक रूप से विद्यमान है। उपनिषद के ऋषियों ने बताया है-- 'देवात्मशक्तिं स्व गुणैर्निगूढाम्' वास्तव में यह तत्व देव की स्वरूप शक्ति है। देव को अचल रूप से अपनी सत्ता में धारण किये हुये है। यह पदार्थ शक्ति के सिवा भिन्न नहीं हो सकता। इसीलिये आचार्य प्रवर श्री शंकर स्वामी ने कहा है--शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि। (सौ० ल०)

शक्ति युक्त ब्रह्म ही कार्य करने में समर्थ होता है, अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। ब्रह्मवाद, निरीह, निष्क्रिय, निरञ्जन आदि लक्षणों वाले परमतत्व को बतलाया है, परंतु ऐसे लक्षणों वाले तत्व से सृष्टि कार्य नहीं हो सकता, न उससे सृष्टि का संकल्प ही बन सकता है, न उसमें आविर्भाव तिरोभाव ही हो सकता है। अतएव शक्ति पदार्थ को ही जगत् का कारण मानना पड़ता है। इस मत में ब्रह्मजीव को भी अन्ततोगत्वा धर्मी शक्ति के रूप में अङ्गीकार कर लिया गया है। इस प्रकार सारा विश्व शक्तिमय के रूप में ही दृष्टिगोचर होता है - 'सर्वशाक्तमजीजनत्' (वहवृच०)

ऐसा श्रुति का भाव ही सर्वत्र अनुभूत होता है। 'ईशावास्यमिदं' इसी अभिप्राय का द्योतक है। इसलिये शक्तिकारणवाद ही युक्ति संगत सिद्धांत है। ''तदेजति तन्नैजति'' इत्यादि मन्त्र का अर्थ ठीक संगत नहीं लग सकता, क्योंकि ''एजृ कम्पने'' का अर्थ क्रिया परक ही है। निष्क्रिय ब्रह्मवाद में यह असंभव हैं। इसकी यथार्थ सङ्गति शक्ति कारणवाद से ही लग सकती है। इसी प्रकार अन्य मन्त्रों का अर्थ भी समझना चाहिए। द्वैत विशिष्टाद्वैत वादों में तो शक्ति पदार्थ माना ही जाता है। शक्तिवाद के सर्वथा विपरीत मायावाद में भी इसे मानना ही पड़ा है। स्वामी श्री विद्यारण्य ने कहा है-

''वस्तुधर्मा नियम्येरन शक्त्यानैव यदा तदा।
अन्योन्यधर्मसांकर्याद्विप्लवेत् जगत् खलु।।''

(पं० द० ३-३९)

'वस्तुधर्म को नियमन करने वाली यदि शक्ति न हो तो परस्पर अन्योन्य धर्म का संकर होकर जगत् नष्ट हो जाएगा। शक्ति पदार्थ स्वसत्ता शून्य मिथ्या होकर जगत् का नियामक कैसे हो सकता है, यह एक विचारणीय बात इस मत में है। शाक्त सिद्धान्त में शक्ति पदार्थ स्वतंत्र सच्चिदानन्द स्वरूप माना गया है। इसी के अनुसार ईशोपनिषद् का अर्थ कैसे सङ्गत होता है, इसे यहां बताते है।'

उपनिषदर्थ संगति

काण्व माध्यन्दिनी दोनों शाखाओं के पाठानुसार इस उपनिषद में एक ही तत्व का प्रतिपादन हुआ है। यद्यपि दोनों के पाठों में शब्दकृत अनेक भेद हैं तथापि मौलिक अर्थ में भेद नहीं है। उपक्रमोपसंहार न्याय से एक ही पराशक्ति से आरंभ करके उसी में उपसंहार किया गया है। 'ईशावास्यमिदंसर्वम्'' इस मन्त्र में ''ईशाया आवास्यम्'' ऐसा अर्थ लेने से ''ईशा पराशक्ति रूपपरब्रह्म का अभिन्न रूप ही यहां अभिप्रेत होता है'' इसी पराशक्ति का यह सारा संसार वासस्थान है। इसमें त्याग रूप से अर्थात् उसी का सब कुछ है, उसके प्रसाद रूप से ही भोग्य वस्तुओं का ग्रहण कर मुमुक्षु को अपना निर्वाह करना चाहिये। 'ददाति प्रतिगृह्णाति' के अनुसार ही परम सिद्ध प्राप्त होती है। यह अर्थ उपक्रम से कथन कर उपसंहार में 'योऽसाव सौ पुरुषः सोऽहमस्मि' (१६) इस मंत्रांश के द्वारा पराशक्ति में ही उपसंहार किया गया है। 'सोऽहं' यह पराशक्ति का वाचक है।

सकारः शक्तिरूपः स्याद्धकारः शिवरूपकः।
उभयोरैक्यमादाय पराशक्तिरुदीर्यते।।

इस तन्त्र वचन से वह स्फुट होता है। प्रथम मन्त्र में जो तत्व कहा गया है उसे जान लेने पर संसार में कर्म करते हुये भी साधक निर्लिप्त रहता है, यह दूसरे मन्त्र का अर्थ है। तीसरे मन्त्र में आत्मज्ञान की आवश्यकता बतायी गयी है। चौथे, पांचवे मन्त्रों में परमात्मा का स्वरूप लक्षण बताया गया है, छठें सातवें में आत्मज्ञान का फल शोक मोह की निवृत्ति रूप कहा गया है। आठवें में जगत् के संचालक सगुण रूप को बताया गया है। इस प्रकार प्रथम वर्णक आठ मन्त्रों का है। शक्ति का निर्देश प्रायः स्त्रीलिंग शब्दों से ही होता है, परंतु यह नियम नहीं है कि पुल्लिंग, नपुंसकलिंग का प्रयोग उसके विषय में वर्जित है। कवि कालिदास ने कहा है--

न त्वमम्बपुरुषो न चांगना चित्स्वरूपिणि न षण्डतापि ते।
नापि भर्तुरपि ते त्रिलिंगिता त्वां बिना न तदपि स्फुरेदयम्॥

(चिद्गगनचन्द्रिका)

इसलिये इन उक्त आठों मन्त्रों में पुलिंग, नपुसंकलिंग शब्दों का प्रयोग उक्त अर्थ की सिद्धि में विरुद्धता का आपादक नहीं'' हो सकता। दूसरे वर्णन में विद्या अविद्या, सम्भूति असम्भूति के रहस्य का वर्णन छः मन्त्रों में किया गया है। निर्देश तथा अर्थ के अनुसार यह अर्थ शक्ति परक ही है। शेष तीन मन्त्रों में उक्त अर्थ का उपसंहार करके शक्ति तत्व में पर्यवसान किया गया है। एवं अद्वैत की सिद्धि के लिये जीव तत्व का अभेद -

'अस्मि' क्रियापद से बताया गया है, अन्तिम मन्त्र में क्रम मुक्ति के प्रापक मार्ग (देवमान) को बताया जो मध्यमाधि कारियों के लिये कहा गया है। ईशा, विद्या, अविद्या, सम्भूति, असम्भूति, सोऽहं आदि शक्ति वाचक अनेकों पदों का प्रयोग उक्त अर्थ को निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध करता है, जिससे ईशोपनिषद् का तात्पर्य' शक्तिकारणवाद में' स्पष्ट हो जाता है।

विद्या-अविद्या, सम्भूति-असम्भूति :

'विद्या अविद्या' आदि प्रतिपादन करने वाले छः मन्त्रों के अर्थ उपनिषद् के भाष्यकारों ने भिन्न-भिन्न रीति से परस्पर विलक्षण रूप से किए है। कोई समुच्चयवाद के अनुसार, कोई क्रम समुच्चय के अनुसार, तो कोई कुछ सम्भूति असम्भूति का भी अर्थ ऐसे ही किया गया है कोई विज्ञानवाद के खण्डन में करते हैं, तो कोई प्रतिमा पूजन के निषेध में करते है। इन अर्थो पर दृष्टि डालते है, तो इनका अभिप्राय समझना एक दुरुह कार्य प्रतीत होता है। ''ललिता सहस्त्र नाम'' के ''सौभाग्य भास्कर'' भाष्य करने वाले स्वनाम धन्य आचार्य भास्करराय ने ''विद्या विद्या स्वरूपिणी'' इस नाम की जो विलक्षण व्याख्या की है उसे यहाँ देते हैं, जिससे इसका यथार्थ अर्थ समझा जा सकता है--

विद्यां चाविद्यां च यस्तेद्वेदोभयं सह।
अविद्ययां मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

इति श्रुतौ प्रसिद्धे विद्याविद्ये, विद्या स्वात्मरूपं ज्ञानम् अविद्या

चरमवृत्तिरूपं ज्ञानं तदुभयं स्वरूपमस्याः। उक्तं च वृहन्नारदीये--

तस्य शक्तिः परा विष्णोर्जगत्कार्य परिक्षमा।
भावाभाव स्वरूपा सा विद्याविद्येति गीयते।।

इति देवी भागवतेऽपि ब्रह्मैव सातिदुष्प्रापा विद्या-विद्या स्वरूपिणीति तत्रैव स्थलान्तरे 'विद्याविद्ये ति देव्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव'। एकया मुच्यते जन्तुरन्यया बध्यते पुनरिति। यद्वा विद्यैव चरम वृत्तिरूपं ज्ञानम् अविद्या भेदभ्रान्तिरूपं ज्ञानं स्वपरब्रह्मात्मकं ज्ञानम्। स्वपद्स्यात्मवाचित्वात् स्वं ज्ञातावात्मनीति कोशात, एतत्त्रयं रूपमस्याः उक्तं च लैङ्गे-

भ्रान्तिर्विद्या परं चेति शिवरूपमिदं त्रयम्।
अर्थेषु भिन्नरूपेषु विज्ञानं भ्रान्ति रूच्यते।।
आत्माकारेण संवित्तिबुधर्विद्येति कथ्यते।
विकल्प रहितं तत्वं परमित्यभिधीयते।। इति।

अर्थात 'विद्यां च अविद्यां च' इस मन्त्र में विद्या अविद्या प्रसिद्ध है। विद्या स्वात्मरूप ज्ञान और अविद्या चरम वृत्ति रूप 'अहंब्रह्मास्मि' का ज्ञान- ये दोनों जिसके स्वरूप हैं, उसे विद्याविद्या कहते हैं। परोक्षापरोक्ष ज्ञान भी वेदान्त में वेदान्त इसकी संज्ञा है। बृहन्नारदीय में कहा है-- ''उस परमात्मा की पराशक्ति जगत् कार्य करने में समर्थ है। वह भाव अभाव रूप वाली विद्याविद्या से कही जाती है।'' देवीभागवत में भी कहा है--

वह दुष्प्राय पराशक्ति ब्रह्म ही है। वह विद्याविद्या स्वरूप वाली है।'' वहीं दूसरे स्थल पर कहा है- ''हे राजन्! विद्या-अविद्या दो रूप देवी के हैं, एक से प्राणी मुक्त होता है और दूसरे से बँधता है।

अथवा विद्या ही चरमवृत्तिरूप ज्ञान है। भेद भ्रान्ति रूप ज्ञान अविद्या है, ''स्व'' परब्रह्मज्ञान--ये तीनों जिसके स्वरूप हैं ''स्व' पद आत्मा का वाचक है।

लिङ्ग पुराण में कहा है-- 'भ्रान्ति' विद्या और पर- ये तीन रूप शिव के हैं। पदार्थो में भेद बृद्धि रूप जो ज्ञान है, वह 'भ्रान्ति' है। आत्माकार अनुभव 'विद्या' है, विकल्प रहित तत्व 'पर' है। इन पुराण वचनों से विद्याविद्या का अर्थ व्यक्त हो जाता है, जिसे महर्षि व्यास ने भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों पर पुराणों में व्याख्यान किया है--

सम्भूति असम्भूति साकार निराकार उपासना के द्योतक हैं। उत्तर गीता में इसी रूप में माना गया है। जिस तरह परोक्षापरोक्ष ज्ञान का साहचर्य है, ऐसे ही सम्भूति असम्भूति का भी साहचर्य अभिप्रेत है। ऐसा अर्थ मानने पर स्वाभाविक अर्थ संगति लग जाती है। लिङ्गपुराण में ज्ञान के जो तीन भेद कहे गये हैं, उनकी संगति इस उपनिषद् में बैठ जाती है। आठ मन्त्र तक तत्वज्ञान, छः मन्त्रों में विद्याविद्या का ज्ञान और शेष अविद्या में ही पर्यवसित है।

उपसंहार

संक्षिप्त रूप में पराशक्ति का ईशोपनिषत् का प्रतिपादित जो क्रम यहां बताया गया है, उसका समन्वय वेदान्त वाक्यों में भी है, जिसे देवीभागवत आदि शक्ति के पुराणग्रन्थ एवं तन्त्रों में माना गया है। उसके अध्ययन करने वाले पाठक इससे भलीभाँति परिचित हैं। इस संकेतमात्र से यद्यपि सर्वथा समाधान होना अशक्य है, तथापि विचारकों के लिये एक मार्ग अवश्य निर्दिष्ट हो जाता है, जिसे कोई समानधर्मा पूर्ण कर सकेगा।

॥ॐ शम्॥

६. श्री बगला महाविद्या

काञ्चनपीठनिविष्टां सादर मुनिवर वर्णित प्रभावाम्।
करूणापूरितनयनां श्रीबगलां पीताम्बरां वन्दे।।

परम करुणामयी श्री जगन्माता ने देवताओं की स्नेहपूर्ण प्रार्थना से द्रवीभूत होकर यह प्रतिज्ञा की है कि "जब जब हमारे भक्त असुरों से पीड़ित होंगे तब तब मैं अवतार धारण करके असुरों का विनाश कर उन्हें सुखी करूँगी।" (स०अ० ११-५५) सारे विश्व में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहां किसी न किसी रूप में माता की पूजा न होती हो। ये सारे रूप उक्त प्रतिज्ञा की स्मृति के ही सूचक हैं। इनके साथ एक महत्वपूर्ण इतिहास का होना भी अनिवार्य है। तथापि काल की कुटिल गति के प्रभाव से हमारी दृष्टि से वह तिरोहित है। देवी भागवतादि पुराण ग्रन्थों में जो कुछ इस विषय के इतिहास उपलब्ध हैं, वे इस महान संस्मरण के बहुत अल्प ही निदर्शन हैं। अनेक रहस्य अभी तक छिपे हुये है। श्री जगदम्बा की शुभ प्रेरणा से ही वे प्रकट हो सकते है।

शक्ति उपासना में इस समय काली, तारा और षोडशी विद्या के ही रूप ध्येय, ज्ञेय रूप से विशेषतः प्रचार में हैं। अन्य महाविद्याओं के विषय में बहुत कम ही प्रकाश हुआ है। आज के निबन्ध में श्री बगुलामुखी महाविद्या के विषय में वेद एवं तन्त्र ग्रन्थों में जो कुछ कहा गया है, उसी पर कुछ विचार करते है, जिससे इस विद्या का रहस्य "चण्डी" के पाठकों को व्यक्त होगा।

स्वतन्त्र तन्त्र में कहा गया है --

'अथ वक्ष्यामि देवेशि बगलोत्पत्तिकारणम्।
पुरा कृतयुगे देवि वातक्षोभ उपस्थिते॥
चराचर विनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायणः।
तपस्यया च सन्तुष्टा महात्रिपुरसुन्दरी॥
हरिद्राख्यं सरो द्रष्ट्वाजलक्रीडा परायणा।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका॥
श्रीविद्या सम्भवं तेजो विजृम्भति इतस्ततः।
चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता॥
कुलऋक्ष समायुक्ता वीरात्रिः प्रकीर्तिता।
तस्यामेवार्ध रात्रौ तु पीत ह्रद निवासिनी॥
ब्रह्मास्त्रविद्यां संजाता त्रैलोक्य स्तंभिनीपरा।
तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्यानुविद्ययोर्गतम्॥(प्रा०तो०)

अर्थात् श्री शंकरजी पार्वती से कहते हैं कि हे देवि ! श्री बगला विद्या के आविर्भाव को कहता हूँ। कृतयुग में सारे जगत् का नाश करने वाला वातक्षोभ (तूफान) उपस्थित हुआ। उसे देखकर जगत् की रक्षा में नियुक्त भगवान विष्णु चिन्तापरायण हुए। उन्होंने सौराष्ट्र देश में हरिद्रा सरोवर के समीप तपस्या कर श्री महात्रिपुरसुन्दरी भगवती को प्रसन्न किया। श्री विद्या ने ही बगला रूप में प्रकट होकर समस्त तूफान को निवृत्त किया। त्रैलोक्य स्तम्भिनी ब्रह्मास्त्र महाविद्या श्री विद्या एवं वैष्णव तेज से युक्त हुई। मंगलवार युक्त चतुर्दशी, मकार, कुल नक्षत्रों से युक्त वीररात्रि कही जाती है। इसी की अर्धरात्रि में श्री बगला का अविर्भाव हुआ था।

उक्त कथानक के अनुकूल कृष्णयजुर्वेद की काठक संहिता में दो मन्त्र आये हैं, जिनसे इस विद्या का वैदिक रूप प्रकट होता है- "विराड्दिशां विष्णुपत्न्यघोरास्येशाना सहसो या मनोता। विश्वव्यचा इषयन्ती सुभूता अस्तु अदित्तिरूपस्थे। विष्ट्म्भो दिवोधरुण: पृथिव्या अस्येशाना सहसो विष्णुपत्नी। बृहस्पति र्मातारश्वोतेवा पुस्संध्वाना धाता अभिनोगृणन्तु।"

(का०सं० २२ स्थानक, १, २ अनु० ४९, ५०)

अर्थ- 'विराड्दिशा' दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाली 'अघोर' सुन्दर स्वरूप वाली 'विष्णुपत्नी' विष्णु की रक्षा करने वाली वैष्णवी महाशक्ति 'अस्य' त्रिलोकी जगत की 'ईशाना' ईश्वरी तथा 'सहस:' महान बल को धारण करने वाली जो 'मनोता' कही जाती है। मनोता का निर्वचन ऐसा किया गया है- 'वाग्वै देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांसि ओतानि, अग्निवैं देवानां मनोता तस्मिन् हि तेषां मनांसि ओतानि' (ऐ०ब्रा० २-१०) अर्थात् देवताओं का मनस्तत्व वाक्, अग्नि और गौ में ओतप्रोत है। अत: इन तीनों शक्तियों के समुदाय को मनोता कहते हैं। "विश्वव्यचा" अन्तरिक्ष लोकस्वरूप समस्त नक्षत्र मण्डल में प्रकाशित होने वाली" अन्तरिक्षं विश्वव्यचा" (तै० ३-२-३७) "इषयन्ती" समस्त जगत् को प्रेरित करने वाली इच्छा शक्ति रूपा "सुभूता" आनन्दार्थ अनेक रूप में आविर्भूत होने वाली "आदिति:" अविनाशी स्वरूप देवमाता "उपस्थे" हम उपासकों के समीप "शिवा" कल्याण स्वरूपवाली "अस्तु" हो। "दिव: विष्टम्भ:"

जो दिव् लोक का स्तम्भन करने वाली है। मन्त्र में आया हुआ "विष्टम्भ:" पद स्तम्भन तत्व को बता रहा है। "धरुण: पृथिव्या:" पृथवी तत्व की जो प्रतिष्ठा है "प्रतिष्ठा वै धरुणम् (श० ७-४-२-५)। श्री बगला माता का बीज पार्थिव है--"बीज स्मरेत् पार्थिवं" तथा बीज कोष में इसे ही प्रतिष्ठा कला भी कहते हैं। "अस्य सहस: ईशान" सारे जगत् पर जिसका शासन है, वह विष्णु पत्नी विष्णु की रक्षा करने वाली बृहस्पति, मातरिश्वां और वायु रूप वाली "सन्ध्वाना" शब्द तत्व का कारण, 'वाता' वातक्षोभ को शान्त करने वाली "अभिनोगृणन्तु" हमें उभय लोक में भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करें। "स्वर्गापवर्गप्रदे" इस वचन से सिद्ध होता है। स्वतन्त्र तन्त्र में उल्लिखित कथा से इन दोनों मन्त्रों में कथित तत्व अभिन्न ही सिद्ध हो रहा है।

स्तम्भन-शक्ति का स्वरूप

नाम रूप से व्यक्त एवं अव्यक्त सभी पदार्थों की स्थिति का आधार स्तम्भन शक्ति है। इसी अभिप्राय में कहा है- "आधार भूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यत: स्थितासि" (सप्तशती)। वेद एवं वेदान्त शास्त्र में इसे ही ब्रह्मतत्व कहा गया है "येन द्योरुग्रापृथिवी च द्रढा येन स्व: स्तम्भितं येन नाक: (य०वे० ३२-६)। अर्थात् उस परम तत्व स्तम्भन शक्ति से ही द्यौ लोक वृष्टि प्रदान करता है, उसी ने पृथ्वी दृढ़ होकर सब पदार्थों को धारण कर रही है, उसी से आदित्य मण्डल स्तम्भित है, उसी से स्वर्ग लोक भी

ठहरा हुआ है। इस मन्त्र में स्तम्भन शक्ति का स्वरूप एवं उपयोग बताया गया है। बृहदारण्यक के अक्षर ब्राह्मण में इसी की व्याख्या आगे विस्तार से की गई है- "स होवा चैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति......एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत......द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः, (वृ० ४-८-८-९)। अर्थात् हे गार्गि इसी अक्षर तत्व को ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता योगी अक्षर कहते हैं। इसीसे सूर्य, चन्द्र, द्यौ, पृथिवी आदि समस्त लोक अपनी अपनी मर्यादा में ठहरे हुये हैं। वेदान्त के "अक्षराम्बरान्तधृतेः" तथा "सा च प्रशासनात् (वे०द० १-३-१०, ११) इन दोनों सूत्रों में इसी की मीमांसा की गई है। स्त्रीलिगं का प्रयोग होने से परमतत्व शक्ति रूप वाला है, यह स्पष्ट हो जाता है। "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगत्" इस श्लोक में विष्टम्भ पद से भगवान श्रीकृष्ण ने उक्त तत्व का ही समर्थन किया है। इस प्रकार श्रुति स्मृति के प्रमाणों द्वारा स्तम्भनशक्ति का स्वरूप ज्ञात होता है। वही विष्णुपत्नी सारे जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूपवाली है। इसे ही तन्त्र में श्री बगला महाविद्या कहा गया है। इसके इस व्यापक स्वरूप के ज्ञान से साधक अविद्या से मुक्त होकर मुक्ति का लाभ करता है। महाविद्या नाम की चरितार्थता इसीसे होती है। दूसरा स्वरूपकर्म मार्ग का है। जगन्माता की ज्ञान और क्रिया इन दोनों शक्तियों का आश्रय करके श्रेय एवं प्रेय इन दोनों धर्मों का निरूपण आर्य शास्त्रों में किया गया है। "

यतोभयुदयनिः श्रेयससिद्धिः सधर्मः" इस प्रसिद्ध कणाद सूत्र में कहा गया है। उक्त ज्ञान स्वरूप मुमुक्षु साधकों के लिये माना जाता है। दूसरा कर्मकाण्ड ऐहिक सुखों के लिये उपयुक्त होता है। इसके तीन स्वरूप है- शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक। दैवी प्रकोप से उत्पन्न हुए नाना प्रकार की आधि - व्याधियों के शमन के लिये शान्ति कर्म का उपयोग होता है। "धनजनानां वर्धनम् पुष्टिः" धन जन आदि लौकिक उपयोगी वस्तुओं की वृद्धि के लिये पौष्टिक कर्मो का अनुष्ठान होता है। और शत्रुओं के निग्रह के लिये अभिचारिक कर्मो का विधान है।

इन तीनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान स्तम्भन महाशक्ति के रूप से होता है। स्वतन्त्र तन्त्र में शान्ति कर्म का उपयोग बताया गया है। आधिव्याधि का निरोध स्तम्भन का प्रधान कार्य है। जिस तरह धातुओं की न्यूनता से रोगी की शारीरिक क्षीणता होकर दुर्बलता होती जाती है, उस अवस्था में आयुर्वेद वैद्य क्षीणता की स्तम्भन औषधों को देकर रोगी को पुष्ट करने के लिये पौष्टिक उपचार करके उसे बलिष्ठ बना देते हैं, इसी प्रकार दारिद्रयग्रस्त मनुष्यों को पौष्टिक कर्मो द्वारा धन जन की वृद्धि करने में स्तम्भनशक्ति का उपयोग होता है। इसका निरूपण वैदिक, तान्त्रिक दोनों धर्मो में विस्तार के साथ किया गया है। मारण, मोहनादि, आभिचारिक कर्मो में तो स्तम्भन का साम्राज्य ही है। श्री बगलामुखी का

प्रसिद्ध तन्त्र ग्रन्थ सांख्यायन इससे भरा हुआ है। क्रमशः ये तीनों कर्म सात्विक, राजस और तामस कहे जाते हैं।

इन आभिचारिक प्रसंगों में श्री बगलाविद्या की प्रधानता होने से बहुत से लोग इन्हें केवल तामसिक शक्ति कहते हैं। कामधेनुतन्त्र में तामस प्रकरण में ही इनकी गणना की गयी है और 'कल्याण' के शक्ति अंक के "दशमहाविद्या" शीर्षक लेख में पं. मोतीलाल शर्मा ने शत्रुनिरोध में ही इस विद्या का उपयोग लिखा है; परन्तु यह बात एकदेशीय है, प्रधानता के अभिप्राय में ही है, वास्तविक रूप से नहीं। शक्तिसंगमतन्त्र में तो त्रिशक्ति रूप में ही श्री बगला को माना है-

" सत्ये काली च श्री विद्या कमला भुवनेश्वरी।
सिद्धविद्या महेशानि त्रिशक्तिबर्गला शिवे॥"

(श०स०ता०ख०पृ०५६)

अतः श्री बगलामाता को केवल तामस मानना ठीक नहीं है। आभिचारिक कृत्यों में भी रक्षा की ही प्रधानता होती है। यह कार्य इसी शक्ति द्वारा निष्पन्न होता है। इसलिये इसके बींज की संज्ञा रक्षा बींज भी है-

"शिवभूमियुतं शक्तिनादविन्दु समन्वितम्।
बीजं रक्षामयं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥"

(मन्त्रोयोग संहिता)

युजर्वेद के प्रसिद्ध आभिचारिक प्रकरण में अभिचार स्वरूप की निवृत्ति में इसी शक्ति का विनियोग किया गया है। इस प्रकरण का यजुर्वेद की सभी संहिताओं में (तैत्तरीय, मैत्रायणी, काठक, माध्यंदिनि, काण्व) समान रूप से पाठ आया है। माध्यंदिनि संहिता के भाष्यकर्ता उब्बट, महीधर भाष्यकारों ने जैसा अर्थ इसका लिया है, उसका सार यहाँ देते हैं। पण्डित ज्वालाप्रसाद कृत मिश्र भाष्य में इसका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया हैं।

आभिचारिक प्रकरण

शुक्ल यजुर्वेद माध्यंदिनि संहिता के पाँचवे अध्याय की २३, २४, २५ वी कण्डिकाओं में अभिचार कर्म की निवृत्ति में इस (श्री बगला) महाशक्ति का वर्णन इस प्रकार आया है- 'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि' (य० ५, अ०२३) अर्थात् राक्षसों द्वारा किये गये अभिचार की निवृत्ति के लिये वैष्णवी महाशक्ति को प्रतिपादन करने वाली महावाणी को इन्द्र को कहो इत्यादि प्रसंग में बगलामुखी विद्या का स्वरूप वेद ने परम रहस्य रूप से बताया है। वेद में तन्त्रशास्त्र प्रसिद्ध बगलापद वलगा व्यत्यय नाम से कहा जाता है। इसका अर्थ उब्बट ने ऐसा किया है- 'वलगान् कृत्या विशेषान् भूमौ निरवनितान् शत्रुभिर्विनाशार्थं हन्तीति वलगहातां वलगहनम्।' (उब्बटभाष्य) अर्थात् शत्रु के विनाश के लिये कृत्या विशेष भूमि में जो गाड़ देते हैं, उन्हें नाश करने वाली शक्ति वैष्णवी महाशक्ति को बलगहा कहते हैं।

यही अर्थ बगलामुखी का भी है, 'खनु' अवदारणे इस धातु से मुख शब्द बनता है, जिसका अर्थ मुख में गये पदार्थ का चर्वण या विनाश ही अभिप्रेत होता है। इसी प्रकार शत्रुओं द्वारा किये हुये अभिचार को नष्ट करने वाली महाशक्ति का नाम बगलामुखी-चरितार्थ होता है। श्री महीधर ने इसका स्पष्ट अर्थ ऐसा किया है- 'पराजयं प्राप्य पलायमानैं राक्षसैरिन्द्रादिवधार्थमभिचाररूपेण भूमौ निखाता अस्थिकेशनखादिपदार्थाः कृत्या विशेषा वलगाः।' अर्थात् इन्द्रादि देवताओं द्वारा पराजित होकर भागे हुये राक्षसों ने देवताओं के वध के लिये अस्थि केश नखादि पदार्थो के द्वारा अभिचार किया। तैत्तरीय ब्राह्मण में भी कहा है-'असुरों वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान्न्यखनन्' देवताओं को मारने के लिये असुरों ने अभिचार किया। शतपथ ब्राह्मण में भी इसे इस प्रकार बताया हैं- यदा वै कृत्यामुत्खनन्ति अथ सालसामोघा भवति तथा एवैष एतदयस्मा अत्र कश्चित् द्विषन् भ्रातृव्यः कृत्यां वलगान् निखनति तानेवैदुत्किरति' (श० ३-५-४-३) उक्त ही अर्थ इस वचन का भी है। वलगा का अर्थ महीधर ने इस प्रकार किया है- 'यस्य वधार्थं क्रियते तं वृण्वन्नाच्छादयन् गच्छतीति वलगः' (महीधर भाष्य) जिसके वध के लिये कृत्या का प्रयोग किया जाता है, उसे गुप्त रीति से मार देता है। इसलिये महर्षि यास्क ने 'वलगो वृणौतेः' (नि० ६) वृञ् आच्छादने धातु से बनाया है। वलगान् इसी द्वितीयान्त पद के अनुकरण से बगला यह तान्त्रिक नाम निष्पन्न हुआ है। बगलामुखी

इस भगवती की संज्ञा नाम की सिद्धि पर वैयाकरण लोग आपत्ति करते हैं कि यह नाम अशुद्ध है, क्योंकि 'नखमुखात्', 'संज्ञायाम्' इस सूत्र से ङीष प्रत्यय का निषेध होकर आप्रत्यय होकर बगलामुखा ही नाम शुद्ध है, परन्तु 'स्वांगाच्चोपसर्जनादसंयोगो पधात्' इस सूत्राधिकार में उक्त सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यहाँ मुखी शब्द स्वांगवाची नहीं है। बगला के निःसारण में ही मुख शब्द का प्रयोग है। 'मुखं निःसरणम्' इत्यमरः तथा मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठे निःसरणास्ययोः इति हैमः। उपाय, प्रारम्भ, श्रेष्ठ, निःसरण और मुख के अर्थ में ही मुख शब्द का प्रयोग होता है। अतः उक्त सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है। ज्वालामुखी, सूर्यमुखी, गोमुखी शब्दों की तरह यह शब्द भी सिद्ध ही है। यह शक्ति वैष्णवी है। यह प्रकरण से भी सिद्ध है क्योंकि इस प्रकरण के पूर्व वैष्णव सूक्त का प्रसंग है। अथर्ववेद में इस बगला का प्रसंग अनेक स्थानों पर आया है उसमें से एक बगला सूक्त का पाठ यहां देते हैं, जिसके विषय में अथर्ववेदी विद्वानों की ऐसी सम्मति है, कि इसके पाठ से कृत्या का निवारण शीघ्र ही हो जाता है। इस सूक्त में अनेक प्रकार कृत्या के दिये हुये हैं। बगला सूक्त -

यां ते चक्रु रामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः प्रतिहरामि ताम्॥१॥
यां ते कृकवाका वजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रु पुनः प्रतिहरामि ताम्॥२॥
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति॥
गर्दभे कृत्यः यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥३॥

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥४॥
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम् ॥५॥
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधि देवने।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः प्रतिहरामि ताम्॥६॥
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे।
दुन्दुभौकृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥७॥
यां ते कृत्यां कूपे-वदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥८॥
यां ते चक्रुः पुरुषस्यास्थे अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रतिहरामि ताम्॥९॥
अपथैनाज भारैणां तां पथेतः प्रहिण्मसि।
अधीरो मयि धीरेभ्यः संज भारा चित्या॥१०॥
यश्चकार न शशाक कर्तु शश्रे पादमंगुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११॥
कृत्या कृतं वलगिनं मूलिनं शपथेऽय्यम्।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया॥१२॥
(अथर्व० ५ का० ६ अनु०)

सूक्त का अर्थ सरल है। अतः इसके अनुवाद करने की आवश्यकता नही है। इसके विषय में एक अनुभवी वैदिक विद्वान का कहना है कि कृत्या के निवारण में यह सूक्त अपूर्व शक्ति रखता है। केवल एकादश पाठ ही पर्याप्त है।

इसके अतिरक्त ललिता सहस्त्र नाम के महात्म्य में 'यो वाभिचारं' कुरुते नाम साहस्त्र पाठ के निवर्त्य तत् क्रिया हन्यात् तं वै प्रत्यंगिरा

स्वयम् ॥२६८॥' इस श्लोक का भाष्य इस प्रकार किया गया है 'अभिचारं अदृष्ट द्वाराक वैरिमारण साधक क्रिया श्येनयागादिरूपां निवर्त्य पराकृत्य पराङ्मुखी कृत्येति यावत् प्रत्यंगिरां अथर्वण भद्रकाली देवता अथर्वण वेद मन्त्रकाण्डे शौनकशाखाया द्वात्रिंशदृच:' अर्थात् ललिता सहस्त्रनाम पाठी के ऊपर जो कोई अभिचार करता है उसे प्रत्यंगिरा शक्ति स्वयं उसकी क्रिया को लौटाकर मार देती है। अदृष्ट द्वारा शत्रु के मारण की क्रिया को अभिचार कहते हैं। शौनक शाखा के उक्त स्थल पर ये मन्त्र आये हैं। इन मन्त्रों में वलग शब्द भी आया है तथा प्रतियांङ्गिरस शब्द एक मन्त्र में आने से इसे प्रत्यंगिरा नाम दिया गया है। इस प्रत्यंगिरा शक्ति का इस विषय में बड़ा महात्म्य है। इसके अनेक स्तोत्र मन्त्र भी उपलब्ध होते हैं। श्रीकाली नित्यार्चन में एक प्रभावशील स्तोत्र साधक प्रवर श्री श्यामानन्दनाथ ने दिया है। श्री राणा धनशमशेरजंग बहादुर ने भी अपने बत्तीस वर्ष के लेख में अपनी अनुभुति के साथ इस शक्ति की प्रशंसा की है। श्रीबगुलामुखी एवं श्री प्रत्यंगिरा इन दोनों शक्तियों का स्वरूप इस अंश में विलक्षण प्रभाव रखता है सारा साधक समुदाय जानता है। विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

कृत्या क्या है?

'कृती छेदने' इस धातु से कृत्या शब्द बनता है। जिसका अर्थ हिंसात्मक कार्य होता है। इसी अर्थ को लेकर इसकी लोक में प्रवृत्ति भी है। अम्बरीष के ऊपर दुर्वासा ने ऐसा ही किया था, शंकरदिग्विजय में आचार्य शंकर के ऊपर भी

अभिचार किया गया था इसका उल्लेख मिलता है। भाषा रामायण के कर्ता श्री तुलसीदास जी के ऊपर भी ऐसा किया गया था। आजकल भी कहीं-कहीं इसका अस्तित्व देखने को मिलता है। उक्त अर्थ में ही कोशों में भी कृत्या का अर्थ मिलता है। पण्डित श्रीधर गणेशबाजे बी.ए.कृत इंग्लिश मराठी डिक्शनेरी में कृत्या का अर्थ ऐसा ही किया गया है। कृत्या-ए फी-मेल डी-टी टू हूम सैक्रीफाई - सेज् आर आर्फर्ड फार डिस्ट्रक्टिव आर मैजिकल पर्पजेस' कृत्या वह स्त्री देवता हैं जिसकी पूजाबलि विनाश के लिये की जाती है। तान्त्रिक कृत्या विशेष कृत्या है। आजकल के नवशिक्षित गण इस कर्म पर विश्वास नहीं करते न इसकी सत्ता ही मानते हैं। इसी से प्रेरित होकर कृत्या के प्रतिपादन करने वाले वैदिक सूक्तों का अर्थ कई आर्य समाज के पण्डितों ने असङ्गत एवं व्यर्थ कल्पनामूलक ही किया हैं। पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने निष्पक्ष दृष्टि से अपने अथर्ववेद के सुबोध भाष्य में अपनी अनभिज्ञता इस विषय की स्वीकार की है और कहा है कि जो कोई विद्वान इसे हमें बतायेंगे, हम सधन्यवाद स्वीकार करेंगे और प्रकाशित करेंगे। विशेषतः इस कर्म के करने वाले शाबर तन्त्रों का आश्रय लेकर करते हैं उन्हीं के पास इसकी क्रिया देखी गई है यह एक प्रकार का आसुरी कर्म है इसके करने वाले को अधम बताया गया है। यह सृष्टि के प्रथम काल से ही होता आ रहा है अतः इसकी निवृत्ति के उपाय वेद एवं तन्त्रों में बताये गये हैं। श्रीबगला एवं प्रत्यंगिरा शक्ति का अभ्यास ही इसके नष्ट करने के अमोघ उपाय है।

ले. सं. ४

संक्षिप्त श्री बगला साधना

सत्सम्प्रदायानुसार पहले पहल साधक को गुरु से बगला मन्त्र का उपदेश ग्रहण करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक देवी मन्दिर में पर्वत शिखर पर, शिवालय में, गुरु के समीप में या जैसी सुविधा हो पीताचार से मन्त्र का पुरश्चरण एक लक्ष जप पूर्वक करना चाहिये। षट् त्रिंशदक्षर मन्त्र का साधन ही प्रधान है। एकाक्षर स्थिरमाया, चतुरक्षर, अष्टाक्षर, नवाक्षर, हृदय, शताक्षर, पञ्चास्त्र मन्त्रों का ग्रहण क्रम से करके सहस्त्राक्षर, मन्त्र पर्यन्त अभ्यास मन्त्र सिद्धि की परम अवधि है। पंचाङ्ग उपनिषद का प्रतिदिन पाठ और नित्यार्चन पद्धति से पूजन करना चाहिये। रुद्रयामलोक्त बृहत्पद्धति का अनुष्ठान तो आजकल बहुत ही कठिन और समय साध्य है। सपर्यामण्डल भावनगर से प्रकाशित सपर्याविधि में पीताम्बरार्चनपद्धति बहुत ही सुन्दर ढंग से दी गई है। उसका उपयोग बहुत ही अच्छा है। होम के विषय के यद्यपि कृताकृत प्रसंग है तथापि पूजांग रूप में नित्य होम का होना अत्यन्त सिद्धिप्रद है। इस घोर कलिकाल में श्रीबगला के प्रयोग प्रत्यक्ष सिद्धिप्रद है। इसलिये तन्त्रों में इन्हें सिद्धविद्या कहा गया है। विशेषतः राज्याभियोग में अप्रतिम प्रभाव इनका देखा गया है। मुमुक्षुगण तो काम, क्रोध आदि दुष्टों के स्तम्भन, कीलन एवं विनाश में ही इनका उपयोग करते हैं। काम के जीतने में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्तम्भन का प्रयोग अर्जुन को बताया है एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना जहिशत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्

(गी०अ०३) कुलाचार का पूजन, बीर, साधन, चक्रानुष्ठान पद्धति भी इनकी उपलब्ध होती है। स्वगुरु के आचारानुसार इनका साधना करना चाहिए। सभी आचारों से श्रीबगला सिद्धिप्रद देवता है।

॥ॐ शम्॥

७. गुह्यय आदेश

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा,

द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति

महोदेवो मर्त्यान् ·ऽ· आविवेश॥

अर्थ:- विचित्र वृषभ, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होकर शब्द कर रहा है; जिसके चार सींग, तीन पाद, दो मस्तक, सात हाथ हैं और जो तीनों स्थानों में बँधा हुआ है, ऐसा महादेव सभी मनुष्यों के अन्दर प्रविष्ट हो रहा है (यजु० १७-९१)।

उब्वट, महीधर, वेदभाष्यकारों ने इस मन्त्र का अर्थ यज्ञपरक एवं व्याकरणपरक किया है। व्याकरणपरक अर्थ महर्षि पतञ्जलि ने नवाह्निक भाष्य में व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन में किया है। उक्त दोनों भाष्यकारों ने इन्हीं का अनुकरण किया है, नहीं तो कर्मकाण्डीय भाष्य में व्याकरणपरक अर्थ का कोई विशिष्ट प्रयोजन नहीं है। निरुक्त के परिशिष्ट में महर्षि यास्क ने भी यज्ञपरक ही अर्थ किया है। एक वैदिक पण्डित द्वारा यह भी सुनने में आया है कि इस ऋचा के तीस अर्थो की एक स्वतंत्र पुस्तक ही छप गई है। वेदान्तपरक अर्थ भी एक देखने में आया है। इन अनेकार्थो में इस मन्त्र के विनियोग को देखकर ''तपसा मन्त्राणामनेकार्थत्वं भवति'' तप से मन्त्रों के अनेक अर्थ होते है, यह उक्ति सर्वथा घटित होती है। वास्तव में रूपक में मन्त्रार्थ का वर्णन होने से अनेकार्थ की कल्पना की गई है।

मन्त्रशास्त्र प्रतिपादित सिद्धांतों की भी एकता इसमें हो सकती है क्योंकि मन्त्रोक्त बातों का सम्बन्ध मन्त्र शास्त्र से भी पूर्णतः होता है। चत्वारि श्रृङ्गा–वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक और शावर ये चार प्रकार के मन्त्र ही चारों श्रृगं है। 'त्रयो अस्य पादा' – कादि, हादि, सादि ये तीन उपासना की पद्धतियां ही तीन पाद हैं। 'द्वे शीर्षे' – 'सोऽहं' 'हंस:' अथवा प्रकाश विमर्श रूप पद युग ही दो मस्तक हैं। 'सप्त हस्तासो' वैदिक आदि सप्ताचार ही सात हाथ हैं। 'त्रिधा बद्धः' – सूर्य, सोम, अग्नि इन त्रिविध मण्डलों में जो बँधा हुआ है। तन्त्र युक्ति से तीन सम्बन्धी कल्पनाओं का समावेश 'त्रिधा बद्ध पद में सर्वथा संगत होता है।' 'रोरवीति' – इस क्रियापद से वृषभ, संपूर्ण कामनाओं की वर्षा करने वाला शब्द ब्रह्मतत्व शब्द के भेद वर्णस्फोट रूप से गृहीत होता है। 'महोदेवो' – इस पद से मन्त्र और देवता के तादात्म्य (अभेद) को बताया है। ऐसा तत्व सभी जीवों में परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी रूप से प्रविष्ट होता रहा है। इसी के पूर्ण विकास के लिये तत्वज्ञानक्रम से श्री गुरुकृपा द्वारा साधक पूर्णता को प्राप्त करता है, क्योंकि साधना में शब्द का अधिष्ठान प्रत्यक्ष और निःसंदिग्ध है।

जितने भी अर्थ इस मन्त्र के किये गये हैं, उनमें व्याकरणपरक अर्थ और मन्त्रशास्त्रीय अर्थ अधिक संयुक्त हैं क्योंकि 'रोरवीति' पद की सार्थकता इन दोनों में ही स्वाभाविक रीति से घटित होती है। मन्त्र शास्त्रीय अर्थ को देखकर कोई पूछ सकता है कि तन्त्र शास्त्र तो आधुनिक हैं, वेद मन्त्र अनादि हैं, उसमें

इसका वर्णन असंगत है, परंतु भारतीय तत्वज्ञान में यह निश्चित है कि कोई वस्तु नवीन नहीं है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। कारण से पृथक् कार्य की प्रतीति केवल संस्थान भेद मात्र है। इसलिये यह आशंका नहीं हो सकती। 'आख्या प्रवचनात्' इस मीमांसा न्याय से वेद या तन्त्र में नूतन प्रतीति व्याख्यान कर्तृक है। प्रवाहत: तन्त्र भी अनादि अपौरुषेय हैं। बृहद् धर्म पुराण में कहा है - आगमस्य भवान कर्ता वेद कर्ता हरि: स्वयम्। आदौ आगमकर्तृत्वे भवान् वै विनियोजित:। पश्चाद्वै वेदकर्तुत्वे हरि: सम्यङ् नियोजित:। आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम पुष्कलौ। द्वाभ्यामेव घृतं सर्व त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्। अर्थात् श्री भैरवी ने कहा कि 'हे सदाशिव, आदि में आप ही ने मेरे आदेश से तन्त्र या आगम शास्त्र को प्रकट किया और विष्णु ने वेद को प्रकट किया । आगम तथा वेद ये दोनों ही मेरे दो हाथ है। इन्हीं से सारे संसार को मैंने धारण कर रखा है' इस प्रकार ईश्वर की अभिन्न शिव, विष्णु मूर्तियों द्वारा वेद एवं आगम शास्त्र का प्राकट्य होने से दोनों शास्त्र अपौरुषेय एवं अनादि ही हैं। अत: आगम के विषय में नवीनता की कल्पना अयुक्त है।

मधु विज्ञान

एक मधुमय तत्व के प्राप्त करने के लिये सारे वेदशास्त्र, पुराण, तन्त्र आदि आर्य धर्म के ग्रन्थ संकेत करते हैं। उसी एक तत्व की प्राप्ति में सारे उपदेशों का पर्यवसान है। सबसे पहले वैदिक मन्त्रों द्वारा विषयाभिमुख प्रवृत्त जीव को लौकिकी

वृत्ति से हटाकर मधुमय तत्व की ओर उन्मुख किया गया है। इसे छान्दोग्योपनिषद् के तीसरे अध्याय में इस प्रकार कहा गया है- यह प्रसिद्ध आदित्य मंडल ही देवताओं का मधु है। जैसे मधु (शहद) के छत्ते का आधार वृक्ष की डाली होती है; छत्ते में बहुत से छिद्र होते है; उनके अन्दर मक्खियाँ अनेक पुष्पों से रस लाकर भरती हैं- इस प्रकार द्यौलोक टेढ़ा बांस सा है। उसी में आदित्य मंडल मधु के छत्ते के समान लटक रहा है और अन्तरिक्ष लोक छत्ते के छिद्र स्थानीय अनेक नक्षत्र मण्डलों से शोभित हो रहा है। इसमें जो दिव्य रस भरा हुआ है, उसी की प्राप्ति कराने के लिये ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेदों के मन्त्रों का विनियोग है। छत्ते के पूर्वभाग के मधु के लिये ऋग्वेद का उपक्रम है; दक्षिण भाग का मधु यजुर्वेद के मन्त्रों से प्राप्त होता है; पश्चिम भाग का मधुरस साम के मन्त्रों द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार वेदत्रयी आदित्यमण्डल के मधु को उपासक को प्राप्त कराती है। चौथा अथर्ववेद अंगिरस के मन्त्रों से उत्तर भाग के मधु का निर्माण होता है; इतिहास पुराण के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है। आदित्य मण्डल के ऊर्ध्व जो मधु नाड़ियाँ हैं, उनके मधु का निर्माण गुह्य आदेशों से होता है। ब्रह्म ही पुष्प है। उसी में से अमृत रस निकलता है (छा० ३-१, २,३,४,५) वसु, रुद्र, आदित्य और मरुत से चारों प्रकार के देवता चारों वेदों के मधु रसों के अधिष्ठाता है। पांचवां गुह्य मधुरस साध्य (सिद्ध) के द्वारा प्राप्त होता है।

वेद, इतिहास, पुराण और गुह्य आदेश ही मन्त्रों के चार भेद हैं। 'गुह्य' पद से तन्त्रशास्त्र का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि गोपनीयता तन्त्र का ही विषय है। आदेश से ही इस शास्त्र का निर्माण हुआ है। देवी भागवत के नवम स्कन्ध में कहा गया है- 'एक समय गो लोक में रास मण्डल हुआ है। उसमें सदाशिव का संगीत श्रवण कर देवगण मुग्ध होकर चेतना विहीन हो गये। इसके अनन्तर कुछ समय व्यतीत होने पर देवता गण जब प्रकृतिस्थ हुये और राधा कृष्ण की मूर्ति न देखकर सब व्याकुल हुये तब उसी समय आकाशवाणी हुई कि मैं सर्वात्मा हूँ और मेरी शक्ति सर्व व्यापिनी है। अतएव हमको मिथ्या शरीर धारण करने का क्या प्रयोजन है ?' इसके बाद परम कारुणिक भगवान ने भक्तों के लिये साकार मूर्ति में दर्शन का उपाय किया-

मूर्ति द्रष्टुं च सुव्यक्तां यदीच्छथ सुरेश्वराः।
स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन् आज्ञां कुरु जगद्गुरुम्॥
कर्त्तुं शास्त्रविशेषं च वेदांग सुमनोहरम्।
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः॥
स्तोत्रैश्च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः।
कालेन शम्भुर्भगवान् मुक्तिदोषश्चकारसः॥

अर्थात् हे देवताओं! यदि हमारी सुव्यक्त मूर्ति देखना चाहते हो तो हे ब्रह्मन्, स्वयं आप सुंदर वेदांग शास्त्रविशेष बनाने के लिये जगद्गुरु भगवान शंकर को आदेश दो, जो अपूर्व मन्त्र समुदाय

सर्वाभीष्टप्रद स्तोत्र ध्यानादि से युक्त हो तथा पूजा प्रकार का बताने वाला हो। समयानुसार भगवान ने ऐसे शास्त्र का प्रणयन किया। ये सारे लक्षण तन्त्र शास्त्र में ही घटित होते हैं। इसलिये गुह्य आदेश तन्त्रशास्त्र ही है।

बहुत से वैदिक ग्रन्थों में ब्रह्मविद्या को गुह्य आदेश या प्रणव के लिये भी प्रयुक्त हुआ माना है तथापि ये प्रयोग तन्त्रविद्या के प्रतिपाद्य से भिन्न नहीं हैं। कहा है - 'आत्मलाभान्नपरं विद्यते' (कल्पसूत्र २८); 'वेश्या इव प्रकटा वेदादिविद्याः सर्वेषु दर्शनेषु गुप्तेयं विद्या' (प०सू०३०)। त्रिपुरा महोपनिषद् के आठवें मन्त्र के भाष्य में श्री भास्करराय ने आगे कहा है- 'अतिरहस्यत्वादेव नाथचरणैकावगमनीयोऽयं मन्त्रः।' अर्थात् अति रहस्य होने से इस कुल विद्या का मन्त्र केवल एक गुरु द्वारा ही जानने योग्य है। वेदादि विद्यायें तो प्रकट हैं, परंतु यह कुल विद्या गुप्त है। इन प्रमाणों से तन्त्र प्रतिपाद्य विद्या के लिये ही 'गुह्य आदेश' शब्द चरितार्थ होता है। 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' इस गीता वचन से भी उक्त विषय स्पष्ट होता है। उक्त छान्दोग्य उपनिषद में जिस क्रम से तत्वोपदेश किया गया है, वैसा ही परशुराम कल्पसूत्र में भी माना गया है- 'भगवान परम शिव भट्टारक ने समस्त विद्याऐं तथा सभी दर्शनों को जानकर लीला न्याय से श्री भैरवी के पूछने पर परमार्थ सार भूत पञ्चम्नायों को अपने पञ्चमुखों से कहा '(प०क०सू०२)। षडाम्नाय का विशेष विवरण श्रीयुत पण्डित योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति महाशय ने अपने लेखों में 'चण्डी' के गत अंकों में दिया है। तथा इस

संबंध में श्री राणा साहब धनशमशेर जंग का '३२ वर्ष' नामक निबंध भी द्रष्टव्य है। श्री विद्यारत्न सूत्रों में भी इस प्रसंग का अच्छा विवेचन किया गया है।

उपसंहार

मधुविज्ञान के विषय में उपनिषद् एवं तांत्रिक सिद्धान्त का स्वरूप संक्षिप्त रूप में लिखा गया। 'गुह्य आदेश' का अभिप्राय क्या है, इसे भी प्रमाणों द्वारा बताया गया है। वास्तव में मधुतत्व समस्त विद्याओं का आश्रयभूत श्री कुल विद्या है। उसी परम करुणामयी से बार बार यह प्रार्थना है कि गुह्य आदेशों के समझने एवं तदनुसार आचरण करने की योग्यता हमें प्रदान करें।

।। ॐशम् ।।

८. श्री देवी भागवत

महामहिमशालिनी श्री जगदम्बा की महिमा का गान वेद देवी सूक्त, रात्रिसूक्त आदि प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रों के द्वारा करता है। उसके रहस्यों का ज्ञान तपस्वी ऋषि महर्षि ही ठीक रूप से कर सकते हैं। इसी कठिनता को देखकर भगवान शंकर ने आगम ग्रन्थों का निर्माण कर सभी जीव मात्र को इसे सुलभ कर दिया, जिसे तन्त्रों में अनेक प्रकार से कहा गया है। कलिमल-ग्रस्त जीवों के उद्धार के लिये महर्षि व्यास ने आगम एवं निगम इन दोनों रहस्यों को स्पष्ट सुगम सरल रीति से समझने के लिये पौराणिक शैली के द्वारा श्री देवी भागवत महापुराण की रचना करके इसे अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। इस महापुराण का आरम्भ गायत्री मन्त्र से होने से इस ग्रन्थ को वेद का व्याख्यान रूप ही समझना चाहिए - सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्। चारों नवरात्रों में नवान्हरूप से इसके श्रवण का महात्म्य विशेष रूप से स्कन्द पुराण के मानस खण्ड में कहा गया है। इस ग्रन्थ में बारह स्कन्ध, ११८ अध्याय तथा अनुष्टुप छन्द के श्लोक के हिसाब से १८००० श्लोक हैं एवं, १७६००० अक्षर हैं, प्रथम स्कन्ध में २०, दूसरे में १२, तीसरें में ३०, चौथे में २५, पांचवें में ३५, छठे में ३१, सातवें में ४०, आठवें में २४, नववें में ५०, दसवें में १३, ग्यारवें में २४ और बारहवें में १४ अध्याय हैं। यह ग्रन्थ शाक्तों का सर्वस्व है। अनेक रहस्यों से पूर्ण सभी कामनाओं को देने वाला है, परंतु काल की कुटिल गति के फेर से जैसे शाक्तों के अन्य

विषय उपेक्षित कोटि में है, इसी प्रकार यह पुराण रत्न भी हिन्दू जनता ने तिरस्कृत रूप में ही रख रक्खा है, यह एक महान शोक का विषय है। 'चण्डी' के पाठकों एवं विद्वानों से यह सानुरोध कथन है कि इस ग्रन्थ के प्रचार की ओर कोई भी प्रयत्न होना चाहिए। प्रचार की पौराणिक शैली साधारण जनता के लिये जितनी उपयोगी है, उतनी और नहीं हो सकती।

पुराण के लक्षण

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराण के इन प्रसिद्ध पांचों लक्षणों का समन्वय इस पुराण में संगत होता है - १-सृष्टि के लिये लक्ष्मी काली आदि शत्तियों का देह धारण सर्ग कहलाता है, जिसका वर्णन प्रथम स्कन्ध एवं पञ्चम स्कन्ध में किया गया है; २-प्रतिसर्ग का अर्थ प्रलय है, जो नवम स्कन्ध में सब का लय प्रकृति में बताकर स्पष्ट किया गया है। प्रतिसर्ग को अनुसर्ग भी कहते है, क्योंकि तीनों शक्तियों के आविर्भाव के पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की उत्पत्ति तृतीय स्कन्ध में कही गई है। ३-वंश सोम सूर्य वंशोद्भव राजाओं का चरित्र सोम से लेकर पुरुवा तक चन्द्र वंश का वर्णन प्रथम स्कन्ध में, वैवस्वत मनु से लेकर हरिशचन्द्र पर्यन्त वर्णनसप्तम स्कन्ध में सूर्य वंश का किया गया है। ४-५ मन्वन्तर कथा दशम स्कन्ध में तथा वंशानुचरित भी उसी में बताया गया है। इस प्रकार महापुराणों की कोटि में यह पुराण आता है।

भागवत का लक्षण

यत्राधि कृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते।।

अर्थात् जिस पुराण में गायत्री का अधिकार करके धर्म का विस्तार कहा गया हो तथा वृत्रासुर का वध वर्णित हो उसे ही भागवत कहना चाहिये। यह लक्षण प्रायः सर्वमान्य है। विष्णु भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी श्री वल्लभाचार्य आदि ने भी अपने ग्रंथों में इसे दिया है। श्री तत्वनिधि ग्रंथ के भागवत-लक्षण में यही श्लोक दिया हुआ है। यह लक्षण संपूर्ण प्रकार से देवी भागवत में ही घटित होता है। गायत्री का अधिकार पूर्ण रूप से लिखकर इसी का आरम्भ होता है। उक्त गायत्री मन्त्र सर्वप्रथम दिया गया है। वृत्रासुर का वध तो प्रायः सभी पुराणों एवं महाभारत में भी आता है। वैसा ही विष्णु भागवत में भी है, परंतु देवीकृत वृत्रासुर का वध देवी भागवत में ही है। इसलिये असामान्य होने से इससे देवी भागवत का ही ग्रहण न्याय है। अन्यत्र इन्द्रकृत ही वृत्रासुर वध कहा गया है। इसलिये सर्वत्र देवी भागवत को छोड़कर यह साधारण ही है। आदित्य पुराण में कहा है-

"या जघ्ने माहिषं दैत्यं क्रूरं वृत्रासुरं तथा।
साद्य रक्तासुरं हत्वा स्वाराज्यं ते प्रदास्यति।।"

अतः देवीकृत वृत वध ही प्रामाणिक है। दूसरा एक लक्षण भागवत का ऐसा भी किया जाता है-

वर्ण्यते धर्म-विस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च।
गायत्र्य महिमा यत्र तद् भागवतमिष्यते।।

अर्थात् जहां गायत्री का विस्तार से वर्णन हो और उसका अधिकार करके धर्म वर्णन हो, उसे ही भागवत कहते हैं। यह लक्षण भी देवी भागवत में ही चरितार्थ होता है। गायत्री का अधिकार करके धर्म का विस्तार इसी में हैं और गायत्री की महिमा इसी में है। इसके ग्यारहवें स्कन्ध में गायत्री का पञ्चांग विस्तृत रूप से आया है। तीसरा लक्षण एक ऐसा भी किया जाता है।

"हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा।
गायत्र्याश्च समारम्भस्तद् वै भागवतंविदु:।।"

अर्थात् हयग्रीव ब्रह्मविद्या, वृत्रासुर का वध और गायत्री से जिसका आरंभ हो, उसे ही भागवत कहना चाहिये। वृत्रासुर का वध, गायत्री का आरंभ तो उक्त लक्षणों के अन्तर्गत आ जाते हैं, केवल इस लक्षण में हयग्रीव ब्रह्मविद्या अधिक कहा गया है। यह लक्षण भी देवी भागवत में ही घटित होता है। प्रथम स्कन्ध में हयग्रीव नामासुर से उपासित विद्या ही ब्रह्मविद्या है और वह विद्या देवी रूप है। शारदातिलक तन्त्र में कहा है -"मन्त्रा: पुंदेवता: प्रोक्ता: विद्या: स्त्री देवता स्मृता:।" अर्थात् पुरुष देवता को मन्त्र तथा स्त्री देवता को विद्या कहते है। इसलिये हयग्रीव विद्या से शक्ति रूप विद्या का ही ग्रहण यथार्थ है। इन तीनों लक्षणों से देवी भागवत 'महापुराण' पदवाच्य सिद्ध हो जाता है। 'भगवत्या इदं भागवतम्' यह व्युत्पत्ति भी इस पक्ष में स्वारस्य रखती है।

भागवत के लक्षण का हेतु

बहुत समय से यह विवाद चला आ रहा है कि विष्णु भागवत महापुराण है कि देवी भागवत? वैष्णव विष्णु भागवत को पुराण कहते हैं, शाक्त देवी भागवत को पुराण बताते हैं। एक के मत से एक पुराण, दूसरा उपपुराण है। पुराणों एवं उपपुराणों की गणना जो निर्दिष्ट हैं, उसमें केवल 'भागवत' यह नाम आता है। इसलिये विवाद एवं लक्षण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अठारह पुराणों को बताने के लिए यह संकेतात्मक श्लोक है।

''मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥''

मद्वय-मार्कण्डेय, मत्स्य; भद्वयम्-भागवत, भविष्य; व्रत्रयम्-ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त; वचतुष्टयम्-विष्णु, वामन, वायु, वाराह; अनापलिंग, कूस्कानि- अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड, कर्म, स्कन्द। ये ही अट्ठारह पुराण हैं, जो संकेत से उक्त एक ही श्लोक में गिनाये गये हैं। दूसरी उक्ति है-

सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्।
नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम्॥
कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसंस्मृतम्।
वारुणं कालिकारव्यं च सांबं नन्दिकृतं शुभम्॥
सौरं पाराशरं प्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम्।
माहेश्वरं भागवतं वाशिष्ठं च सविस्तरम्॥
एतान्युपपुराणनि कथितानि महात्मभिः।

(दे. ३-१६)

इन श्लोकों से पुराणों एवं उपपुराणों की संख्या का बोध होता है तथा 'भागवत' नाम का पुराण एवं उपपुराण दोंनो ही सिद्ध होते हैं।

अव यहां विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कौनसा पुराण और कौनसा उपपुराण है? इसीलिये लक्षण किये गये है, जो तीन लक्षण क्रमश: बताये गये, उनसे देवी भागवत ही पुराण सिद्ध होता है। विष्णु भागवत में ये लक्षण संगत नहीं होते हैं। भागवत के 'सत्यं परं धीमहि' इस वाक्य में 'धीमहि' केवल इस क्रियापद पर श्री बल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका में यह कहा है- 'इदमेंकमेवोभयत्रपदं वैदिकत्वबोधनाय अनेन वेद सम्मितं पुराणमित्युक्तं भवति।' अर्थात् यह 'धीमहि' एक ही पद वैदिकत्व को बता रहा है जिससे यह भागवत पुराण वैदिक है। इसी धीमहि पद पर श्रीधरस्वामी ने यह टिप्पणी की है कि 'अतएव भागवतं नामान्यदिति न शंकनीयम्।' अर्थात् इस भागवत से अन्य कोई भागवत नाम का पुराण है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, परंतु ये लेख संयुक्त नहीं कहें जा सकते, क्योंकि गायत्री एक छंद का नाम हैं, जो चौबीस अक्षर का होता है। विष्णु भागवत का 'जन्माद्यस्य यत:' इस पद में नहीं घटित हो सकता क्योंकि यह पद्य गायत्री छन्द में नहीं है। गायत्री छन्द तो देवी भागवत के ही आदि में है। न विष्णु भागवत में गायत्री का कोई विस्तार ही है। अत: केवल एक 'धीमहि' पद से गायत्री सिद्ध करना ठीक नहीं यदि गायत्री पद से

गायत्री प्रतिपादित विष्णु अर्थ लें तो यह अर्थ लाक्षणिक हो जाता है। वाच्यार्थ की असंभावना में ही लक्षणा प्रवृत्त होती है। वाच्यार्थ का परित्याग करके लाक्षणिक अर्थ लेना जघन्य है। यह दोष इस अर्थ में आता है। इस 'धीमहि' पद के अतिरिक्त कोई भी गायत्री की चर्चा इस भागवत में नहीं की गई हैं। अत: प्रतिपदोक्त देवी भागवत को ही लेना संगत है। तीसरे लक्षण 'हयग्रीव बृह्मविद्या' पद से भागवत पञ्चमस्कन्ध में कहा हुआ हयग्रीव मन्त्र का ही ग्रहण करना चाहिए, ऐसा बहुत से वैष्णव कहते हैं, क्योंकि १०८ उपनिषदों में एक हयग्रीव उपनिषद् भी है तथा डामर तन्त्र में इसे ही वागीश्वर कहते हैं तथापि शारदातिलकोक्त प्रमाण से यह वाक्य भी देवी भागवत में सुसंगत होता है। कदाचित् यह एक लक्षण कथंचित् मान भी लें तथापि अन्य लक्षण का अंश अघटित ही रहता है। विष्णु भागवत में भागवत का लक्षण सर्वथा अव्याप्त ही है। इसके अतिरिक्त एक श्लोक भागवत के विषय में यह प्रचलित है-

"भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र वर्तते।
तत्तु भागवतं प्रोक्त न तु देवीपुराणकम्॥"

जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र हो, उसे ही भागवत कहा है न कि देवी पुराण। यह श्लोक शिव पुराण का है। यह भी देवी भागवत का ही समर्थक है। कोई कोई वैष्णव 'दुर्गायाश्च' इस पद के चकार से कृष्ण चरित लेते हैं और विष्णु भागवतोक्त दुर्गा-चरित का ही ग्रहण उपयुक्त समझते हैं तथापि

यह अर्थ ठीक नहीं है। चकार से श्री राधा का ग्रहण अति संयुक्त है क्योंकि भगवती दुर्गा के साथ सहचरित न्याय से श्री राधा का ग्रहण ही यथार्थ है। श्री राधा का चरित्र देवी भागवत में ही है। विष्णु भागवत में तो उनका नाम निर्देश भी स्पष्ट रीति से नहीं है। यदि श्री कृष्ण-चरित्र लें तो भी देवी भागवत का कुछ नहीं बिगड़ता। विष्णु भागवतोक्त दुर्गा-चरित्र का ग्रहण गौण होने से यहाँ नहीं लिया जा सकता।

श्री देवी भागवत व्यास कृत है। एक जगह यह भी कहा है-

'अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥'

अर्थात् अट्ठारहों पुराणों की रचना करने के बाद व्यास जी ने महाभारत को बनाया और पुराणों के अर्थों से उसे समृद्ध किया। चारों वेदों का विभाग, पुराण, भारत की रचना कर चुकने पर सरस्वती के तट पर अशान्त चित्त से बैठे हुये व्यास को नारद ने श्री कृष्ण-चरित प्रधान विष्णु भागवत के बनाने का आदेश दिया। यह कथा विष्णु-भागवत के प्रथम स्कन्ध चौथे अध्याय में आयी। इससे भी सिद्ध होता है कि अष्टादश पुराण में देवी भागवत ही है।

कृष्णद्वैपायनात् प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम्।
श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखौघनाशनम्॥
कामदं मोक्षदं चैव वेदार्थ परिवृंहितम्।
सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम्॥

व्यासेन कृत्वातिशुभं पुराणं शुकाय पुत्राय महात्मने यत्।
वैराग्ययुक्ताय च पाठितं वै विज्ञाय चैवारणि सम्भवाय।।

(देवी भागवत् ३, ३४, ३५, ३६) स्कन्धा द्वादशचैवात्र कृष्णेन विहिता शुभः। अर्थात् सभी क्लेशों को नष्ट करनेवाले श्रीमद्भागवत नाम का पुराण मैंने श्रीकृष्णद्वैपायन से सुना है, जो वेदार्थ से समृद्ध तथा सभी आगमों के तत्व का आराम (बगीचा) और मुमुक्षुओं को सर्वदा प्रिय है। अधिकारी जानकर मुनि ने अपने पुत्र श्री शुकदेव को पढ़ाया। इस देवी भागवत के बारहों स्कन्धों को श्रीद्वैपायन व्यास ने ही बनाया है। स्कन्ध पुराण मानस खण्ड में कहा है-

'मन्त्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः।
अष्टादशपुराणानां देवी भागवतं तथा।।'

इस वाक्य से अष्टादश पुराणों में देवी भागवत ही सिद्ध होता है। पुराणों के विषय में एक बात यह भी कही जाती है कि एक पुराण का एक उपपुराण होता है। कालिका पुराण है-देवी-भागवत का उपपुराण 'यदिदं कालिकास्व्यं तन्मूलं भागवत् स्मृतम्।' इससे भी यह सिद्ध होता है कि पुराण देवी भागवत है।

कोई कोई 'मम योनिरप्सु अन्तः समुद्रेः' देवी सूक्त के इस मन्त्रांश से श्री भगवती का योनि या कारण शेषशायी विष्णु को बताकर देवी भागवत का विष्णु भागवत ही मूल है, यह उद्घोष करते हैं, तथापि योनि का अर्थ यहां कारण नहीं है,

प्रत्युत स्थान है। जैसे 'योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि' (ऋ.सं. १-१०४१) इस ऋचा में किया गया है। इस मन्त्र की व्याख्या इसी प्रकार की गई है।

हे इन्द्र ते तव निषदे उपवेशनाय योनिः स्थानं मया अकारि कृतम् (रत्नप्रभा टीका) 'योनिश्च हि गीयते (वे. द. १-४-२७) इस सूत्र के भाष्य में यही अर्थ श्री भगवत्पादाचार्य ने ग्रहण किया है बल्कि प्रकृति तत्व को ही ब्रह्म का योनि या कारण गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है- ममयोनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।' अर्थात् मेरी योनि महद् ब्रह्म शक्ति तत्व है। उसी में गर्भ धारण करता हूँ अर्थात् जन्म धारण करता हूँ। 'पुरुषं ब्रह्मयोनिम्' इसी श्रुति से भी यह स्पष्ट है। अतः शक्ति का मूल ब्रह्म है, यह असंगत है तथा देवी भागवत का मूल विष्णु भागवत है यह अत्यन्त अयुक्त हैं। इस देवी भागवत को महर्षि ने हस्तिनापुर में राजा को सुनाया था। यह कथा महाभारत में भी इसी प्रकार आयी है परन्तु विष्णु भागवत में कनखल में सुनाना माना जाता है। यह प्रसंग से विपरीत भी है। बहुत से विद्वानों की ऐसी राय है कि विष्णु भागवत वोपदेव कृत है परन्तु वोपदेव कृत भागवत इससे भिन्न है तथापि विष्णु भागवत उप पुराण कोटि में ही आता हैं। इसकी रचना शैली को देखते हुये नवीन एवं अनार्ष ही कह सकते हैं इसलिये "पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुः" इस पद्य में 'पुत्रेति' इस सन्धि को आर्ष बताने पर मनोरमा, तत्वबोधिनी टीका में "श्रीधरोक्ति नादर्तव्या" कहा गया है। अनेक छन्दों के प्रयोग

जो नवीन काव्य ग्रन्थों में ही मिलते हैं, वे सब विष्णु भागवत में दृष्टिगोचर होते हैं। ये प्रयोग आर्ष शैली में नहीं है। इसलिये अठारहों पुराणों से इसे पृथक् ही कहा जा सकता है। अठराहों पुराणों की रचना शैली आर्ष हैं।

उपसंहार

गीता भाष्य में श्री शंकराचार्य स्वामी कहते हैं कि "द्विविधो हि वैदिको धर्मः प्रवृति लक्षणो निवृत्ति लक्षण्श्च।" अर्थात् वैदिक धर्म दो प्रकार का है- प्रवृत्ति का बताने वाला तथा निवृत्ति का। प्रवृत्ति को बताने वाली वैदिक संहिता एवं निवृत्ति का बोधक आरण्यक ब्राह्मण भाग या जिसे वेदान्त कहते हैं। इसीलिये गीता में कहा है- "वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्।"

इन्हीं दोनों धर्मो की मुख्यता को लेकर विष्णु भागवत एवं देवी भागवत का आरम्भ है, तथापि निर्णीत है कि प्राचीन वैदिक धर्म प्रवृत्ति प्रधान ही था। लौकिक प्रवृत्ति का परित्याग स्वरूपतः न करते हुये उसी में निवृत्ति प्राप्त की जाती है। इसीलिये मन्त्रभाग में निवृत्ति मार्ग का उल्लेख नहीं लिखा। "बहु प्रजा कृच्छ्मापद्यते" इस वाक्य को यास्क ने परिब्राजकों का बताया है तथापि वैदिक काल में इनकी (निवृत्ति मार्ग वालों की) प्रधानता नहीं थी। इसी वैदिक तत्व की प्रधानता का प्रतिपादन करने वाला पुराण देवी-भागवत है। इसे भी शुक प्रोक्त कहते हैं। शुक को परमहंस कहा जाता है, तथापि देवी

भागवत उन्हें भी प्रवृत्ति मार्ग गामी ही बतलाता है। प्रवृत्ति मार्ग का आधार शक्ति है बिना शक्ति के कोई क्रिया नहीं हो सकती। इसलिये देवी भागवत का प्रतिपाद्य श्री भगवती गायत्री प्रतिपाद्य वेदमाता है। वेदान्त एवं निवृत्ति का विस्तृत सरस व्यख्यान करने वाला विष्णु भागवत है। उपनिषद के तत्वों का प्रतिपादन बड़ी ही स्फूर्तिमय भाषा में किया गया है। प्रेम स्वरूप भक्ति तत्व के बताने में ही इस भागवत का पर्यवसान है। कर्म या ज्ञान गौण कोटि में हैं। जैन, बौद्ध निवृत्ति प्रधान धर्मो का प्रचार जब से हुआ और प्रवृत्ति मार्ग की व्यर्थता का उपदेश होने लगा तभी से वैदिक धर्म की ओर से अरूचि होने लगी। वैदिक कर्मकाण्ड की नि:सारता प्रतिपादन करने से केवल एक निवृत्ति ही धर्म माना जाने लगा। इसका प्रभाव सारे देश में हो गया। इसे हटाने के लिये ब्राह्मण आचार्यों ने जो व्यवस्था की, वह भी निवृत्ति प्रधान ही थी। ऐसे समय में निवृत्ति के प्रचार का सुन्दर ग्रन्थ भागवत था। उसी का आश्रय प्रायः सभी ने लिया। तरह तरह की रीतियों द्वारा व्याख्या नाटक चम्पू तथा भाषा की कविताओं द्वारा कवियों ने भी इसी का आश्रय लिया। इस बड़ी भारी बाढ़ में वैदिक धर्म का प्रतिपादन करने वाले देवी-भागवत को गौणता मिली तथा उसे उपपुराणों की गणना में रखकर एक तरफ रख दिया। शक्ति मार्ग की तरफ अरूचि हुई। देश अध;पतन की ओर अग्रसर हुआ। निर्बलों के पास श्री लक्ष्मी ऐश्वर्य नहीं रह सकते। इसलिये विदेशी, म्लेच्छ, यवन आदियों ने आक्रमण कर सारे देश पर तरह तरह के अत्याचार किये जो

इतिहास पढ़ने वाले अच्छी तरह जानते हैं, परन्तु करुणामयी श्रीमाता की परमानुकम्पा से अब समय बदल गया है। ऐसे समय पर 'चण्डी' का सन्देश भारत के कोने कोने में पहुँचने लगा है जिससे शक्ति तत्व की महत्ता का ज्ञान होने की सम्भावना हो रही है तथा अपने अपने कर्तव्यों का बोध अवश्य ही होगा। आशा है परम रहस्यमय इस देवी भागवत का प्रचार भी धार्मिक जनता में सोत्साह रूप में होगा और भुक्ति एवं मुक्ति के भागी सभी जीव होंगे।

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् ब्राह्मणानां धनं,
धर्मों धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनामलः।
गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च मणिद्वीपश्च सम्वर्णितः
श्री देवी हिमभूभृतै भगवती गीता च गीता स्वयम्॥

॥ ॐ शम् ॥

६. श्रीदुर्गा-नाम-माहात्म्य

'मनुष्य शक्तिशाली होने की महत्वाकांक्षा रखता है' इसी सिद्धांत के अनुसार अपनी अपनी अभिरूचि को लक्ष्य करके सभी प्रयत्न कर रहे हैं। जगत के जितने भी विचार प्रधान प्राणी हैं, उनमें यह अभिकांक्षा स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होती है। इसी के अनुसार इस विषय के तत्वज्ञ, ऋषि, मुनि, आचार्य, गुरू आदि महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न पथ निर्दिष्ट करके जगत को उक्त आकांक्षा की सिद्धि के लिये अग्रसर किया है। चाहे वे सारे मार्ग 'शाक्त' नामसे अभिहित न हो तथा उस मार्ग के अनुयायी ऐसा मानने में आनाकानी करें तथापि तत्वदृष्टि से वे सभी शाक्त ही हैं, क्योंकि वे अपनी अभिलषित वस्तु 'शक्ति' को चाहते हैं। 'महत्ता' पदार्थ और शक्ति दोनों अविनाभाव सिद्ध हैं। अर्थात् इन दोनों में अटूट एवं अपूर्व सम्बन्ध है। यद्यपि जगत के सारे मार्ग तथा मनुष्य शाक्त ही हैं तथापि हमारे इस भारतवर्ष में यह शब्द एक विशिष्ट साधना पद्धति का वाचक है और उस पद्धति के अनुसार चलने वाले साधक को ही शाक्त कहते हैं। यह सनातन मार्ग अनादि काल से हमारे देश में प्रचलित है। गुप्त प्रकट रूप में सभी जगह इसका अस्तित्व आज भी विद्यमान है। समय के हेर फेर से इसके मूल स्वरूप में अवश्य ही विकृति हो गई है तथापि इसकी सत्ता में कोई शंका नहीं हो सकती। सारे जगत् के योग क्षेम की अधिष्ठात्री जगन्माता ही एक तत्व स्वरूप है। उसी की उपासना से जीव अपनी त्रुटियों को हटाकर पूर्णता लाभ कर सकता है, ऐसा सिद्धांत है। उसके अनेक नाम रूप निर्दिष्ट हैं

तथापि 'दुर्गा' नाम सर्व प्रधान और भक्तों का अति प्रिय लगता है। इसी अभिप्राय से कदाचित् 'चण्डी' का नूतन वर्ष का अंक 'दुर्गा अंक' के नाम से प्रसारित हुआ है, इसके लिये अनेक साधुवाद!

नामार्थ :

दकार, उकार, रेफ, गकार और आकार इन वर्णो के योग से मन्त्र स्वरूप इस 'दुर्गा' नाम की निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है-

दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः।
उकारो विघ्ननाशस्य वाचको वेदसम्मतः॥
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्न वाचकः।
भय शत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः॥

अर्थात् - दैत्यां के नाश के अर्थ को दकार बतलाता है, उकार विघ्न का नाशक वेद सम्मत है। रकार रोग का नाशक, गकार पाप का नाशक और अकार भय तथा शत्रु का विनाशक है। इस प्रकार 'दुर्गा' नाम अपने अर्थ का यथार्थ बोधक है। इसी के अनुसार देव्युपनिषद में कहा गया है-

तामग्निवर्णा तपसा ज्वलन्तीं, वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुंर्गा देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः॥

(अ०शी०९)

अर्थ - अग्नितत्व के समानवर्ण (रंग) वाली अर्थात् लालवर्णवाली तपसा अपने ज्ञानमय रूप से प्रदीप्त, कर्म फलार्थियों द्वारा वैरोचिनी अग्नितत्व की शक्ति, विशेष रूप से सेवनीय अथवा विरोचन द्वारा उपास्य श्री छिन्नमस्ता स्वरूप वाली श्री दुर्गा देवी की शरण को हम प्राप्त करें, जो असुरों का नाश करती है, उसे हमारा नमस्कार हो।

अथवा 'दु र् गा' ये तीनों वर्ण अग्नि वर्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं, दकार को अत्रिनेत्रज या अत्रीश कहते है अत: बीजाभिधान के मत से यह वर्ण आग्नेय है। रेफ अग्निबीज प्रसिद्ध है। गकार की संज्ञा 'पश्चान्तक' है। महा प्रलयाग्नि का बोधक होने से इसकी (गकार) यह संज्ञा है। इस प्रकार (अग्निवर्णा) यह 'दुर्गा' नाम उक्त मन्त्र से उद्धृत होता है। नाम तथा देवता के अभेद रूप से दोनों ही पक्षों में यह मन्त्र अपना स्वरूप बता रहा है। सर्वतोभावेन देवताओं के शरणभाव प्राप्त होने पर दुर्ग नामक असुर को मारने से श्री दुर्गा जी का नाम प्रसिद्ध हुआ है। यह सप्तशती में भी कहा गया है-

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्।
दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति॥

(स० ११-४९)

अविमुक्तक काशी क्षेत्र में जीवों के मरने पर भगवान शंकर इसी पावन नाम का उपदेश देकर मुक्ति प्रदान करते हैं, यह प्रसंग महाभागवत में नारद-शंकर संवाद में कहा गया है। इन

उक्त प्रमाणों से दुर्गा नाम की महत्ता सार्थक रूप से अवगत होती है। इन्हीं अर्थों को लक्ष्य करके इस नाम की महिमा रुद्रयामल तन्त्र में भगवान शिव ने बताई है, जिसमें इसके जपने की संख्या एवं महत्व बताया गया है-

दुर्गा नाम जपो यस्य किं तस्य कथयामि ते।
अहं पञ्चाननः कान्ते तज्जपादेव सुव्रते ॥१॥

हे देवि! इस दुर्गा नाम की महिमा मैं क्या कहूँ। इसी के जप की वजह से मैं पञ्चानन कहा जाता हूँ।

धनी पुत्री तथा ज्ञानी चिरंजीवी भवेद्भुवी।
प्रत्यहं यो जपेद् भक्त्या शतमष्टोत्तरं शुचि ॥२॥

प्रतिदिन पवित्र होकर भक्तिपूर्वक अष्टोत्तर शत (एक सौ आठ बार जो कोई इसे जपता है वह धनी, पुत्रवान, ज्ञानी तथा चिरंजीवी होता हैं।)

अष्टोत्तरसहस्त्रं तु यो जपेद् भक्ति संयुक्तः।
प्रत्यहं परमेशानि तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥३॥
धनार्थी धनमाप्नोति ज्ञानार्थी ज्ञानमेव च।
रोगार्तो मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत् बन्धनात् ॥४॥
भीतो भयात्मुच्येत पापान्मुच्येत पातकी।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं देवि सत्यं न संशयः ॥५॥

हे देवि! अष्टोत्तर सहस्त्र (१००८) जो कोई भक्ति से प्रतिदिन जपता है, उसके पुण्यफल को सुनो। धनार्थी धन,

ज्ञानार्थी ज्ञान प्राप्त करते हैं, रोगार्त्त रोग से मुक्त होता है, कैदी बन्धन से मुक्त होता है, डरा हुआ भय से, प्राणी पाप से मुक्त होता है एवं पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करते है।

एवं सत्य विजानीहि समर्थः सर्व कर्मसु ।
अयुतं यो जपेत् भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरि ॥६॥
निग्रहानुग्रहे शक्तः स भवेद् कल्पपादपः ।
तस्य क्रोधे भवेन्मृत्युः प्रसादे परिपूर्णता ॥७॥

हे परमेश्वरी ! दस हजार जो प्रतिदिन जप करते हैं, वे निग्रहानुग्रह करने में समर्थ हो जाते हैं तथा दूसरे कल्पवृक्ष हो जाते हैं। उसके क्रोध में मृत्यु तथा प्रसन्नता में परिपूर्णता होती है। इसी प्रकार सभी कर्म में वह समर्थ होता है, इसे सत्य ही समझो।

मासि मासि च यो लक्षं जपं कुर्याद् वरानने ।
न तस्य ग्रहपीडा स्यात् कदाचिदपि शांकरि ॥
न चैश्वर्यक्षयं याति नच सर्पभयं भवेत् ।
नाग्नि चौरभयं वापि न चारण्ये जले भयम् ॥
पर्वतारोहणे नापि सिंह व्याघ्रभयं तथा- ।
भूतप्रेतपिशाचानां भयं नापि भवेत क्वचित्॥
न च वैरिभयं कान्ते नापि दुष्टभयं भवेत् ।
परलोके भवेत् स्वर्गी सत्यं वै वीरवन्दिते ॥
चन्द्रसूर्यसमोभूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ।
वाजपेय सहस्त्रस्य यत् फलं स्याद् वरानने ॥

तत्फलं समवाप्नोति दुर्गा नाम जपात् प्रिये ।
न दुर्गा नाम सदृशं नामास्ति जगती तले ॥
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन स्मर्तव्यं साधकोत्तमैः ।
यस्य स्मरण मात्रेण पलायन्ते महापदः ॥

अर्थात् हे देवि! प्रत्येक मास में जो लक्ष संख्या में जप करता है, उसे ग्रहपीड़ा नहीं होती, न उसका ऐश्वर्य ही नष्ट होता है, न उसे सर्प का भय होता है। अग्नि, चोर, अरण्य, जल आदि का भी भय नहीं होता, पर्वतारोहण में सिंह, व्याघ्र, भूत, प्रेत, पिशाच आदि का भय तो उसे होता ही नहीं। शत्रुभय तथा दुष्टभय नहीं होता और वह जापक स्वर्ग सुख का भागी होता है। चन्द्र सूर्य के समान कल्प पर्यन्त वह द्यौलोक में रहता है। एक सहस्त्र वाजपेय यज्ञ करने का फल 'दुर्गा' नाम जप के प्रभाव से उसे मिलता है। दुर्गा नाम के सदृश इस संसार में और कोई नाम नहीं है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक साधकों को यह नाम जपना चाहिये। इसके स्मरण मात्र से सभी आपत्तियां भाग जाती है।

इन उक्त श्लोकों में जो अर्थ दुर्गा नाम के विषय में कहे गये है, वे केवल अर्थवाद या प्रशंसा ही नहीं है, प्रत्युत सर्वथा सत्य एवं अनुभवगम्य है। पुराणों में भी दुर्गा नाम के विषय में ऐसा ही कहा गया है। पद्म पुराण पुष्करखण्ड में लिखा है-

'मेरुपर्वतमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ।
कात्यायनीं समासद्य नश्यति क्षणमात्रतः ॥'
दुर्गार्चनरतो नित्यं महापातक सम्भवैः ।
दोषैर्न लिप्यते वीरः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

मेरु के समान पापराशि भी श्री दुर्गा भगवती के शरण में आने पर नष्ट हो जाती है। दुर्गार्चनरत पुरुष पाप से इस प्रकार निर्लिप्त रहता है जैसे जल में कमल।

इस कलिकाल में नाम जप का बड़ा माहात्म्य है, अन्य साधन कठिन, दुरूह तथा सर्वसामान्य के लिये कष्टसाध्य हैं, उनमें नियमादि की कठिनता होने से सिद्ध सुलभ नहीं है। यह दुर्गा नाम सर्वथा सुलभ और महान फल देने वाला है। इसलिये इसका स्मरण सर्वदा करना चाहिये।

भूतानि दुर्गा भुवनानि दुर्गा, स्त्रियो नरश्चापि पशुश्च दुर्गा ।
यद्यद्धि दृश्यं खलु सैव दुर्गा, दुर्गास्वरूपादपरं न किंचित् ॥

॥ ॐ शम् ॥

१०. श्री भगवती गीता

यह भगवती-गीता ग्रन्थ श्रीमद्देवी भागवत के सप्तम स्कन्ध के अन्तिम दश अध्यायों में कहा गया है। इस पर संक्षिप्त टीका संस्कृत में टिप्पणी के रूप में पंडित नीलकण्ठ भट्ट ने की है। पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र ने समस्त पुराण का हिन्दी अनुवाद करके मुम्बई के सेठ श्री खेमराज जी, श्री कृष्णदास के बेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित कराया था, उसमें से पृथक् करके इस गीता को अलग भी हिन्दी अनुवाद सहित छापा गया था, जो कदाचित् अब अप्राप्य है। तारकासुर से पीड़ित देवताओं ने श्री विष्णु की अनुमति से हिमवत् क्षेत्र में मणिद्वीपाधिवासिनी श्री भगवती भुवनेश्वरी को वेद-प्रतिपादित स्तुति द्वारा प्रसन्न करके हिमालय के घर में अवतार धारण करने के लिये वरदान प्राप्त किया। इस परम भाग्य से अपने को धन्य समझते हुये हिमालय ने श्री भगवती को प्रसन्न करके उनसे जो अध्यात्म-विषयक उपदेश प्राप्त किया, वही भगवती-गीता या देवीगीता के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मन्त्ररूप से अनादि अद्वैत विज्ञान, जो वैदिक संहिता ग्रन्थों में कहा गया है और जिसका विस्तार उपनिषदों में है, यथार्थतः वही ब्रह्मविद्या के नाम से कहा जाता है। यद्यपि ब्रह्मविद्या का विषय मन्त्र संहिताओं में अनेक स्थलों में वर्णित है तथापि संक्षिप्त होने से स्पष्ट एवं सुगम नहीं है। इसी को विस्तृत करने के लिये आरण्यक या उपनिषद् ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। मन्त्रों के बाद की कोटि आरण्यक ग्रन्थों की

है तथापि उपनिषदों की प्रमाणता कोई न्यून नहीं है। उपनिषद् भी श्रुतिपद वाच्य है। अधिकारी गण उपनिषदों के ही अभ्यास से परम तत्व को जानते थे। अर्वाचीन युग में इन्हीं का आश्रय लेकर अनेक मतमतान्तरों की स्थापना भी हुई है। इनका महत्व बराबर अक्षुण्ण अब तक चला आ रहा है, तथापि यह उपनिषद् विज्ञान कालक्रम से बौद्धिक ह्रास होने से सर्व साधारण के लिये कठिन प्रतीत होने लगा। इसलिये द्वापरान्त में महर्षि व्यास ने उपनिषदों के तत्वों को लेकर सरल संस्कृति में भिन्न भिन्न उपासकों की उपासना की अभिवृद्धि के लिये गीता ग्रन्थों की रचना की ओर उन्हें भिन्न भिन्न पुराणों में ग्रंथित किया।

परब्रह्म की उपासना विधि वैदिक धर्म में अनेक प्रकार से मानी जाती है, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और शक्ति जिनमें प्रधान हैं। अपनी अपनी भावना के अनुसार परमात्मा को शिव, शक्ति आदि नामों से अभिहित करने में साधकों को आनन्दानुभूति होती है। अत: सारे के सारे वैदिक रहस्य (कर्म ज्ञान भक्ति) का तात्पर्य उसी एक ही तत्व में उसे प्रतीत होता है, जो सर्वथा ठीक ही है। इसी के अनुसार श्रीमुख से श्री भगवती ने जो तत्व हिमाचल को बताया, वह भी उक्त तत्वों को प्रकट करता है। संक्षेप में इस देवी गीता का तात्पर्य एक सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म तत्व के प्रतिपादन में है और वही शक्ति पदार्थ है। दार्शनिक क्षेत्र में अद्वैत प्रतिपादन के अनेक प्रकार हैं, जैसे शाक्ताद्वैत, शैवाद्वैत, विशिष्टाद्वैत,

प्रत्यभिज्ञाद्वैत, तान्त्रिक शाक्ताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि। तथापि श्रुति सम्मत श्री शंकराचार्य से गृहीत अद्वैत ही श्रोत सिद्धान्त रूप से माना जाता है। शेष सारे के सारे अद्वैत इसी के श्रेणीभूत है। अर्थात् साधन हैं। इसी का ग्रहण श्री भगवती गीता में प्रतिपाद्य रूप से किया गया है।

इसके २, ३, ४ अध्यायों में जो तत्व ज्ञान कहा गया है, वह सर्वथा शांकर मत के अनुसार है, जिसे अद्वैत मत के आचार्य ने अंगीकार करके प्रकरण ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। श्री विद्यारण्य स्वामी ने पञ्चदशी के तत्व विवेक प्रकरण में एवं नैष्कर्म्य सिद्धि में श्री सुरेश्वराचार्य ने विस्तार से कहा है। संक्षेप में यह मन्तव्य इस प्रकार है - एक परब्रह्म ही सत्य त्रिकालाबाधित परम तत्व है, जगत् ब्रह्म की माया शक्ति का परिणाम है। माया सत्-असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय मिथ्या है। माया की सत्ता ब्रह्म की सत्ता है। जीव ब्रह्म में अभेद है। जगत् का कारण मायाविशिष्ट सगुण सबल ब्रह्म है। अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ और विराट रूप से वही ईश्वर जगत् के समष्टि रूप का नियामक है। प्राज्ञ, तैजस, विश्व ये तीनों रूप सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत इन तीनों अवस्थाओं के अभिमानी जीव की संज्ञा है। इस प्रकार जीव ईश्वर का वाच्य रूप से स्वरूप निर्णय किया गया है। भागत्यागलक्षणा से जीव ईश्वर की लक्ष्यांश में एकता है। वाच्यांश में जगद् व्यवहार की स्थिति है। कर्मज्ञान का सम समुच्चय न होकर क्रम समुच्चय ही श्रोतमत है। निष्काम कर्म हृदय की शुद्धि का हेतु है। जीवेश्वर

के अभेद ज्ञान से ही अविद्या की निवृत्ति होती है। कर्म ज्ञान का सहायक है। जगत् रज्जु में सर्प की तरह प्रतीत हो रहा है। रज्जुज्ञान से जैसे सर्प की निवृत्ति होती है, उसी प्रकार ब्रह्म के अद्वैत ज्ञान से जगद्भ्रान्ति की निवृत्ति हो जाती है, इसे ही विवर्तवाद कहते हैं। ललिता सहस्रनाम के 'मिथ्याजगदधिष्ठाना' इस नाम की व्याख्या में श्री भास्करराय ने उक्त सिद्धान्तानुसार ही व्याख्या की है।

पाँचवें अध्याय में पातञ्जल अष्टांग योग नियम आसनादि तथा मन्त्रयोग, षट् चक्र निरूपण और माया बीज का स्वरूप तान्त्रिक पद्धति के अनुसार कहा गया है, जो उक्त तत्वज्ञान का पूर्व अंग है। छठवें अध्याय में ब्रह्मरूपिणी चितिशक्ति का मुण्डक श्रुतियों से जो निरूपण किया गया है।, उसका अपरोक्ष ध्यान विधि से ही हो सकता है, इसलिये ध्यान करने की श्रोत विधि बताई गई है, जिसका अभिप्राय अद्वैत तत्व का साक्षात्कार है। 'अहमेव स सोहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत' (६/१७) इस सारगर्भित वाक्य से कहा गया है। सातवें अध्याय में भक्ति के स्वरूप और तामस, राजस, सात्विक आदि भेदों का निरूपण किया गया है। वैदिक तान्त्रिक पूजा का निर्देश किया गया है। वैदिक एवं तान्त्रिक दीक्षा सम्पन्न साधक ही इनका अनुष्ठान कर सकते है। तान्त्रिक दीक्षा वेद से अविरुद्ध तन्त्रों से ही ग्रहण करनी चाहिये।

सौन्दर्य लहरी के टीकाकार पण्डित लक्ष्मीधर के मत से सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, शुक और वशिष्ठ संहिता ही

वेद से अविरुद्ध तन्त्र है। इन तन्त्रों का आचार समयाचार है। अवशिष्ट सारे तन्त्र वेदबाह्य हैं। 'शुद्धाद्वैत मार्तण्ड' ग्रन्थ के टीकाकार पण्डित रामकृष्ण भट्ट तन्त्रों को सर्वथा अप्रामाणिक बताते हैं, केवल गोपाल सुन्दरी, नरसिंह सुन्दरी तन्त्रों को ही वैष्णवों को ग्राह्य बताया है, अन्य सभी तन्त्र मोहनशास्त्र हैं। प्रकृत श्री भगवती गीता में भी कहा है-

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः ।
वां कापालकं चैव कौलकं भैरवागमम् ॥
शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः ।
दक्षशापाद् भृगोः शापाद् दधीचस्य च शापतः ॥
दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्ग बहिष्कृताः ।
तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥

(अ० ९/२७, २८, २९)

अर्थात् श्रुति, स्मृति से विपरीत वाम, कापाल, कौल और भैरवागम हैं। इन्हें शिव ने मोह के लिये बनाया है। दक्ष, भृगु दधीच के शाप से दग्ध ब्राह्मणों के उद्धार के लिये इन्हें सोपान क्रम की तरह समझना चाहिये। 'पत्युरसामञ्जस्यात्' वे०द०अ० २/२/३५ सूत्र के भाष्य में श्रीरामनुजाचार्य ने पाशुपत ईश्वर निमित्त कारण के साथ उक्त आगमों को भी वेदवाह्य बताकर त्याज्य कोटि में गिनाया है। श्रीनिम्बार्काचार्य के शिष्य श्री निवासाचार्य ने अपने भाष्य में रामानुज का ही अनुकरण किया है, विशेष और कोई बात नहीं कही। श्री बल्लभाचार्य एवं श्री शंकराचार्य ने उक्त आगमों के विषय में कुछ नहीं कहा, केवल

निमित्त कारण मात्र का खण्डन किया है। श्री कण्ठाचार्य कृत शैव भाष्य के टीकाकार श्री अप्पय दीक्षित ने शैवागम को वेदानुकूल एवं वेद विरुद्ध दोनों प्रकार का बताया है। उसमें वेद विरुद्धांश ही त्याज्य है।

परमेश्वरार्पण बुद्धि से किया हुआ कर्मयोग भगवती की सात्विक भक्ति है। इसे अपार भक्ति कहते है। श्री भगवती के चरित्र, नाम, लीला, गुण आदि के श्रवण कीर्तन में सतत संलग्न रहने से पराभक्ति का उदय होता है। परम वैराग्य इसका अन्तरंग साधन है सालोक्य, सायुज्यादि का भी त्याग इसमें अपेक्षित है। यदि आकांक्षा हो तो केवल उसकी सेवा की, मोक्ष की आकांक्षा भी इसके आगे नगण्य है। इसमें अभेद रूप से भजन होता है, अपरा में भेद रूप से। अपरा भक्ति परा भक्ति की पूर्व भूमिका है, इन दोनों भक्तियों के विषय में शांडिल्य सूत्र में कहा है-- 'भक्त्या भजनोपसंहाराद् गौण्या परायै तद्हेतुत्वाद् (शा० भ० २/२/१)। गौण्या भक्त्या भजनोपसंहारात् भजन सेवादि करणात् परायै परा भक्ति सिद्धये भवति तद्हेतुत्वाद् परा-साधनत्वात् भजनसेवातीर्थसेवनलीला कीर्तनादयो गौणभक्तयः (ऋज्वर्थबोधिनी वृत्ति)। अर्थात् भजन सेवा तीर्थ सेवन, लीलादि का कीर्तन गौण भक्ति है। इसके द्वारा परा भक्ति का अविर्भाव होता है। इस अध्याय की समाप्ति परा भक्ति के निरूपण में बड़े भावपूर्ण रूप से की गई है। परा भक्ति और ज्ञान एक ही वस्तु है। अतः भक्ति और ज्ञान का परस्पर कलह निस्सार है। अन्त में ज्ञान के विषय में कहा गया है-ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः

स्यादिति वेदान्त डिण्डिमः, अर्थात् वेदान्त का ही यही उद्घोष है कि ज्ञान प्राप्त होने पर कृतार्थता होती है।

आठवें अध्याय में भाव के आविर्भाव के लिये जो पीठ स्थान माने गये हैं उनकी गणना की गई है उन पीठ स्थानों में वास करके साधक भक्ति प्राप्त करे या काशी वास करने से भी उक्त सिद्धि होती है। इसके अनन्तर शुक्रवार, कृष्णचतुर्दशी, मंगलवार, सोमवार, प्रदोषव्रत, नवरात्रादि व्रतों को करने की आज्ञा दी गई है। ये व्रत श्री भगवती के चरणों में प्रीति उत्पन्न करते हैं। अतः ये सर्वथा कर्तव्य है। नवें अध्याय में तथा श्री भास्करराय ने कहा है 'कापालं भैरवं चेति'। कूर्म पुराण में कहे हुए देवों के विमुख जनों के व्यामोह के लिये तथा अवैदिक लोगों के लिये श्री शिव ने इन तन्त्रों को बनाया है। अतः ये तन्त्र उत्तम तन्त्रों में नहीं हैं। आगे चलकर फिर कहा है कि कौल उपासना चरम भूमिका है। उसके अधिकारी दुर्लभ होने से उसका अभिप्राय ठीक न जानने से विपरीत हो सकता है। अतः इसकी निन्दा की है, वास्तव में नहीं। अधिकार होने पर भी अति रहस्य में प्रवृत्ति न हो, इस अर्थ में भी उक्त वामागमादि को निषेध किया गया है (नित्या षोडशिकार्णव - २२)। इसलिये कुलार्णव में श्री शिव ने कहा है-

कुलमार्ग रतो देवि न मया निन्दितः क्वचित् ।
आचाररहिता येऽत्र निन्दितास्ते नचेतरे ॥

अर्थात् हे देवि कुलाचार रत की मैंने कभी निन्दा नहीं की हैं। जो आचार रहित है वही निन्दनीय हैं अतएव आचार रहित अवैध

व्यवहार करने वाले ही निन्दनीय हैं। ऋग्वेद की सांख्यायन शाखीय त्रिपुरोनिषद् में वाम कौलाचार के विषय में कहा है -

परिस्रुतं झषमाद्यं पलं च, भक्तानि योनीः सुपरिष्कृतानि ।
निवेदयन् देवतायै महत्यै, स्वात्मीकृत्य सुकृती सिद्धिमेति ॥
(म० १२)

अर्थात् जो परदेवता को अर्पण कर पञ्चतत्वों को स्वयं ग्रहण करते है, वे सुकृती सिद्धि को प्राप्त करते हैं। जो लोग इन तत्वों का यथाकाम उपयोग करते हैं, उन्हें श्रुति ने निन्दनीय कहा है--

सृण्येवसितया विश्वचर्षणिः, पाशेन प्रतिवध्नात्यभीकान् ।
इषुभिः पंचभिर्धनुषा च विध्य त्यादिशक्तिररुणा विश्वजन्या ॥
(म० १३)

जो लोग अवैध आचरण करते हैं, उन्हें अरुणा आदि शक्ति अपने धनुष द्वारा पांचों बाणों से वेधन करके नष्ट कर देती है। अतः कुलाचार को अवैध एवं निन्दनीय बताना मिथ्या है। छान्दोग्य के वामदेव्योपासना में 'न कांचन परिहरेत् तद्व्रतम्' - इस वाक्य में कौलाचार ही गृहीत हैं। इसी के अनुसार कवि-तार्किक-शिरोमणि श्री हर्षमिश्र ने नैषध-काव्य में कहा है-

कम्रं तत्रोपनाम्राया विश्वस्या वीक्ष्य तुष्टवान् ।
स मम्लौ तं विभाव्याथ वामदेव्याभ्युपासकम् ॥
(स० १७-१९४)

अर्थात् किसी के समीप बहुत-सी स्त्रियों को देखकर कलि प्रसन्न हुआ। बाद में उसे ज्ञात हुआ कि यह वामदेव्योपासक है तो वह निसतेज होकर मलिन हो गया। शिश्नदेवा अब्रह्मचर्या: - इस ऋग्वेद में कौलाचार का ही ग्रहण है। तारा भक्ति सुधार्णव के आगम-प्रामाण्य विचार में कहा है कि आगम और वेद का परस्पर कोई विरोध नहीं है। अत: इन्हें वेदबाह्य नहीं कहा जा सकता। इनका अवैधांश ही निन्दास्पद है। कपाल, भैरवागम वीराचार के अन्तर्गत हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण के शाक्त्यसत्र में वीराचार गृहीत है। दक्ष, भृगु, दधीच के शाप से दग्ध ब्राह्मणों का उद्धार इससे होने से इसकी निन्दा न होकर प्राशस्त्य ही का बोध होता है। इन आगमों में मोह शास्त्र की जो बात है वह भी निन्दा का विषय नहीं प्रत्युत गूढ़ाभिप्राय होने से रहस्यत्व द्योतक है अर्थात् जिसके निर्णय करने में बड़े-बड़े भी मुग्ध हो जाते है। 'वलादाकृष्य मोहाय' इसी अभिप्राय में हैं। पद्म-पुराण में सांख्य, कणाद, न्याय, मीमांसा, मायावाद, चार्वाक, जैन, बौद्ध, पाशुपत इन सभी को मोहशास्त्र बताया है। इसी में वैष्णवों का पञ्चरात्र भी गिनाया गया है। उक्त प्रकार से इनकी संगति लग सकती है। कई विद्वानों का मत है कि इस विषय के सभी श्लोक प्रक्षिप्त हैं, इनका प्रामाण्य संदिग्ध हैं, अस्तु।

द्विज के लिये वेदमार्ग ही प्रशस्त होने से सर्वपुरुषार्थ का हेतु है। उसी के अनुसार प्रथम पूजन (वैदिक) करना चाहिये। वेद सम्मत तन्त्रों के अनुसार जल वाणलिंग हृदय यन्त्र आदि में पूजन कर भगवती की कृपा प्राप्त करना चाहिये। यह बाह्य

पूजा अन्तः पूजा का साधन है। अन्तः पूजा सिद्ध होने पर संवित् रूप अम्बिका के स्वरूप में जीव का लय होकर अद्वैतानुभव होता है। इसके अतिरिक्त मायामय जगत मिथ्या प्रतीत होने लगता है। दशवें अध्याय में प्रातः कृत्य से आरम्भ करके सर्वांग पूर्ण पूजा प्रकार बताया गया है जो पद्धतियों का विषय है बिना पूजा के पूज्यत्व प्राप्त नहीं होता। इसलिये ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये यह अवश्य कर्तव्य है। संक्षिप्त रूप से इस भगवती गीता ग्रन्थ का यह परिचय विशेष रूप से तो पाठकों को ग्रन्थाध्ययन से ही बोध हो सकेगा। यह ग्रन्थ शाक्तों की एकमात्र पत्रिका 'चण्डी' में धारावाहिक रूप से पण्डित प्रवर श्री हरिशास्त्री जी दाधीच की सुन्दर सुस्पष्ट व्याख्या के साथ प्रकाशित भी हो चुका है।

॥ ॐ शम् ॥

११. स्वप्न-विज्ञान

विचार सतत चिन्तन द्वारा विचारणीय वस्तु की आकृति को बनाता हैं। इस मनोवैज्ञानिक नियम द्वारा दृश्यमान सारे जगत की समस्त आकृतियाँ बनी हुई हैं। यह स्थूल जगत इसी की परिणत अवस्था है। शब्द तत्व या भाषा विचार के इस कार्य का मूल सम्पादक है। श्री भर्तृहरि ने कहा है–

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।

(वाक्य० ब्रह्म० १२४)

अर्थात् ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है कि जिसमें शब्द की कारणता न हो। सारे ज्ञान शब्द तत्व से ही भासित होते हैं। जगत के कारणभूत परम तत्व में सद्रूप से सारा जगत विद्यमान रहते हुए -- 'एकोऽहं बहुस्याम्' की भाषा से ही अनेक रूप से प्रकट होता है। इस अनेकता में प्रकाश, विमर्श (शिव, शक्ति) रूप से जगदवभास का हेतु शब्द ब्रह्म ही है, इसी आधार को लेकर साधना से तत्व साक्षात्कार होता है। मन्त्र शास्त्र की भित्ति इस पर आरूढ़ है। वैदिक तान्त्रिक मन्त्रों में यह तत्व समान रूप से स्वीकार किया गया है। जब साधक शक्ति एवं शान्ति के लिये मन्त्रोपदेश श्री गुरु के अनुग्रह द्वारा करता है तभी उसे यह लक्ष्य बतला दिया जाता है।

परावाणी अक्षर ब्रह्म तत्व कारण शरीर में स्वयं प्रकाश रूप से प्रकाशित होती है, उसे ही मूलचक्रस्था कहते है। पश्यन्ती नाभि मण्डल में स्वप्न विषयों को प्रकाशित करती है इसलिये

उसे पश्यन्ती कहते है। मध्यमा वाक् वैखरी से मिलकर स्फोट रूप वर्ण का अभिव्यञ्जक है। कहा है –

परावाङमूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।

हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥

वैखर्यां हि कृतो नादः परश्रवण गोचरः।

मध्यमया कृतो नादः स्फोट व्यञ्जक उच्यते॥

(परम लघुमञ्जुषा)

इन चारों वाणियों में वैखरीवाणी को निरर्थक कहा गया है। कारण शरीर में परावाणी, सूक्ष्म शरीर में पश्यन्ती और स्थूल में मध्यमा युक्त वैखरी ही अपने स्वरूपों से विषय को प्रकाशित करती है।

स्थूल का कारण सूक्ष्म ही प्रेरणावश स्थूलता का रूप धारण करता है। विचार वैचित्र्य ही अनेकता की स्थूलता का कारण है। कार्य कारण शरीर के मध्य में एक मध्यमावस्था और है जिसका ज्ञान स्वप्नावस्था में होता है। श्रुति में इसे तृतीय सन्ध्यस्थान कहा गया है।

"सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानम्।"

(बृ० ४-३-९)

कारण स्थूल शरीरों की सन्धि में होने से इसे (स्वप्न) सन्ध्य कहते हैं। जिस प्रकार स्थूल सृष्टि है इसी प्रकार स्वप्न अवस्था की भी सृष्टि है। अन्तर केवल इतना है कि जागृत अवस्था की स्थूल सृष्टि

को देश काल की अपेक्षा है। स्वप्न सृष्टि इसके बिना ही प्रत्यक्ष विषयों को बनाती है। वेदान्त दर्शन के सन्ध्ये सृष्टि राहहि "(वे०द० ३-५-१) सूत्र में इसे स्वीकार किया गया है। अर्थात् स्वप्न अवस्था में श्रुति, सृष्टि का होना बताती है। 'न वहां रथ ही है, न रथ के योग्य मार्ग ही है तथापि वहां सृष्टि होती है' (वृ० ४-३-१०) स्वप्न अवस्था में प्रतीत होने वाला जगत् तैजस तत्त्व का है। इसमें स्थूल एवं सूक्ष्म संसार का संयुक्त रूप प्रतीत होता है। इसके इन दोनों रूपों से विचारकों ने इसके लक्ष्य को जानने का प्रयत्न किया है। इस विषय के प्रमाण एवं अनुभव द्वारा जो कुछ निश्चय किया गया है, उसे यहां पाठकों को बताने का प्रयत्न किया जाता है।

स्वप्न के दृश्यों का जीवन पर क्या क्या प्रभाव पड़ता है, उनसे जीवन में क्या क्या रहस्य घटित होते है; इष्ट, अनिष्ट तत्वों का स्वरूप कैसा होता है- आदि इसके विचारणीय विषय है। वैद्यक शास्त्र में तो बहुत सी बीमारियों का कारण (निमित्त) स्वप्न दर्शन से निश्चित किया गया है। इस स्वप्न विज्ञान पर ज्योतिष, वैद्यकशास्त्र, वेद, स्मृति पुराण, तन्त्र शास्त्रों में अनेक प्रकार से वर्णन मिलता है, स्वप्न के सामान्य निरूपण में इन शास्त्रों को बहुत मतभेद नहीं है। आधुनिक मनोविज्ञान भी (साइकोलॉजी) स्वप्न विज्ञान पर विचार करता है तथापि आर्य शास्त्रों में कहे हुये विषयों से अभी तक अधिक नहीं बता सका है।

स्वप्न के कारण और भेद

वैशेषिक दर्शन में स्मृति-ज्ञान को पूर्व संस्कारों से जन्य माना गया है। उसी प्रसंग में स्वप्न को भी कहा गया है कि स्वप्न

भी पूर्व-संस्कारों से ही होता है। 'तथा स्वप्नः' (वै० ९-२७) अर्थात् अपने अपने विषयों के ग्रहण से उपरत इन्द्रियां जब मन में लीन हो जाती हैं तब सूक्ष्म रूप से उन उन इन्द्रियों से मन जिन जिन विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव करता है, वही स्वप्न कहलाता है। इस प्रकार के अनुभव का हेतु मन पर पड़े हुये इन्द्रियों द्वारा विषय अनुभव का संस्कार ही कारण है। वात, पित्त और कफ की विषमता से भी स्वप्न होते हैं। वात दोष से आकाश गमन, पृथ्वी पर्यटन, भयानक सिंह, व्याघ्र आदि दृश्य देखे जाते हैं। पित्त दोष से अग्नि प्रवेश, अग्नि, ज्वाला, कनक पर्वत, बिजली आदि देखे जाते हैं। कफदोष से समुद्र तरण, नदी में नहाना, पानी की वर्षा, रजत पर्वतारोहण आदि दृश्य आते हैं। धर्माधर्म से पूर्व जन्मानुभूत स्वप्न भी देखे जाते हैं। धर्म से हाथी पर बैठना, पर्वतारोहण, छत्र लाभ, खीर भोजन, राज दर्शन, आदि। अधर्म से तैल की मालिश, अन्ध कूप पतन, ऊँट पर चढ़ना, कीचड़ में फंसना, अपना विवाह देखना आदि स्वप्न होते हैं। उक्त सूत्र की उपस्कार टीका में इतने अर्थों में स्वप्न का विभाग किया गया है। वेदान्त दर्शन में भी स्वप्न फलादेश के विषय में कहा गया है--

'सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः'

(वे०द० ३-२-४)

श्रुति स्वप्न के फल को बताती है। जब कोई काम्य कर्म करते हो तथा स्वप्न में स्त्री दर्शन हो तो उस कर्म की सिद्धि

जाननी चाहिये। (छा० ५-२-९) भाष्यकार श्री स्वामी शंकराचार्य ने इस सूत्र पर इस प्रकार का भाष्य किया है--

'पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति ए नं हन्ति आचक्षते'। चस्वप्नाध्यायविद कुंजरारोहणादीनि स्वप्ने धन्यानि॥ खरयानादीन्यधन्यानि मंत्रदेवताद्रव्यविशेष निमित्ताश्च। केचिद् स्वप्ना: सत्यार्थगन्धिनो भवन्ति इति मन्यन्ते॥

अर्थात् काले दांत वाले कृष्ण पुरुष को देखने से मृत्यु होती है। स्वप्नाध्यायवेत्ता स्वप्न में हाथी पर चढ़ना आदि स्वप्नों को शुभ एवं खरयान पर आरुढ़ होना अशुभ बताते हैं। बहुत से स्वप्न मन्त्र देवता औषध के निमित्त से सत्य होते है। ऐसा वे लोग मानते हैं। ज्योतिष शास्त्र के दैवज्ञ कल्पद्रुम ग्रन्थ में स्वप्न सात प्रकार के बताते है:-

१) दृष्ट, २) श्रुत, ३) अनुभूत, ४) प्रार्थित, ५) कल्पित, ६) भाविक और ७) दोषज।

१ - जागृत अवस्था में देखी हुई वस्तुओं का स्वप्न देखना **दृष्ट** कहलाता है।

२ - प्राचीन या नवीन सुनी हुई बातों को देखना **श्रुत** कहा जाता है।

३ - जागृत अवस्था में परीक्षित वस्तुओं का देखना **अनुभूत** स्वप्न होता है।

४ - जागृत अवस्था में इच्छा की हुई वस्तुओं का देखना **प्रार्थित** स्वप्न होता है।

५ - कल्पना की हुई वस्तुओं का देखना **कल्पित** स्वप्न है।

६ - देखी सुनी हुई बातों से विलक्षण मन्त्राभ्यासादि द्वारा जो स्वप्न दिखाई देते हैं, उन्हें **भाविक** कहते हैं।

७ - वात, पित्त, कफ दोष से जो स्पप्न होते है, उन्हें **दोषज** कहते हैं।

प्रथम के पाँचों स्वप्न प्रायः मिथ्या होते है। अन्त के दो भाविक और दोषज सत्य होते हैं। भाविक का विचार श्रुति स्मृति पुराण ग्रन्थों में भी पाया जाता है। दोषज का विचार वैद्यक ग्रन्थों में विशेष रूप से किया गया है। चरक संहिता के इन्द्रिय स्थान में उक्त स्वप्नों के प्रकारों का निर्देश किया गया है-

दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं स्मृतम्॥
तत्र पञ्चविधं पूर्वम् फलं भिषगादिशेत्।
दिवास्वप्नमति ह्रस्वमतिदीर्घं च बुद्धिमान्॥
दृष्टः प्रथमरात्रेयः स्वप्नः सोल्पफलो भवेत्।
तत्स्वपेद्यः पुनर्दृष्ट स सद्यः स्यान्महाफलः॥
अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः।
पश्येत् सौम्यंशुभाकारं तस्यविद्याच्छुभं फलं॥

(चरक इन्द्रिय अ. ५, ४३, ४४, ४५, ४६)

अर्थात् दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज इन सात प्रकार के स्वप्नों में वैद्य पूर्व के पाँच स्वप्नों को मिथ्या एवं अन्त के दोनों स्वप्नों के फलों को सत्य जानें। दिन का स्वप्न, बहुत बड़े एवं बहुत छोटे स्वप्न भी मिथ्या होते है। रात्रि के प्रथम भाग में देखा हुआ स्वप्न भी अल्प फल वाला होता है। स्वप्न देखकर जागने के बाद फिर नहीं सोना चाहिए। पुनः सोने से स्वप्न का फल व्यर्थ हो जाता है। अशुभ स्वप्न देखने के बाद शुभ स्वप्न देखा जाए तो उसका फल शुभ ही होता है।

आयुर्वेद में स्वप्नविचार

वात, पित्त, कफ दोषों से भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कारों के उदय से स्वप्न देखे जाते हैं, जिन्हें सुश्रुत संहिता के सूत्र स्थान के उन्नींतसवें अध्याय में इस प्रकार बताया गया है - जो कोई रोगी अपने भाई बन्धुओं को रोगी देखता है; तेल से पुते हुये अपने शरीर को देखता है; ऊँट, सर्प, गधा, सुअर और भैस से घिरा हुआ, दक्षिण दिशा में जाता हुआ देखता है; लाल वस्त्र को धारण करने वाली केश खोले हुये हँसती हुई स्त्री बांधकर दक्षिण की ओर खींचती हुई देखता है; प्रेतादि आलिंगन तथा भयानक जंगली जानवरों से घिरना, मधु (मद्य) तैल का पीना, कीचड़ में धँसना तथा कीचड़ में लिपटे हुए अपने का देखना, नाचना, हँसना, नग्न होना, रक्तमाला सिर पर धारण करना, बांस ताड नल आदि पेड़ों का वक्ष स्थल में उगना; मछली का निकलना, माता के गर्भ में प्रवेश करना, पर्वत पर से गिरना;

अन्ध कूप में गिरना, जलधारा में बहना, मुण्डित होना, पराजित होना, काकादि से पराभव पाना, तारा का गिरना, दीप और नेत्र का प्रकाशहीन होना, देवता और प्रथ्वी का कांपना, वमन, दांतों का गिरना, सेमर, पलाश, दीमक की मिट्टी का ढेर नीम का पेड़ देखना, पुष्पित कचनार का वृक्ष देखना, चिता पर आरूढ़ होना, कपास, तैल, खली, लोहा, नमक, तिल प्राप्ति, शुद्ध भोजन करना या सुरापान करता हुआ, स्वस्थ पुरुष देखता है तो रोगी होता है और रोगी देखे तो उसकी मृत्यु होती है, इत्यादि अशुभ स्वप्नों से अनिष्ट होता है। अशुभ स्वप्नों के देखने पर शुभ मन्त्रों का जप करना चाहिये। ब्राह्मणों को तिल, उड़द, लौह द्रव्य का दान देना चाहिए। त्रिपदा, गायत्री जप से शान्ति होती है। मन्त्र जप से अशुभ स्वप्नों का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

देवता, ब्राह्मण, गौ, वृषभ, जीते हुए सुहृद, राजा, प्रदीप्त अग्नि, साधु, निर्मल जल देखने से कल्याण की प्राप्ति एवं रोग की निवृत्ति होती है। महाप्रासाद, सफल वृक्ष, हाथी, पर्वत पर चढ़ने से भी उक्त फल होता है। माँस, मछली, श्वेत माला, वस्त्र फल से दर्शन से धन की प्राप्ति तथा रोग से मुक्ति होती है। नदी तट, समुद्र क्षुब्ध मलिन जल वाले जलाशय का तैरना भी कल्याणप्रद एवं व्याधि को दूर करता है। सर्प, जोंक या भ्रमर जिस रोगी को काटे, उसे आरोग्य का निर्देश करें। इत्यादि शुभ स्वप्नों के फल बताये गये हैं। (सुश्रुत० सूत्र० २९ अ)

लाल रंग का स्वप्न किसी भी प्रकार का हो वह अशुभ ही होता है। केवल लाल कच्चा मांस तथा लाल चन्दन को देखना

शुभ है। सफेद वर्ण के सभी स्वप्न शुभ होते हैं, तथापि कपास, भस्म तथा दही का देखना अशुभ है। काले वर्ण के स्वप्न भी अशुभ हैं। केवल भूमि, सोना, काला ब्राह्मण, काला देवता और हाथी देखना शुभ है। चरक संहिता के इन्द्रिय स्थान में शुभाशुभ स्वप्नों की गणना सुश्रुत की गणना से मिलती जुलती है। कोई विशेष नहीं है।

स्वप्नाध्याय का संक्षेप

राजा, ब्रह्मण, देवता, सिद्ध, किन्नर, गन्धर्व, गुरु, श्वेत वस्त्र वाली स्त्री, इनके द्वारा आशीर्वाद या दर्शन से शुभ होता है। पर्वत पर चढ़ना, श्वेत बैल, आसन, घोड़ा तथा सिंह पर चढ़ना शुभ है। पुष्पित वृक्ष का लाभ या दर्शन सुख और यशकारक है। पुष्प फल युक्त वृक्ष पर चढ़ना, दाहिने हाथ में श्वेत सर्प का काटना धन लाभ करता है। रक्त स्नान तथा पान, शय्या का जलना, अपना शिरच्छेद देखना भी शुभ है। रुधिर का निकलना, जल में स्नान, अपना मरना, मद्य, मांस, दुग्धपान, केले के वृक्ष का दर्शन, वेद ध्वनि, पीले लाल रंग के पुष्पों का देखना, विवाद में जीत, राज्याभिषेक, हस्ती, भैस, व्याघ्री, गाय, सिंहनी, अपने नाभी पर तृण का उगना मणि जड़ित पात्रों में भोजन करना, ब्रह्मचारी तपस्वियों का दर्शन, शिवादि देवताओं का पूजन देखना आदि स्वप्न शुभ फल वाले होते हैं। तैलाभ्यंग नग्न होकर, महिष, गधा, ऊँट, काले बैल तथा घोड़े पर सवार होकर दक्षिण दिशा को जाना इत्यादि स्वप्न मृत्युकारक हैं। अपना कोई अंग भंग देखना, लाल पुष्प से पुष्पित वन में

जाना, सूतिकागृह में जाना भी मृत्युकारक हैं। नाभि स्थान को छोड़कर शरीर के किसी भाग में तृण, पुष्प, वृक्षादि का उगना अशुभ हैं। आंख, कान, जिह्वा आदि का न रहना भी अशुभ है। विवाह आदि मांगलिक कार्यो में शोक होना अशुभ है। अपने शरीर में धूम्रपान देखना या धुएँ से घिरा हुआ देखना भी अशुभ है। श्राद्ध आदि प्रेत कार्य करना, भूत प्रेतादि से वार्तालाप, बिना सूर्य के दिन तथा बिना चन्द्रमा के रात्रि को देखना भी अशुभ है इत्यादि बृहस्पति कृत स्वप्नाध्याय में स्वप्न लक्षण बताये गये है। पूर्व कहे हुए अनेक स्वप्नों से बहुत से स्वप्न मिलते हुये हैं। अग्निपुराण अ० २२८ में स्वप्नाध्याय का निरूपण हैं। वह भी इसी प्रकार है। धर्म-सिंन्धु तृतीय परिच्छेद पूर्वार्ध के अन्त में भी स्वप्न विचार लिखा है। वह पूर्व के बताये हुये लक्षणों का अनुवाद मात्र है। केवल दुःस्वप्न निवृत्त में 'योमे राजन्' यह ऋचा 'शतचण्डी प्रयोग' 'विष्णु सहस्र नाम पाठ' भारत तथा भागवत में कहे हुये 'गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्र' का पाठ करने से दुःस्वप्न निवृत्त होते हैं ऐसा प्रतिपादन किया गया है।

स्वप्न और ज्योतिष शास्त्र

ज्योतिषशास्त्र के प्रश्न प्रकरण में स्वप्न ज्ञान की रीति ग्रहों के वर्ण (रंग) के अनुसार ही बतलायी गई है। जैसे स्वप्न के प्रश्न के समय यदि वर्तमान लग्न में सूर्य हो तो राजा, अग्नि, शास्त्र, लाल वस्तु को कहना चाहिये। यदि लग्न में चन्द्रमा हो तो श्वेत पुष्प, श्वेत वस्तु, वस्त्र, सुगन्ध की वस्तु, स्त्री आदि के दर्शन होते हैं।

यदि मंगल हो तो रक्त वस्त्र, मांस, मूंगा, सुवर्ण का स्वप्न कहना चाहिये। यदि लग्न में बुध हो तो आकाश गमन कहना चाहिये। गुरु के होने पर धन प्राप्ति तथा बन्धु समागमन होता है। लग्न में शुक्र हो तो जल क्रीड़ा, शनि के होने पर उँचे स्थान पर चढ़ना आदि कहना चाहिए। अथवा लग्न के नवमांशेश से स्वप्न फल कहना चाहिए। जो ग्रह बली हों उसके अनुसार फल कहे। यदि कई ग्रहों का बल हो तो मिश्र फल कहे। यदि स्वप्नकारक ग्रह दुर्बल हो तो दुःस्वप्न कहना चाहिये। (दैवज्ञ कल्पद्रुम प्र०प्र०७५-७८)।

ज्योतिष के फलादेश में बहुत से लोग विश्वास नहीं करते हैं। केवल गणित भाग को ही सही मानते हैं, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध होने पर फल बिल्कुल ही नहीं होता। ग्रहों के फल विचारने के पूर्व अपनी स्थिति तथा ग्रह की स्थिति के अनुसार विचार करेंगे तो अवश्य कुछ न कुछ फल देखने को मिलेगा।

स्वप्न का वैदिक स्वरूप

वैदिक ग्रन्थों में भी स्वप्न के विषय में बहुत विचार किये गये हैं। अथर्ववेद के १६, १७, १८ काण्डों में अनेक सूक्तों में स्पष्ट रूप से स्वप्न का अनिष्टकारी प्रभाव बताकर उससे रक्षा की प्रार्थना की गई है। इनमें कई एक के पाठ ऋग्वेद में भी आये हैं। अथर्ववेद के १६ वें काण्ड के ५ पर्याय सूक्त का अर्थ सहित पाठ यहां देते हैं जिससे इस विषय का स्पष्टीकरण होता है-

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोसि।
स्वप्न वरूणानी ते माता यमः पिताररूर्नामासि ॥१॥

हे स्वप्न तुम न जीते हो और न मृत ही हो अर्थात् इन दोनों अवस्थाओं से विलक्षण हो क्योंकि जो जीता है वह प्रतिदिन दृष्टिगोचर होता है मृत कभी भी नहीं दिखता है और स्वप्न कभी कभी दिखता है अतः जीवित एवं मृत से विलक्षण हो, देवताओं के लिये अमृत गर्भ हो अर्थात् धार्मिक लोगों के लिये शुभ फल देने वाले हो। वरुणानी तुम्हारी माता और यमराज तुम्हारा पिता है। ''अररु'' तुम्हारा नाम हैं। वरुण देव की पत्नी अज्ञान रूप से आवरण करने वाली तुम्हारी माता अर्थात् जननी है। जितने भी अनिष्ट कारक स्वप्न हैं इसी शक्ति द्वारा उत्पन्न होते हैं। यम मारक शक्ति तुम्हारा पिता अर्थात् जनक हैं।

पूर्व के स्वप्न लक्षणों में अनेक स्वप्न मृत्युकारक बताये गये हैं। ''अरुर नामासि'' अर्थात् पीड़ा करने वाले असुर नाम वाले भी तुम हो। स्वप्नाध्याय के कई स्वप्नों में पीड़ा, रोग और मृत्युकारक स्वप्न बताये गये हैं। उनसे मन्त्र का भाव संगत होता है।

विघ्नते स्वप्नजनित्रं देवजामीना पुत्रोऽसि।
यमस्य कारणः अन्तकोसि मृत्युरसि ॥२॥
तं त्वा स्वप्न तथा संविद्मसनः स्वप्नपप्न्यात् पाहि।

हे स्वप्न हम तुम्हारे उत्पत्ति के कारण को जानते हैं। (देवजामीना पुत्रोसि) देव नाम इन्द्रियों का है उनके द्वारा

अनुभूत विषयों का वासनायें ही देव जामी है उनसे तुम जन्म लेते हो। जन्मान्तर के अनुभूत विषयों से ही स्वप्न दर्शन होता है। जैसा हि पहले वैशेषिक सूत्र के प्रमाणद्वारा बताया जा चुका है। यम का साधन अन्त करने वाले मृत्यु रूप हो। इन तीनों विशेषणों का अर्थ भी उक्त प्रसङ्गों में आ गया हैं। हे स्वप्न, ऐसे स्वरूप वालें तुम्हें हम जानते हैं। इसलिये दुःस्वप्न से हमारी रक्षा करो।

यथाकलां यथाशफं यथार्णा संनयन्ति।
एवादुः स्वाप्न्यं सर्व द्विषते संनयामसि॥३॥

जैसे चन्द्रमा की प्रथम कला अपनी शेष कलाओं की पूर्ति होने पर उन्हीं में मिल जाती है, जैसे खुर पशु के शरीर में मिल जाता है इसी तरह सभी दुःस्वप्नों को हम अपने शत्रुओं के ऊपर छोड़ते है अर्थात् उनसे मिला देते हैं। इन उक्त तीनों मन्त्रों में स्वप्न संक्षिप्त रूप से सारा तत्व आ गया है जिन्हें कि पहले प्रसङ्गों में बताया जा चुका है। इसी के अर्थ के अनुसार आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिष आदि शास्त्रों में विस्तार किया गया है।

तन्त्रशास्त्र और स्वप्नविचार

जब कोई साधक दीक्षा ग्रहण या प्रयोगानुष्ठान किसी कार्य सिद्धि के लिये करता है तब उसकी सिद्धि असिद्धि का ज्ञान स्वप्न मन्त्रों के अभ्यास द्वारा कराना तन्त्र ग्रन्थों में बताया गया

है। उस काल में जिन जिन स्वप्नों का स्वरूप एवं फल जैसा बताया होता-है, उसके विचार द्वारा सिद्धि का निर्णय किया जाता है। स्वप्न काल में सिद्ध या देवता के द्वारा प्राप्त मंत्रों को स्वयं सिद्ध माना जाता है। स्वप्नकाल में प्रसादाभिमुख देवता का वरदान भी प्राप्त होता है और वह सर्वथा सत्य होता है।

"स्वप्ने मूर्तिमयी देवी वरदां सोऽपिपश्यति।"

(भवानी सहस्त्रनाम)

मन्त्रपुरश्चरण काल में निर्दिष्ट संख्या में मन्त्र के अभ्यास से भी विलक्षण स्वप्न देखे जाते है। उनसे अनेक भावों की अभिव्यक्ति होती है। महर्षि पतञ्जलि ने "स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः।" (यो० २-४४)

इस सूत्र में बताया है कि जपशील साधक को इष्ट देवता का दर्शन एवं ऋषिमुनि सिद्धों के दर्शन तथा सहायता प्राप्त होती है। मन्त्र जप में विनियोगन्यास ध्यानादि द्वारा मन्त्रार्थ व्यक्त होता है, ध्यान में जो स्वरूप देवता का होता है, जप के द्वारा उसका साक्षात्कार होता है और प्रथम साक्षात्कार स्वप्नकाल में ही होता है। स्वप्न के सारे दृश्य कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से ही होते हैं और उनका आभास स्वप्न में ही होता है। अतः तन्त्रशास्त्र में भी इसका उपयोग तथा विचार किया गया है। स्वप्न अनेक रंग बिरंगे भी होते हैं। पंचतत्वों के वर्ण क्रम से ही स्वप्नों के रंग दीखते है। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और प्रथ्वी ईन पांचों तत्वों का स्वरूप कृष्ण, हरा, लाल, सफेद

और पीला क्रमशः बताये गये हैं। जिनमें हरा, श्वेत और पीला क्रमशः शुभ है। शेष दोनों रंग अशुभ हैं। तत्वों के मिश्रण से मिश्रित फल होते हैं और उनके शुभाशुभ दोनों ही फल होते हैं।

स्वप्न विद्या मन्त्र

शक्ति संगम तन्त्र सुन्दरी खण्ड तृतीय पटल में श्री देवी ने श्री शिव से पूछा कि आपने स्वप्न मन्त्रों का विषय बताने को पूर्व में कहा था। यदि आप इस विषय में हमारा अधिकार समझते हैं तो कृपया उसे प्रकट करें। श्री शिव मन्त्रों के अनेक भेद बताने के बाद स्वप्न मन्त्रों के भेद और कार्य को इस प्रकार बताया गया है। स्वप्न में प्राप्त स्त्री, गुरु द्वारा लब्ध और माला मन्त्र होते है। प्रत्यक्ष जिनका प्रत्यय हो, उन्हें सिद्ध मन्त्र कहते हैं।

स्वप्न मन्त्र तीन चक्रों में विभक्त है। विराट् चक्र, ताण्डव चक्र और त्रिपुरा चक्र, जिन मन्त्रों में "नम:" पद हो उन्हें विराट् चक्र में जानना चाहिए, अंजन सिद्धि गुटिका, गुप्ति, आज्ञा सिद्धि को वे प्रदान करते हैं। ताण्डव चक्र के मन्त्र "हूं फट्" आदि पदों से युक्त होते हैं। खड्ग, वेताल सिद्धि, परकाय प्रवेश, चराचर में गति, अणिमादि सिद्धियां उनसे प्राप्त होती हैं। त्रिपुरा चक्र में मन्त्र "स्वाहा" पदान्त होते है। उनसे सर्व मनोरथ सिद्धि, क्लेश का अभाव और षष्टि सिद्धीश्वर साधक होता है। स्वप्न लब्ध मन्त्रों में ऋषि छन्दादि का विनियोग न होने से जप मात्र से ही सिद्धि होती है या शिव ऋषि गायत्री छन्द चिद्रूपिणी देवता ऐसा

विनियोग कर लेना चाहिए। कीलकादि इसमें नहीं होता, स्वप्न मार्ग से सिद्ध होने से इन्हें स्वप्न मन्त्र कहते हैं। स्वप्नलब्ध मन्त्र यदि ऋणी हो तो उसे जपना चाहिए तथा शिष्यों का बताना चाहिए। धनी मन्त्र से सिद्धि असाध्य है। स्वप्न मन्त्रों का पुरश्चरण करने से जात मृत ये दोनों सूतक निवृत होते हैं। पुरश्चरण की पंचाग आदि क्रियाओं को भी करना चाहिए। यदि अरिमन्त्र स्वप्न में प्राप्त हो तो उन्हें छोड़ देना चाहिए। या "हूं फट्" आदि पल्लव लगाकर उसे जपना चाहिए। स्वप्न मन्त्रों की गुरु परम्परा दक्षिणामूर्ति की है। इसलिये गुरु रूप से उन्हें पूजना चाहिए। कई स्वप्न मन्त्रों में औषधि, पुष्पादि का भी उपयोग होता है, पुष्पादि का भी उपयोग होता है, जिन्हें औषधि तन्त्रों से जानना चाहिए। मणिभद्र, यक्ष, त्रिजटगणेश, रक्त चामुण्डा के स्वप्नमन्त्र इसी प्रकार से सिद्धिप्रद हैं। स्वप्नाध्याय के शुभाशुभ स्वप्नों का स्वरूप और तान्त्रिक स्वप्नों का स्वरूप एक सा ही है। उसी से इस विषय का भी निर्णय करना चाहिए। पुरश्चयार्णव, तारा भक्ति, सुधार्णव, मन्त्रयोग संहिता में स्वप्नों का विषय दिया हुआ है।, उसे जान लेना चाहिए।

उपसंहार

स्वप्नविज्ञान का यह संक्षिप्त रूप बताया गया है। इसमें बहुत सी और भी बातों का विचार अवशिष्ट है। इस विषय के विशेषज्ञ विद्वानों को इधर ध्यान देना चाहिए, जिसमें इस तत्व का विषद् बोध पाठकों को हो सके।

॥ ॐ शम्॥

१२. समयाचार

सं० टिप्पणी :- (समय मत की शाक्तों के बीच प्राय: चर्चा होती रहती है परन्तु वह क्या है, इसकी मीमांसा यथाविधि करने में बहुत कम लोग समर्थ होते है। या यह कहें कि जिज्ञासुओं का परितोष चर्चा करने वाले नहीं कर पाते। इसीसे श्रीमान् स्वामी जी से प्रार्थना की गई और आपने कृपा पूर्वक इस लेख में समय मत का पूर्णरूप से विवेचन किया है। आपका यह लेख अपने विषय का सर्वप्रथम तो है ही विशेष रूप से ज्ञातव्य भी है। हमें विश्वास है कि इस महत्वपूर्ण लेख को पढ़कर जिज्ञासुओं का समाधान ही नहीं होगा किन्तु उनका परितोष भी होगा। सम्पादक- "चण्डी")

'समय' शब्द अनेकार्थ का वाचक है। शाक्त साधना में प्रसिद्ध आचार- विशेष को ललिता सहस्रनाम के भाष्य में श्री भास्कर राय ने "समयाचार तत्परा" इस नाम की व्याख्या में इस प्रकार बताया है - दहराकाश में चक्र की भावना कर पूजादि को समय कहते है। उसके प्रतिपादक वशिष्ठ, शुक, सनक, सनन्दन और सनत्कुमार संहिता नाम वाले पंचतन्त्र ग्रन्थों को भी 'समय' कहते हैं। उनमें कहे हुये आचार को 'समयाचार' कहते हैं अथवा साम्य को प्राप्त जो हो उसे भी 'समय' कहते हैं। शिवशक्ति के साम्य-भाव को भी 'समय' कहते हैं। इस प्रकार 'समय' शिव एवं 'समया' श्री भगवती को कहते हैं। शिवशक्ति का यह परस्पर का साम्य पांच प्रकार का है- १) अधिष्ठान साम्य, २) अनुष्ठान साम्य, ३) अवस्थान साम्य, ४) नाम साम्य और ५) रूप साम्य।

अधिष्ठान साम्य पूजाधिकरण चक्रादि, अनुष्ठान साम्य सृष्ट्यादिकृत, अवस्था साम्य नृत्यादि क्रिया, नाम साम्य भैरवादि रूप साम्य आरुण्यादि के नाम से प्रसिद्ध है। रुद्रयामल तन्त्र के दश पटलों में उपदिष्ट आचार को भी "समयाचार" कहते हैं। षड्विधि, ऐक्यानुसन्धान रूप महावेध संस्कार में भी सहस्रदल कमल में गई हुई शक्ति के पुनः आधार कमल में आने तक के प्रतीक्षा काल को भी "समयाचार" कहते हैं। (ल०श्लो० ८८) ललिता त्रिशती में "सनकादिमुनि ध्येया" इस नाम से भी 'समयाचार' का ग्रहण है, "कुलकुण्डालया-कौल मार्ग तत्पर सेविता" (ल०श्लो० १४४) के भाष्य में इस प्रकार कहा गया है- अथवा समयमत, कौलमत और मिश्रमत- ये तीन मत श्री विद्या की उपासना में माने जाते है, शुक वशिष्ठादि संहिता पंचक में कहा हुआ वैदिक मार्ग युक्त आचार समय मत कहा जाता है। चन्द्रकुलादि आठ तन्त्रों में प्रतिपादित मिश्र मत है, क्योंकि ये तन्त्र कुल और समय दोनों मतों का अनुसरण करते हैं। इनसे भिन्न कौलमार्ग हैं जिसका उपदेश कुलमार्ग-प्रतिपादित तन्त्र ग्रन्थों में श्री भगवान शिव ने श्री देवी को किया है। समयाचार नाम का एक तन्त्र-ग्रन्थ भी उपलब्ध है। उसमें पूजा संकेत को भी समय कहा है। विजयादि द्रव्यों के ग्रहण को भी समय पद से कहा गया है। इस प्रकार 'समय' शब्द अनेकार्थवाची है। यहां पर पंच संहितोक्त समयाचार ही अभिप्रेत है। कौलाचार सम्बन्धी लेख तो 'चण्डी' में साधकगण अधिकतर लिखा करते हैं, परन्तु समयाचार के विषय में कदाचित् अभी तक

नहीं लिखा गया। इसलिये श्री पं० रमादत्त जी शुक्ल भूतपूर्व सम्पादक 'चण्डी' के विचारानुसार 'चण्डी' में समयाचार पर भी कुछ लिखा जाना चाहिये। ऐसा उन्होंने मुझे लिखा है। एतदर्थ उपलब्ध कुछ सामग्री के आधार पर ही यहाँ लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

समयाचार के आधारभूत पंच शुभागम इस समय उपलब्ध नहीं है। सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरी टीका में इस विषय के जो प्रमाण उपलब्ध है; उन्हीं के आधार पर यह लेख लिखा जा रहा है। वेदान्त सूत्रों के शक्ति भाष्य के प्रथमाध्याय में समयमत का भी प्रतिपादन किया गया है। उसमें भी प्रमाण वही दिये गये हैं, जो सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरी टीका में है। श्री पुराण संहिता में सनत्कुमार संहिता का भी एक प्रकरण दिया गया है तथापि उक्त आगम से यह भिन्न ही है। आचार्य श्री गौडपाद स्वामी के ग्रन्थ सुभगोदय को लक्ष्य कर आचार्य श्री शंकर भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी की रचना की है। इसलिये इस विषय (समयाचार) का प्रमाणिक आधार इस समय सौन्दर्यलहरी की टीका लक्ष्मीधरी ही है।

विषय निर्देश :

सौन्दर्यलहरी के आठवें श्लोक की टीका में श्री लक्ष्मीधर ने समय-मत का निर्देश इस प्रकार किया है- 'समय मत के पारदृश्वा भगवान शंकराचार्य समय रूपा भगवती की स्तुति करते हैं। समयाचार अन्तर पूजा को कहते है। और कौलाचार बाह्य पूजा का नाम है।

श्री चक्रपूजा के द्वारा ये दोनों पूजायें होती है वियत पूजा भी इसे कहते हैं। दहराकाश एवं बाह्याकाश में ये अनुष्ठित होती है। बाह्याकाश का अर्थ भोजपत्र शुद्धपट्ट, स्वर्णपट्ट रजतस्फटिकादि पर यन्त्र अंकित कर आराधन करने का है। इसे ही कौल पूजा कहते हैं। हृदयाकाश में चक्रपूजा का नाम समय पूजा है। यह समयपूजा हृदयाकाश एवं सहस्त्रदल में भी होती है तथा भिन्न-भिन्न कामनाप्रयुक्त साधक अन्य चक्रों में भी पूजन करते हैं। हृदय कमल में समाराधित भगवती सभी ऐहिक फलों को प्रदान करती हैं तथा वशिनी आदि योगिनियों के साथ पूजने से विद्या की प्राप्ति होती है। हृदयकमल में ही ऐहिक फलों की प्राप्ति के लिये होम, तर्पण भी करना चाहिये इत्यादि समयाचार के साधकों के लिये ऐहिक और पारलौकिक फल साधना के लिये आन्तरिक पूजा ही कर्तव्य है। कौलमत में आधार में चक्र में त्रिकोण मध्यवर्ती बिन्दु में शक्ति की पूजा होती है। कौल-साधक नित्य बिन्दु त्रिकोण की ही पूजा करते हैं। यह पूजा दो प्रकार की है। पहली श्री चक्र के अन्तर्गत नवयोनि के बीच में योनिरूपा तथा प्रत्यक्ष सुन्दरी शक्ति की योनि पूजा का रूप दूसरा प्रकार है। पहली पूजा स्वर्णस्फटिक आदि पट्टपर श्री यन्त्र अंकित-कर करते हैं। वे पूर्व कौल तथा दूसरे उत्तर कौल के नाम से कहे जाते है। ये दोनों योनि पूजन बाह्य हैं, आन्तरिक नहीं इसलिये कौलों के पूजन को बाह्य पूजन ही कहते हैं। मिश्र कौल पूजन बाह्य आन्तरिक

दोनों ही होता है। आधार चक्र में स्थित कुल कुण्डलिनी का पूजन करने से इन्हें कौल एवं भगवती को कौलिनी कहते हैं। प्रत्यक्ष मपञ्चक इस पूजन में लगते हैं। समय मत में मानसिक मपञ्चक लगते हैं, जिन्हें इस प्रकार बताया गया है- सहस्त्रार से निकली हुई सुधा का पान मद्य, काम-क्रोधादि पशुओं को ज्ञान खड्ग से मार कर उनका मांस, भक्षण ही मांस है, इन्द्रिय - निरोध मत्स्य आशा-तृष्णादि की मुद्रा; मन का सुषुम्ना के साथ योग ही मिथुनी भाव है। सव्य मार्ग में मपञ्चक मनन, मन्त्र, मौन, मन और मुद्रा के नाम से माने जाते हैं। सव्यमार्गी अनुकल्प से भी पूजा करते हैं। शक्ति पूजा में मपञ्चक स्वीकार आवश्यक है क्योंकि ब्रह्मानन्द की व्यक्ति इनसे ही होती है; कल्पसूत्र में कहा है-- 'आनन्दं ब्रह्मणोरूपं तच्च देहे व्यवस्थितं तस्याभिव्यञ्जका: पंचमकारास्तैरर्चनं गुप्त्या प्राकट्यान्निरय:।' (प०स० १३)आनन्द के अभिव्यंजक पञ्चमकारों का प्रयोग गुप्त रीति से होना चाहिये, प्रकट करने से नरक की प्राप्ति होती है। प्रकट मपञ्चक प्रयोग को समय मतवाले तथा वैष्णवादि सर्वथा हेय मानते हैं एवं अवैदिकाचार बताते हैं तथापि यह बात ऐसी नहीं है। 'परिश्रुतं झषमाद्यं पलं च' इत्यादि त्रिपुरामहोपनिषद् की १२ वीं ऋचा में स्पष्टतया ग्रहण किया गया है। लक्ष्मीधर ने मपञ्चक की बड़ी कड़ी आलोचना की है। सव्य मत वाले वैष्णवों , समयाचारियों तथा कौलों का विरोध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैदिक काल में भी इसका प्रमाण मिलता है।

ऋग्वेद में कहा है- 'न यातव इन्द्र जुजुवुर्नो न वन्दनाः शविष्ठवेद्याभिः। सशर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्भा शिश्नदेवा अपि गु ऋतं नः' (ऋ० सं० ५-३-३-५) अर्थात् हे इन्द्र! राक्षस हमारी हिंसा तथा हमारी प्रजा को हमसे पृथक न करें। विषम प्राणियों को शासन में रखने वाले आप (इन्द्र) उत्साह करें। 'शिश्नदेवाः' योनिपूजक अब्रह्मचर्यव्रत वाले हमारे यज्ञों में न आवें। इस मंत्र में 'शिश्नदेवाः' पद उत्तर कौलों के लिये ही व्यवहृत हुआ है। शिश्नपद सामान्यतः पुरूष चिन्ह के लिये ही व्यवहृत होता है तथापि श्री मुकुन्द शर्मा बक्शी की निरुक्त, निवृत्ति में स्त्री-पुरुष चिन्हों के लिये इसे एकता ही माना गया है। विदेशी वैदिक पण्डितों ने इस शिश्नदेवा शब्द के अर्थ में बहुत ही गड़बड़ी कर दी है, तथापि यास्काचार्य ने शिश्नदेवा अब्रह्मचर्याः ऐसी व्याख्या कर स्पष्ट कर दिया है। 'शिश्नदेवा सस्त्रीक पूजन करने वाले ही थे, जिन्हें दूसरे पक्ष वाले अपने यज्ञों एवं उत्सवों में आना अच्छा नहीं मानते थे।' यही विरोध पौराणिक काल में शिव के विरुद्ध यज्ञ कर दक्ष प्रजापति ने बहुत ही भयानक रूप में परिणत कर दिया। प्रत्यक्ष मपञ्चक-ग्रहण को लक्ष्य कर ही इस आचार में दोषारोपण करने का अवसर मिला है, तथापि यह आचार अवैध नहीं है, इसे अवैध मानने से बहुत से विधि वाक्यों का परित्याग करना होगा और ऐसा होना अनिष्ट है। बहुत से वैदिक यज्ञों में इस प्रकार के आचारों का उल्लेख है। ब्राह्मण सूत्र ग्रन्थ एवं पूर्व मीमांसा तथा उपनिषदों में भी इसकी वैधता स्वीकृत है,

केवल इन्द्रिय लौल्यवश साधना के बहाने जो मपञ्चक का सेवन हैं, वह अवश्य ही निन्दनीय हैं।

श्री चक्रराज

श्री विद्योपासना में श्री चक्र का अर्चन एक बंहुत ही महत्व का विषय है। मन्त्र देवता की आत्मा एवं यन्त्र को देवता का शरीर माना जाता है। इसके लिखने की रीति निम्न स्तोत्र पद्य में इस प्रकार बताई गई है-

'बिन्दु त्रिकोण वसुकोणदशारयुग्मं मन्त्रस्त्रनागदलशोभित षोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्री चक्रमेतदुदितं पर देवतायाः॥

अर्थात् बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दश दल, अष्ट दल, षोडश दल, वृत्तत्रय, चतुर्द्वारयुक्त भूपूर-यही नवावरण युक्त श्री चक्र का स्वरूप है। श्री चक्र का लेखन कई प्रकार से होता है। यह एक अति गहन विषय है। यहां पर संक्षेप में समय एवं कौल मत की लेखन रीति तथा पूजन-क्रम का ही निर्देश किया जायगा। सृष्टिक्रम की पूजा समय मत की है तथा संहार-क्रम कौलों का है। बिन्दु में पर देवता के पूजन के बाद त्रिकोण, अष्टकोण, दोनों दशार, चतुर्दश दल, अष्ट दल, षोडश दल तथा भूपुर के क्रम से पूजन को समय पूजन कहते है। बिन्दु त्रिकोण के पूजन के बाद त्रैलोक्य-मोहन चक्र, भूपुर-, षोडश दल, अष्ट दल, चतुर्दश दल, दोनों दशार, अष्टकोण, त्रिकोण पश्चात् बिन्दु के पूजन का संहार क्रम का पूजन कहते हैं। यह कौलाचारी साधकों को

अभिमत है। बिन्दु से आरंभ कर बाह्य विस्तार की ओर समय एवं बाहर से अन्दर बिन्दु की ओर का पूजन संहार कहलाता है। शिव के चार त्रिकोण और पांच शक्ति के त्रिकोणों के मिलने पर नव प्रकृतिभूत इन त्रिकोणों से तेंतालिस कोणों वाला तथा अष्ट दल, षोडश दल, वृत्तत्रय एवं भूपुर के साथ श्री चक्र बनता है, जो बिन्दु त्रिकोणादि श्लोक से स्पष्ट है यहां केवल यही समझ लेना है कि समय मत में शक्ति के पांचों त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं और शिव के त्रिकोण अधोमुख लिखे जाते है कौलमत में इससे विपरीत है। शक्ति के पांचों त्रिकोण अधोमुख एवं शिव के चारों त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं, इन त्रिकोणों के मिलने पर नवचक्रात्मक शिव एवं शिवा का शरीरीभूत श्री चक्र बनता है। त्रिकोण, अष्टकोण, दोनों दशार तथा चतुर्दशार शक्ति चक्र कहे जाते हैं। बिन्दु, अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म, चतुरस्र-ये क्रम से शिव चक्र कहे जाते हैं। त्रिकोण में बिन्दु, अष्टार में अष्टदल, दशार में षोडशार और भूपुर में चतुर्दशदल का सम्बन्ध है। जो शैव और शाक्त चक्रों के इस प्रकार के परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध को जानता है, वही यथार्थ चक्रविद है।

१) प्रथम बिन्दुचक्र सर्वानन्दमय २) सर्वसिद्धिप्रद ३) सर्वरक्षा कर ४) सर्व रोगहर ५) सर्वार्थ साधक ६) सर्व सौभाग्यदायक ७) सर्व संक्षोभण ८) सर्वाशापरिपूरक ९) त्रैलोक्यमोहन नाम से व्यवहृत होते हैं।

१) बिन्दु में परादेवता की पूजा।

२) त्रिकोण में पीठ त्रय कामरूप पूर्ण गिरि जालन्धर तथा बीच में ओड्याण का ग्रहण है। त्रिकोण की अधिष्ठात्री देवी कामेश्वरी वज्रेश्वरी और भगमालिनी हैं। इसी से सम्बन्धित दिव्यौघ, सिध्दौघ मानवौघ गुरुओं का पूजन भी है।

३) अष्ट त्रिकोणों की अधिष्ठात्रीं वशिनी, कामेश्वरी, मोहिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी तथा कौलिनी हैं। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, इच्छा-सत्य रजः, तमोगुण की क्रम से ये सब स्वामिनी हैं। गुणातीत, गुणाधिपत्य इनकी साधना से प्राप्त होता है।

४) इस चक्र में सर्वज्ञा, सर्वशक्तिप्रदः सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्व व्याधिनाशिनी, सर्वधारा, सर्व पापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षा तथा सर्वेप्सितफलप्रदा शक्तियां है। रेचक, पाचक, शोषक, दाहक, प्लावक, क्षारक, उद्धारक, क्षोभक, जृम्भक तथा मोहक अग्नि की इन दश कलाओं की ये अधिष्ठात्री हैं।

५) इस चक्र की शक्तियों के नाम सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत् प्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमङ्गल कारिणी, सर्वकाम प्रदा सर्व दुःख विमोचिनी, सर्व मृत्यु प्रशमनी, सर्व विघ्न निवारिणी, सर्वाङ्ग सुन्दरी तथा सौभाग्यदायिनी है। दश प्राणों की ये अधि ष्ठात्री है।

६) इस चक्र में चौदह नाड़ियों की शक्तियों का पूजन होता है। नाड़ियों के नाम अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरी, हस्तिजिह्वा,

वासणा-यशोवती, पयस्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना हैं। क्रम से सर्व संक्षोभिणी, सर्व विद्रावणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाल्हादिनी, सर्व सम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्व जृम्भिनी, सर्व वशंकरी, सर्व रञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्ध साधिनी, सर्व संपत्तिपूरणी, सर्व मन्त्रमयी तथा सर्व द्वन्द क्षयंकरी योगिनियां हैं।

७) इस चक्र में वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हान, उपादान तथा उपेक्षा बुद्धि के द्योतक हैं। इनकी आठ शक्तियं के नाम अनङ्ग कुसुमा, अनङ्ग मेखला अनङ्ग मदना अनङ्गमदनातुरा, अँनङ्ग रेखा अनङ्ग वेगिनी, अनङ्ग मदनांकुश तथा अनङ्गमालिनी हैं।

८) इस चक्र में षोडश दल पद्म हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृतिनाम-वार्धक्य, सूक्ष्म शरीर, जीवन तथा स्थूल शरीर से सम्बन्धित हैं। इनकी षोडश शक्तियां है- कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहंकारार्षिणी, शब्दाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, अमृताकर्षिणी तथा शरीराकर्षिणी।

९) इसे भूपुर कहते है। इसमें तीन रेखायें हैं। चौकोन इसका स्वरूप हैं। इसमें दश मुद्रा शक्तियां, दश दिक्पाल, आठ मातृकायें, दश सिद्धियां है। जिनके नाम क्रमशः ये हैं-सर्व संक्षोभिणी, सर्व विद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्व वंशकरी,

सर्वोन्मादिनी, सर्व महांकुश, खेचरी, सर्वबीजा, सर्व योनि, सर्व त्रिखण्डा-ये दश मुद्रायें हैं। इन्हें प्रकट योगिनी भी कहते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु सोम, ईशान, अनन्त और ब्रह्मा - ये दश दिक्पाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी - ये अष्ट मातृकायें हैं। लधिका, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति और सर्व काम -- ये अष्ट सिद्धियां कहलाती हैं। इनके पूजन से काम - क्रोधादि का अभाव तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। क्रम से श्री भगवती महात्रिपुरा सुन्दरी ही जो बिन्दु - त्रिकोण -चक्रेश्वरी है, इन नवों चक्रों के देवताओं के साथ तादात्म्य प्राप्त कर भिन्न - भिन्न चक्रों की अधीश्वरी के नाम से कही जाती है। इनके नाम समय पूजा क्रम से इस प्रकार हैं - १) महात्रिपुर सुन्दरी २) त्रिपुराम्बा ३) त्रिपुरसिद्धा ४) त्रिपुर मालिनी ५) त्रिपुरा श्री ६) त्रिपुरवासिनी ७) त्रिपुर सुन्दरी ८) त्रिपुरेशी ९) त्रिपुरा। श्री चक्र के तीन प्रस्तार हैं- मेरु प्रस्तार, कैलाश प्रस्तार और भू प्रस्तार। षोडश नित्याओं के साथ श्री भगवती के तादात्म्य को मेरु और मातृका वर्णो के साथ तादात्म्य को कैलास एवं वशिनी आदि वाग्देवताओं के साथ तादात्म्य को भू प्रस्तार कहते हैं। अति संक्षेप में यह चक्रराज का परिचय है। चक्रोक्त देवताओं के मन्त्र आदि-तन्त्रराज, दक्षिणामूर्ति संहिता, श्री विद्यार्चन पद्धति आदि श्री विद्या के ग्रन्थों में दिये गये हैं। यहां तो केवल समयाचार के प्रसङ्ग में श्री चक्र का स्वरूप मात्र निर्दिष्ट किया गया है और इसीलिये श्री चक्र की चर्चा भी की गई है।

समय साधन-क्रम

परम तत्व स्वरूपिणी श्री भगवती का आराधन समयाचार के अनुसार मस्तक में स्थित सहस्त्र दल कमल में जो बिन्दु स्थान है उसमें होता है। उसे पूर्ण चन्द्र मण्डल व सुधा-सिन्धु के नाम से भी योगियों ने कहा है। उसी में श्री चक्र का न्यास का उक्त पूजा की जाती है। उसकी कला चिन्मयी आनन्द रूप आत्म स्वरूपिणी है। उसे ही महात्रिपुरा सुन्दरी कहते हैं। उसकी षोडश कलायें है। इसीलिये उसे षोडशी भी कहते हैं। १५ कलायें तिथि रूप है जो तिथि क्रम से घटती बढ़ती रहती हैं। षोडशी कला सच्चिदानन्द रूपिणी एक रस नित्य हैं। कहा है-

''दर्शाद्याः पूर्णिमान्ता च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी॥''

मातृका के षोडश स्वरों के साथ क्रम से प्रत्येक कला का योग कर ध्यान, चिन्तन, पूजन किया जाता है। प्रत्येक तिथि के साथ इनका पूजन इस प्रकार किया जाता है -- प्रतिपदा को त्रिपुर सुन्दरी, द्वितीया को कामेश्वरी, तृतीया को भगमालिनी, चतुर्थी को नित्यक्लिन्ना, पञ्चमी को भेरूण्डा, षष्ठी को वह्निवासिनी, सप्तमी को वज्रेश्वरी, अष्टमी को रौद्री, नवमी का त्वरिता, दशमी को कुल सुन्दरी, एकादशी को नील-पताका, द्वादशी को विजया, त्रयोदशी को सर्वमङ्गला, चतुर्दशी को ज्वालामालिनी, पञ्चदशी को मालिनी। कृष्ण पक्ष में प्रतिलोम

क्रम से पूजन होता है। उक्त क्रम शुक्ल पक्ष का है। षोडशवें स्वर 'अः' के साथ नित्य षोडशी कला रूप मूल विद्या का सभी तिथियों में पूजन किया जाता है। कौल मत में प्रतिदिन एक ही नित्या की पूजा की जाती है। समय मत में सभी का पूजन नित्यप्रति किया जाता है। इन नित्याओं का विशुद्धि चक्र स्थान है। वही पंचदश स्वरों का न्यास किया जाता है। सोलहवां "अः" स्वर सहस्त्र में बिन्दु स्थान में है। तथापि उसका प्रतिबिम्ब विशुद्धि चक्र में होने से कण्ठ में षोडश स्वरों का न्यास माना जाता है। अनाहत में ककार से लेकर ठकार पर्यन्त वर्णो का न्यास द्वादश सूर्य रूप से है। मणिपूर में डकार से आरम्भ कर फकार पर्यन्त आग्नेय वर्ण माने जाते है। स्वाधिष्ठान में बकार से लेकर लकार पर्यन्त है। उन्हें मिश्र कहते हैं। 'व श ष स' ये वर्ण मूलाधार में है।

इसे अन्ध तामिस्त्र कहते है। प्रकाश शून्य होने से यह तमिस्त्रलोक है। उक्त विषय को इस प्रकार कहा गया है--

'षोडशेन्दोः कलाभानोर्द्विर्द्वादशदशानले।
पञ्चाशदात्मिका ज्ञेया मातृका चक्ररूपिणी।'

पञ्चाशत् मातृका स्वरूप मन्त्र, देवता श्री चक्र में इस प्रकार संगत होता है--

'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोम सूर्यानलात्मकः।'

जिस प्रकार मातृका चन्द्र, सूर्य, अग्निरूपात्मक तीन खण्डों में विभक्त है, उसी प्रकार श्री विद्या का मन्त्र पञ्चदशी कादि,.हादि, सादि त्रिकूट स्वरूप वाला भी त्रिरूप

में विभक्त है। कादिकूट अग्निस्वरूप, हादिसूर्यरूप एवं सादि चन्द्रस्वरूप है। इन्हीं त्रिकूटों में रुद्र, विष्णु और ब्रह्म ग्रन्थियां भी क्रम से मानी जाती है। अग्नि की १०८ कलायें सूर्य की ११३ और चन्द्र की १३६ कलायें है। कुल १६० कलायें संवत्सररूप हैं। यहीं कलायें अपने अपने अधिकृत षट्चक्रों को आवृत् किये हुऐ है। श्री चक्र का समन्वय षट्चक्रों में इस प्रकार माना जाता है- सहस्त्रदल कमल प्रकाशमय नित्याकला युक्त चन्द्र बिम्ब ही श्री चक्र है सादाख्या कला श्री सदाशिव के साथ ध्येय हैं। वहीं बिन्दु है। त्रिकोण आध ार चक्र में, अष्ट कोण स्वाधिष्ठान में, दशार मणिपूर में, द्वितीय दशार अनाहत में, चतुर्दशार विशुद्धि में, शिवचक्र, चतुष्टय आज्ञा में, बिन्दु स्थान चतुरस्त्र सहस्त्र कमल में अन्तर्भूत है। इस प्रकार षट्चक्र का श्री चक्र के साथ एक्य है। मन्त्र और श्री चक्र की एकता इस प्रकार है-- तीनों "ह्वी" तथा षोडशी का 'श्री' बीज शिव चक्र चतुष्टयात्मक त्रिकोण में बिन्दु रूप से अन्तर्भूत है। प्रथम कूट के आदिम ककार और सादि कूट के अन्तिम लकार से कलारूप सभी मातृका वर्णों का ग्रहण है। जिसे अक्षमाला कहते है, जो आकार से आरम्भ होकर क्षकार पर्यन्त है। 'य र ल व श ष स ह' - ये आठों वर्ग अष्टकोण रूप हैं। कवर्गादि पांचों वर्गो के क्रमशः चारों वर्ग बीस होते है। वे दोनों दशार हैं। पांच वर्ण अनुस्वाररूप होने से बिन्दु के अन्तर्गत है। चौदहों स्वर चतुर्दशार में अनुस्वार एवं विसर्ग बिन्दु के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार चक्र एवं मन्त्र की एकता है। इस ऐक्य चिन्तन से अविद्या की निवृत्ति होती है और शुक्ल धर्म की वृद्धि होती

है। अद्वैत ब्रह्म निष्ठा इसका अन्तिम फल है। वरिवस्या रहस्य में श्री भास्कर राय ने मन्त्र के पन्द्रह अर्थ किये हैं। योगिनी हृदय नित्या षोडशिकार्णव में भी यह विषय आया है। पञ्चदश नित्या, पञ्चदशाक्षरी विद्या, पञ्चदशतिथि इस प्रकार से ऐक्य को प्राप्त हैं। तिथियां भी अग्नि, सूर्य, चन्द्र के क्रम से त्रिधा विभक्त हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं -- दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना। ये पांचों आग्नेय खण्ड में हैं। आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सुवृत्त और इराये सौरखण्ड में हैं। आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी-ये चन्द्र खण्ड में हैं। तिथियों के ये नाम वैदिक हैं।

सनत्कुमार संहिता में साधन-विधि का स्वरूप इस प्रकार बताया है सूर्य चन्द्र में ही देवयान और पितृयान मार्ग स्थित हैं। इड़ा, पिंगला नाड़ी मार्ग से अहोरात्र का संचार हो रहा है। वामनाड़ी में चन्द्रबहात्तर सहस्र नाड़ी मार्ग को अमृत से सिञ्चन करता है। सूर्य दक्षिण मार्ग से सञ्चार करता हुआ चन्द्र द्वारा सिञ्चत अमृत बिन्दु को सुखा देता है। जब आधार चक्र में सूर्य-चन्द्र का समावेश होता है, तब अमावस्या तिथि होती है। इसी से कृष्ण पक्ष की तिथियाँ उत्पन्न होती हैं। इसीलिये कुण्डलिनी शक्ति सूर्य किरण के सम्पर्क से चन्द्रमण्डल से स्रवित अमृत बिन्दु से पूरित आधाार कुण्ड में सोती है। कुण्डलिनी की निद्रावस्था ही कृष्ण पक्ष है। योगी जब समाहित होकर चन्द्र सूर्य का निरोध करने में समर्थ होता है तब चन्द्र सूर्य अपने-अपने कार्य में असमर्थ हो जाते है। अमृत कुण्ड में सुप्त कुण्डलिनी निराहार होने से जागती है और साँप की तरह फूत्कार करती हुयी तीनों ग्रन्थियों का भेदन कर सहस्रदल

कमल-मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को डँस लेती है और वहां से निकली हुई अमृत-धारा द्वारा आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित चन्द्र मण्डल को आप्लावित कर देती है और उससे क्षरित चन्द्रामृत से सारे शरीर को आप्लावित कर देती है। सहस्रार चन्द्रमण्डल से आज्ञाचक्र-स्थित चन्द्र भिन्न है। आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्र की कला पञ्चदश नित्यायें है। ये कलायें आज्ञाचक्र के नीचे विशुद्धि में परिवर्तित होती हैं। सहस्रदल कमल मध्य में चन्द्रमण्डल ही चित्कलायुक्त बिन्दु स्थान है। इसलिये योगियों को कृष्णपक्ष का त्याग कर शुक्ल पक्ष में ही कुण्डलिनी-जागरण का प्रयत्न करना चाहिये। शुक्ल पक्ष की सभी तिथियां पूर्णमासी कही जाती हैं और कृष्णपक्ष की आमावस्या के अन्तर्गत होने से एक अमावस्या ही कृष्णपक्ष है। सूर्य चन्द्र की गति का निरोध मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध के अभ्यास से सम्पन्न होकर सुषुम्ना में होकर जब प्राण प्रवाहित होता है तभी षट्चक्रों का ज्ञान होता है। इन षट्चक्रों का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है। प्राण के साथ मन जब सुषुम्ना नाड़ी में जाता है तब उनके स्थान, रंग आदि का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। षण्मुखी मुद्रा से पञ्चतत्वों का प्रत्यक्ष होता है। इसे तन्त्रशास्त्र से योनि मुद्रा के नाम से कहा गया है। भूतशुद्धि क्रिया में तत्वों के प्रत्यक्ष ज्ञान की आवश्यकता होती है। आधार पद्म अन्धकारमय होने से ध्यान के योग्य नहीं है स्वाधिष्ठान मिश्र (प्रकाश अन्धकार-युक्त) होने से भी उपयुक्त नहीं है।

मणिपूर अनाहत पर्यन्त अन्धकार और प्रकाश दोंनों मिले हुए हैं। विशुद्धि चक्र चन्द्रलोक है। आज्ञा चक्र चन्द्रस्थान होने

से सुधालोक है। इन दोनों में सूर्य-किरण के सम्पर्क से ज्योत्स्ना नहीं है। बिन्दु चन्द्र, निरोधिका, नाद और नादान्त तुरीया अवस्था में ही समाधिनिष्ठ योगी अनुभव करने में समर्थ होता है। शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना, तुरीयातीत अवस्था में है। इनके ऊपर सहस्त्रार का बिन्दु स्थान है और वह सर्वदा ज्योत्स्नामय है। प्रकाशमय होने से समय मत में इसे ही ध्येय मानते हैं। शेष चक्रों का ध्यान नियत नहीं है। सहस्त्रकमल की पूजा का अर्थ बिन्दुचित्कला के साथ-साथ शिव-शक्ति सामरस्यरूप का अनुसन्धान है। बाह्य पूजन सर्वथा निषिद्ध हैं। इसलिये षोडशादि उपचार पूजा का तो अवकाश भी नहीं है। यह अनुसन्धान चार प्रकार का है। प्रथम आधारादि षट्चक्रों का त्रिकोण के साथ तादात्म्य बिन्दुस्थान चतुरस्त्र का सहस्त्रदल के साथ दूसरा तादात्म्य है इसे ही बिन्दु शिव का तादात्म्य कहा जाता है। शक्ति शिव का तादात्म्य तीसरा, मन्त्र और चक्र के तादात्म्य के साथ चिन्तन चौथा प्रकार है। इस समाराधन को महारहस्य कहते हैं। समय मत में सादाख्य तत्वरूप समय की पूजा सहस्त्रदल कमल में ही होती है। बाह्य पीठादि पूजा क्षुद्र फलवाली होने से त्याज्य है। जो समयतानुसारी योगीश्वर जीवनमुक्त आत्मैकनिष्ठ हैं, वे केवल सादाख्यतत्व के चिन्तन में ही संलग्न रहते हैं। इनसे भिन्न दूसरे प्रकार के योगी एकान्त गिरि-गुहा में चतुर्विध ऐक्य तथा षड्विध ऐक्य का अनुसन्धान करते रहते हैं। वे भी बाह्य पूजा एवं तत्सम्बन्धी क्रियाकलाप में रूचि नहीं रखते। यह इस मत का तात्विक रहस्य है। चन्द्रज्ञान विद्या में सूर्यमण्डल मध्य में श्री महात्रिपुरा सुन्दरी के पूजन का जो

विधान है, वे एकदेशी समयाचारी हैं। समयाचारी के लिये मन्त्र का पुरश्चरण, जप, बाह्यहोम, बाह्यपूजादि नहीं हैं। ये सारी क्रियायें हृदयकमल में ही अनुष्ठेय हैं।

कुण्डलिनि योग

महामहिमावती महाशक्ति सारे विश्व की लीला न्याय से रचना कर आधार पद्म में कुण्डलाकार सो रही हैं। उसके जागने पर ही प्राणी को यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये योगियों ने इसके विषय में बहुत ही सूक्ष्म विचार किया है। योग ग्रन्थों में एवं तन्त्र शास्त्रों में इस विषय के साधक के लिये बहुत ही आवश्यक रूप से निर्देश किया गया है। वामकेश्वर तन्त्रों में इसका अनुभूत सुन्दर प्रकार से बताया गया है।

जो यह है:

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता। शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा। मूलकन्दं फणाग्रेण दंष्ट्वा कमलकन्दवत्। मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्र समाश्रिता। पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुंच्य साधकः। वायुमूर्ध्वगति कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः। वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगती ज्वलन्। ज्वलनाघातपवनाघातैरून्निद्रितो हि राट्। रूद्रग्रन्थिं ततोभित्वा विष्णुग्रन्थि भिनत्ति यः। ब्राह्मग्रन्थि च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्। सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते। सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निवृत्तिकारणम् इति। अर्थात् कमलनाल की सूक्ष्म तन्तु की तरह भुजङ्गाकाररूपेण कुण्डलिनी नाम की शक्ति मूलाधार में रहती है।

मूलकन्द को अपने फणाग्र से आच्छादन कर साढ़े तीन फेरे में अपने को लपेटे हुए पुंछ को मुख से पकड़े हुए हैं। पद्मासन में स्थित होकर गुदा इन्द्रिय का ऊपर को आकुञ्चन करते हुए साधक वायु को ऊर्ध्व गतिवाला करता है। कुम्भकाविष्ट मनवाला होने से वायु के आघात से स्वाधिष्ठान में रहनेवाली अग्नि प्रज्वलित होती है। अग्रि के आघात से कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। इससे रूद्र, विष्णु और ब्रह्म ग्रन्थियों एवं षट्कमलों का भेद होता है तथा मूलाधार से चल कर सहस्रार में वह शक्ति शिव के साथ आनन्द करती है।

यह अवस्था योगी के लिये परमशक्ति देने वाली है। इस क्रिया के करने में असमर्थ साधकों के लिये मन्त्र जप, कुण्डलिनी स्रोत एवं कवच का पाठ, महाविद्या स्रोत का पाठ भी तन्त्रों में बताया गया है। इससे भी कुण्डलिनी जागरण होता है। सिद्ध सरस्वती स्रोत इसके लिये बहुत उपयोगी स्रोत है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि इन चक्रों में क्रम से पृथ्वी, जल अग्रि वायु और आकाशतत्व को, जो तन्मात्रा रूप में रहते हैं, जीतकर शक्ति आज्ञा चक्र में इन्द्रियों के साथ मन को वेधकर सहस्रार में शिव के साथ ऐक्य को प्राप्त करती है। यह आरोह क्रम कहा जाता है। सहस्रार में शिव का तादात्म्य प्राप्त करने के बाद आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान के क्रम से पुनः मूलाधार में आकर वह सो जाती है- 'स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि'। यह अवरोह क्रम कहलाता है। सामान्य क्रम कुण्डलिनी योग का यही है। योगीगण इसका अभ्यास इसी प्रकार करते हैं, परन्तु समय क्रम स्वाधिष्ठान

के नीचे मूलाधार पद्म-स्थिति कुण्डलिनी का अभ्यास नहीं किया जाता। इस मत में सहस्रार को ही मूलाधार माना गया है। यह श्रौतक्रम है। कहा है-

ऊर्ध्व मूलमवाक्शाख एष अश्वत्थः सनातनः।

इस कठ श्रुति में ऊर्ध्वमूल से सहस्रार ही लिया गया है- उर्ध्व मूलमधः शाखम् इत्यादि। गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भी यहीं लिया गया है। सहस्रार में भी कुण्डलिनी रहती हैं। इसे अकुलकुण्डलिनी कहते है--

'व्योमिनी विद्यमानस्य चिच्छक्तिमण्डलस्यासधोमुखसहस्रार कर्णिका रूपस्य मध्ये स्थितया अकुलकुण्डलिन्या संगम्य' अर्थात् परम व्योम में चित्कला युत्त शशिमण्डल के अधोमुख सस्रार की कर्णिका के बीच में स्थित अकुलकुण्डलिनी से कुलकुण्डलिनी की एकता कर इत्यादि वरिवस्या रहस्य श्लोक १०६ की व्याख्या में माना गया है। चिच्छक्ति-विशिष्ट ब्रह्म से पहले पहल, आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, इस क्रम से सृष्टि हुई। इसे श्रुति में इस प्रकार बताया गया है--

एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद् वायुः वायोरग्नि अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी।

समयाचार सृष्टिक्रम का साधन है। इस क्रम में आराधन सहस्रार से ही आरम्भ होता है। स्वाधिष्ठान के नीचे वाला मूलाधार तामिस्रलोकवाला होने से समयाचार में निषिद्ध है और उसका साधन संहार क्रम का है। समयाचार का वर्णन करते हुए

आचार्य भगवत्पाद ने सृष्टि क्रम को ही लिया है--

'मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्' सौ० ल० ३५। षट्चक्रों में जो तत्वक्रम है, उसे ही स्पष्ट रूप से लिया गया है, इस प्रकार षट्चक्रों को लक्ष्मीधर ने सुगम बताया है-'अवरोह क्रमेण कमलानि उक्तानि इति तत्र पूजा सुकरेति तदानु-गुण्येन भगवत्पादैरुक्तम् इति' श्लोक ४१ अर्थात अवरोह क्रम से कमलों को जो कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि वहां पूजा सुगम है। इसी के अनुसार भगवत्पाद ने यह वर्णन किया है इसलिए तत्वज्ञा चक्रस्थं इत्यादि श्लोक से लेकर तवाधारे मूले तक वर्णन से ही सम्बन्धित है। सौन्दर्यलहरी के शिख नख वर्णन का भी यही अभिप्राय है।

''सुधासिन्धोर्मध्ये'' श्लोक में सहस्रार का वर्णन लिया गया है। कौल साधकों का यह सिद्धान्त है कि संहारक्रम का साधन प्रत्यक्ष पञ्चमकार सेवन से ही सिद्ध होता है।

मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त कुण्डलिनी शक्ति का प्रवाह इसी से होता है। समयाचार विरक्तों का साधन है। अतः सृष्टि क्रम से ही उसकी सिद्धि होने से संहारक्रम विरक्तों को वर्जित है। सौन्दर्यलहरी में कौलसाधना के अनुसार बहुत सी बातें कही गई है। जैसे ९ वें, १० वें श्लोकों का कुण्डलिनी का आरोह-अवरोह क्रम कौल साधना का ही है। त्वया र्हत्वा वामं' इत्यादि श्लोक उत्तरकौल सिद्धान्त का बताने वाला है। नववें एवं दसवें में स्वाधिष्ठान के स्थान में मणिपूर के स्थान में स्वाधिष्ठान का जो व्यत्यय किया गया है। वह भी सृष्टिक्रम का ही है- ऐसा लक्ष्मीधर का अभिप्राय है, क्योंकि 'वाय्वाघात वशादग्निः' स्वाधिष्ठानगतोज्वलन' इस प्रमाण

से स्वाधिष्ठान में अग्नि का वास मान गया है तथा ''मणि:पूरैकवसित: प्रावृषेण्य: सदाशिव:'' इस प्रमाण से मणिपूर में जल की स्थिति मानी गई है। सृष्टिक्रम में अग्नि के बाद जल है। इसलिये प्रसिद्ध क्रम का परिवर्तन कर स्वाधिष्ठान के नीचे मणिपूर चक्र को आचार्य ने दिया है।

उपसंहार

यह समयाचार साधन विधि का जो परिचय दिया गया है, वह बहुत ही प्राचीन एवं श्रेष्ठ योगविधि है। इसका प्रचार एवं इसके रहस्य के ज्ञाता कोई कोई महात्मा उपलब्ध होते हैं।

अभी हाल में ही एक दाक्षिणात्य परमहंस मिले थे, इन्होंने इसे बड़े ही विशदरूप में बताया था। प्रसिद्ध उत्तर योगी ने अपनी ''यौगिक साधना'' नाम की अंग्रेजी भाषा की पुस्तक में समयाचार का ही सृष्टिक्रम लिया है और इसे ही एक सत्य प्रणाली स्वीकार किया है- ''आई शैल स्पीक टुडे आफ दि शक्ति आर विल सिंस देट इज दि फाउन्डेशन आफ योग। दि शक्ति इज सिचुयेटेड इन दि सहस्रार दल जस्ट एबव दि क्राऊन आफ दि हेड एण्ड फ्राम देट सीट आफ ऐक्टिविटी इट वर्क्स।'' श्री जगन्माता परम करुणामयी से बार बार प्रार्थना है कि उसके इन रहस्यों को अपने योग्य सुपुत्रों को प्रकट कर उनका कल्याण करें।

॥ ॐ शम् ॥

१३. सनातनी शक्ति गाथा

अपनी अपनी विभिन्न रूचि के अनुसार जगत् का प्रत्येक प्राणी अहर्निश किस वस्तु की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हो रहा है? कोई समाजिक एवं धार्मिक क्रियाओं में क्यों उलझा हुआ है? कोई आचार विचार की कठिन पगडण्डी का पथिक क्यों हो रहा है? कोई पूजा-पाठ, जप, तप में बड़ी संलग्नता से क्यों प्रयत्न कर रहा है? कोई दार्शनिक तार्किक बन बुद्धिवाद की उड़ान में किस तत्व के अन्वेषण में सतत व्याप्त हो रहा है? कोई न्याय अन्याय का विचार न करके लौकिक भोग की सामग्रियों को इकट्ठा करने का क्यों प्रयत्न कर रहा है? कोई योगाभ्यास की कठिन दुरूह धोरिणी पर क्यों दौड़ा जा रहा है? कोई घरबार छोड़कर सन्यास लें किसके पाने के लिये तैयारी कर रहा है? विज्ञान के आश्चर्य चकित करने वाले आविष्कारों में कोई योगी की तरह निरुद्ध चित्त वृत्ति वाला क्यों हो रहा है? इत्यादि प्रश्नों का समाधान प्रत्येक व्यक्ति पाने का इच्छुक है। इसके समाधान अनेक हो सकते हैं तथापि उक्त सभी प्रश्नों का एक उत्तर यही समुचित जान पड़ता है कि अदृश्य रूप से सारे विश्व का सञ्चालन करने वाली जगदीश्वरी की कृपा प्राप्त हो, और अन्तस्तल में रही हुई हमारी सभी आकांक्षायें पूर्ण हो एवं हम धन्य होकर कृतार्थ हों। यह सब तभी होगा जब उसकी कृपा प्राप्त हो। विश्व का यह व्यापार सदैव से चल रहा है। आगे भी निःसन्देह इसी प्रकार चलता रहेगा।

ईश्वरीय विभूति रूप ऋषि-मुनियों ने उक्त सिद्धान्त को सर्वथा सत्य एवं अनुभव सिद्ध मानकर अनेक प्रकार के साधन

बताये और उसके गुणगान में ही जीवन की सार्थकता बताई यद्यपि उसके गुणों की सीमा नहीं है तथापि सभी ने उसका गुणगान किया है। यहां तक कि चार्वाकादि नास्तिकों ने भी स्वभाव रूप से उसे स्वीकार किया है। जैन दर्शन में स्यादवाद से किंचिद् अपेक्षावाद से उसे ही सिद्ध किया गया है। बौद्धों ने चतुर्विध विकल्प निर्मुक्त (सद्, असद्, सदसद् तथा इनसे विलक्षण) उसे बताया है। वेदान्ती उसे सच्चिदानन्द ब्रह्म एवं मायावादी वेदान्तियों ने उसे समझने के लिये सदसद् विलक्षण अनिर्वचनीय वाद की सृष्टि की। कणाद, गौतम, कपिल, पातञ्जलि, मीमांसक, शैव, वैष्णव आदि दार्शनिक महर्षियों ने उसे स्वीकार करके अपनी अपनी मनोभिलाषायें पूर्ण की। उपनिषद के ऋषियों ने मौनभाव से उसे ग्रहण करके "नेति नेति" रूप से स्वीकार किया और विदेशी विचारकों में काण्ट, स्पेन्सर ने उसे अज्ञेय रूप से बताया। ब्रेडले ने कहा है कि हम नहीं बता सकते कि वह किस प्रकार का है। इत्यादि रूप से उसी महती शक्ति की ओर संकेत किया है। इन तमाम विचारों को देखते हुए यहीं कहना पड़ता है कि 'इन्कार किसी से न बन आया तेरा' प्राचीन वैदिक ऋषियों ने किस प्रकार उसे बताया है, उसी का निदर्शन संक्षेप रूप में यहां लिखा जाता है।

शक्ति तत्व का विज्ञान

मन वाणी से अगोचर केवल स्वसम्वेद्य परम शिव के स्वरूप में शक्तितत्व अविनाभाव से मिला हुआ है। उसे ही तपः शक्ति या तपोलोक के नाम से वैदिक ग्रन्थों में व्यवहार

किया है। शिव को सत्यपद से या सत्यलोक के नाम से कहा है। शक्तितत्व पौराणिक भाषा में - स्वजनानुग्रहार्थ लीलात्मक विग्रहधारण करने वाली हैमवती उमा पद से कहा जाता है। केन उपनिषद् में भी उसे माना गया है तथा तांत्रिक योगी उसे ही कुण्डलिनी शक्ति कहते है। समस्त लोकों के आधारभूत सत्य तत्व के चारों तरफ क्रियात्मक रूप से परिभ्रमण करती हुई सूक्ष्म रूपा पराशक्ति ही तपोलोक है। लीलात्मक सृष्टि के आविर्भाव की प्रथमावस्था में शिवरूप अग्नि से धूमसदृश पहले पहल उद्गार हुआ, उसमें शक्ति ज्वाला फैली। तब जनलोक की वृद्धि हुई, अर्थात् सत्यतपोलोक के पश्चात् अकृत्रिम जनलोक प्रकट हुआ। स्मृति के अनुसार ये तीनों भाव अकृत्रिम ही हैं। शिवतत्व के धूम उद्गार के साथ शक्तितत्व के प्रथम भाव को ज्येष्ठा या धूमावती कहते हैं। इसे ही सिद्ध भाषा में 'धुआंवाली' कहते हैं। वेदान्तियों ने इसी जप-तप-जन को सच्चिदानन्द ब्रह्म के नाम से स्वीकार कियाहै। सत्यरूप से उपादान तप या चित्त रूप से निमित्त होकर वही सारे जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण बन रहा है। धुएं के सदृश शैव भाव में रही हुई पराशक्ति में अपने स्वरूप से उसे व्याप्त कर रखा है। इसे ही दिव, नाक या त्रिदश भी कहते हैं। ये तीनों दशायें-अकृत्रिम हैं। इसे ही उपनिषदों में परमव्योम कहते हैं। वैयाकरण इसे ही शब्दब्रह्म कहते हैं।

ऋचो अक्षरे परमें व्योमन्

इत्यादि रूप ऋग्वेद में तथा -

'यो वेद निहित्तं गुहायां परमे व्योमन्।'

इत्यादि रूप से तैत्तरीयारण्यक में कहा गया है -

धूमान्तरोष्मकल्पा शुद्धज्वालोपमा शक्तिः।
तां दिवमाहुरपरे केचन परम व्योमापरे प्राहुः॥

(उ०स०प्र०श०प्र०स्त०७)

उक्त अर्थ को इस शक्ति काव्य की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से बता दिया है। शिव शक्ति के उद्रेक से प्रकट यह जन लोक व्योम, अन्तरिक्ष गगन, आकाश आदि नामों से भी कहा जाता है। तप जनलोक की सन्धि से परमात्मा भाव की शिवशक्तिमयी एक और अभिव्यक्ति हुई, जो जगत् के उत्पादनादि क्रिया का कारण बनी, जिसे 'जगतः पितरौ वन्दे' के नाम से महाकवि ने बताया है। वैदिक भाषा में उसे ही दक्ष कहा गया है क्योंकि सृष्टिकार्य में उसकी दक्षता अप्रतिम रूप से विराजमान है। उसके गर्भ में सूक्ष्मरूप से रही हुई शक्ति भी प्रकट हुई। दक्ष से प्रकट होने से उसका नाम दाक्षायणी हुआ। इसे पुराणों में सती कहा गया है, क्योंकि वह त्रिकालाबाधित सत्य स्वरूप वाली हैं। सर्वत्र प्रकाशमान आकाश तत्व या दक्ष से प्रकट होने से उसे दक्ष की दुहिता भी कहते हैं। वस्तुतः वह दक्ष को भी उत्पन्न करनेवाली है-

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद् उ अदितिः परि

अदितीर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।।

तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः।

(ऋ० १०, ७२-४-५)

मन्त्र का अर्थ उपयुक्त पंक्तियों मे स्पष्टता आ गया है। अन्तश्चक्षु योगियों ने उसे ही सतीभाव एवं अदिति प्रजापति के नाम से देखा एवं व्यवहार किया।

इसी युग्म का यह जगत परिणाम है।

यह युग्म सदैव प्रवृत्तिपरक होने से अपरा विद्या का विषय है। यह दक्षयज्ञ प्रवृत्तिपरक होने से तथा इनमें शिव का भाग न होने से रुद्र के कोप से दक्ष ने अपना विनाश किया एवं सती उसके यज्ञ में तिरोहित हुई, आदि पौराणिक कथायें लोक में प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मविद्या ही सती है। उसके बिना अपरा भी अपना स्वरूप लाभ नहीं कर सकती। इस कथा का रहस्य हैं। पुनः हिमाचल के घर वही उमा पार्वती के नाम से प्रकट हुई। यह शक्ति लीला पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार कही जाती है। वैदिक भाषा में पर्वत, गिरि आदि नाम मेघ के है। उसमें विद्युत रूप से गम्भीर ध्वनि करने वाली शक्ति पार्वती नाम से व्यक्त होती है-

'यज्ञात् भवति पर्जन्यः'

इस क्रम से दक्ष के यज्ञ के पश्चात् हिमाचल में उसका प्रकट होना वैदिक निगूढ़ वाणी से सिद्ध है। अग्नि, वायु और सोमरूप से त्रितत्व भूः भुवः स्वः नाम के लोकों को धारण किये हुये हैं। ये परशक्ति के नीचे के स्तर के लोक हैं। आकाश तत्व एवं वायु की सन्धि में यह नाम का एक तत्व है, जिसे बुद्धि तत्व कहते हैं जो कि कार्य मात्र का प्रकाशक है। इस प्रकार सप्त व्याहृति रूप से पराशक्ति का निर्माण किया हुआ जगच्चक्र चल रहा है। अध्यात्म में इन्हें षट्चक्रों के नाम से योगियों ने व्यवहार किया है। शक्ति की सनातनी दिव्य लीला का यह संक्षेप में दिग्दर्शन मात्र है।

॥ ॐ शम् ॥

१४. सार्ध नवचण्डी प्रयोग

कर्मफल का इच्छुक प्राणी स्वाभिलषित वस्तु (फल) की प्राप्ति के लिये व्यग्र मन से प्रयत्न करता रहता है। जीवन का बहुत बड़ा भाग इसी में व्यतीत हो जाता है, तथापि सिद्धि एवं शान्ति नहीं मिल पाती और संतप्त- चित्त ही संसार से चला जाता है। इसके कारणों पर बहुत सूक्ष्म रीति से कर्मकाण्डियों, तान्त्रिकों ने विचार किया है तथापि युक्ति जबतक हस्तगत न हो तबतक प्रयत्न सफल नहीं होते। इस विषय के कुछ अनुभूत प्रकार हैं, जिन्हें 'चण्डी' के पाठकों एवं साधकों के हितार्थ यहां लिखा जा रहा है। आशा है, साधकगण उपयोग करके सफल बनेंगे। ललिता सहस्रनाम भाष्य पृष्ठ ७७ में कहा है -- 'कुण्डलिन्युत्थापनेन मधुस्रावणेन डाकिन्यादि-मण्डल-प्लावन रूपान्तर कर्मणि सत्येव बाह्यनि यज्ञादि कर्माणि सफलानि भवन्ति। तदभावे तु यस्मिन् काले कर्माणि क्रियन्ते स काल एव तेषां कर्मणां कालमृत्युरूपो भवतीति।'

अर्थात् जो तान्त्रिक योगी कुण्डलिनी शक्ति के उत्थापन द्वारा अमृत स्राव करके षट्चक्रों में स्थित डाकिनी आदि मण्डलों का सिंचन करना जानता है, वही बाह्य कर्म काण्ड करने से सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अन्यथा काल तत्व मृत्यु रूप होकर उसका विनाश कर देता है। इसी तत्व को चन्द्रज्ञान तन्त्र में इस प्रकार कहा गया है-

''अन्तरग्नौ मधुस्रावं कुर्वतां शिशिरात्मनाम्।
इष्टापूर्तादिकर्माणि फलन्ति किल कालतः॥

अन्तःस्राव ·विहीनानां सदा सन्तप्तचेतसाम्।
कर्माणि क्रियमाणानि कालो ग्रसति तत् क्षणात्।
कालकर्षिणिकैवान्तः करोति मधुवर्षति।
इति यो वेद तस्य स्याद् ब्रह्मरन्ध्रात् सुधास्त्रुतिः॥"

अर्थात् जो शांत चित्त वाले साधक अन्तराग्नि में मधुस्राव करना जानते हैं, उनके किये हुए इष्टापूर्तादि कर्मकाल द्वारा सफल होते हैं, अन्तःस्रावविहीन सन्तप्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा किये हुये कर्म को काल तत्क्षण ही ग्रस लेता है। कालकर्षिणिका शक्ति ही यह अन्तर कार्य सम्पन्न करती है तथा वही मधुवर्षा करती है। ऐसा रहस्य जो जानता है, उसके ब्रह्मरन्ध्र से सुधा (अमृत) की स्रुति होती है।

कुण्डलिनी जागरण एवं मधुस्राव एक कठिन कार्य है, जो सिद्धि क्रिया कुशल योगी ही करने में कृतकार्य हो सकते हैं, यह सबको सुलभ नहीं हैं। कालकर्षिणी का अनुष्ठान सर्व प्रथम करके अनुष्ठान करना चाहिये। यह एक सुलभ कार्य है, क्योंकि योग के द्वारा जो क्रिया सम्पन्न होती है उसे कालकर्षिणी शक्ति सम्पादन कर देती है। अतः सिद्धि में कोई सन्देह नहीं रहता स्वप्न विद्या द्वारा देव की आज्ञा प्राप्त करके भी कार्यारम्भ करने से सिद्धि अवश्य ही होती है। प्रत्येक अनुष्ठान में इन उक्त क्रियाओं का करना आवश्यक है, क्योंकि कर्मानुष्ठान की पूर्ण सूचना इसे प्राप्त होती है-

कुछ अनुष्ठान ऐसे भी हैं, जिनमें उक्त क्रियाओं को करें या नहीं तब भी उनसे सिद्धि अवश्यंभावी है। 'चण्डी' के

पाठकों के हेतु जिस प्रयोग के विषय में लिखा जा रहा है, वह भी एक सिद्ध प्रयोग है। अनेक बार इसका अनुष्ठान भिन्न-भिन्न अवसरों पर किया गया है, जिसका फल प्रत्यक्ष देखा गया है। वह है 'सार्ध नव चण्डी प्रयोग' सप्तशती ग्रन्थ द्वारा इसका प्रयोग होता है। इस प्रयोग के करने में नौ ब्राह्मण सप्तशती के पूरे पाठ करने के लिये वरण किये जाते हैं। एक आधा पाठ करने वाला और एक शुक्ल यजुर्वेदीय षडङ्ग रुद्रीय का पाठ करने वाला होता है। कुल एकादश ब्राह्मणों द्वारा यह अनुष्ठान सम्पन्न होता है। पाठ करने वाले ब्राह्मण तपस्वी एवं शक्ति तत्व में निष्ठा रखने वाले होने चाहिये। पूरे पाठ के विषय में कोई विशेष वक्तव्य नहीं हैं। क्योंकि इस क्रम में वह गौण है। अर्ध पाठ ही मुख्य है। उसी के पाठ से नव पाठ सफलीभूत होते हैं।

अर्ध पाठ के विषय में कहा गया है --

नवसार्ध जपेद्यस्तु मुच्येत् प्राणान्तकाद् भयात्।
राज्यं श्रीः सर्वसम्पत्तिः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥
प्रयोगोऽयं महागुह्यो देवानामपि दुर्लभः।
तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
शक्रादिस्तुतिरेवातो देवीसूक्तं पुनस्तथा।
नारायणीस्तुतिश्चैव फलानुकीर्तनं तथा।
ततो वरप्रदानं च ह्यर्धपाठोऽयमुच्यते॥

अर्धपाठस्त्वयं प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः।
अर्धपाठेन रहितं नवपाठफलं नहि॥

अर्थात् जो पुरुष 'सार्धनवचण्डी' का प्रयोग करता है, वह प्राणान्त संकट से मुक्त होकर राज्य, श्री सर्वसम्पत्ति तथा सभी कामों को प्राप्त करता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अध्याय का पाठ सम्पूर्ण, पांचवें अध्याय में 'देवा ऊचुः नमो देव्यै' इत्यादि से लेकर ऋषिरुवाचपर्यन्त तथा एकादश अध्याय की 'नारायणी स्तुति' द्वादश एवं त्रयोदश अध्याय सम्पूर्ण -- ये सब मिलकर अर्ध पाठ के नाम से ग्रहण होते हैं। इसी अर्ध पाठ से प्रयोग की सफलता है। अर्ध पाठ से रहित नव पाठों का फल नहीं होता। निम्न प्रकार इसका प्रयोग करना चाहिये।

प्रयोग विधि

चन्द्र, तारा, नक्षत्रादि के अनुकूल होने पर शुभ मुहूर्त में अथवा कृष्णाष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, तिथियों के किसी दिन कुमारी को विधिवत पूजा करके भोजन दक्षिणादि से संतुष्ट कर उसकी आज्ञा लेकर शुद्ध लिपी-पुती भूमि पर आसन बिछाकर प्राङ्मुख बैठकर विघ्न निवारणार्थ बैठकर स्वस्ति वाचन करने के बाद श्री गणेश का आव्हानादि क्रिया से पूजन प्रार्थनादि कर भाविकार्य के लिये संकल्प करें।

'ॐ तत्सदद्येत्यादि' देशकाल का कीर्तन कर अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं' (शर्मावर्मेत्यादि) नामयुक्त राज्य से व्यवहार सेवा, प्रतिष्ठा, श्रीवृद्धि की कामना वाला आदि मनःकामना के

अनुसार एकादश ब्राह्मण द्वारा "शुक्ल यजुर्वेदीय षडंग रुद्रीय पाठ सहित मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत श्री चण्डी चरित्रस्य श्री महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-दैवतकस्य-सार्धनवरूप पुरश्चरणं कारयिष्ये" ऐसा संकल्प कर गन्धाक्षत कौसुम्भ-सूत्र-वस्त्रादि वरण सामग्री के सहित संकल्प करता हुआ प्रत्येक ब्राह्मण का पृथक-पृथक वरण करें। फिर आचार्य यथाविधि कलश स्थापन वर भवानीशंकर की सोपचार पूजा करें। उसके अनन्तर पुस्तक-पूजनादि कर प्रत्येक ब्राह्मण के पाठ का संकल्प करके पाठ आरम्भ करना चाहिये। पाठ सम्पूर्ण करके नवार्णमन्त्र का जप तथा श्री देवी को पाठ का समर्पण करना चाहिये। इसके बाद होम विधि से कुण्ड या स्थण्डिल में संस्कृत अग्नि में घृत, पायस, तिल के एक पाठ का होम करना चाहिये। फिर तर्पण-मार्जन-मूल मन्त्र से कर ब्राह्मणों को भोजन करावें। भोजन दक्षिणा एवं पाठ की दक्षिणा प्रदान करके प्रसन्नतापूर्वक यजमान आशिर्वाद ग्रहण करें। इत्यादि कर्म की सफलता के लिये उक्त शास्त्रीय विधि का अनुसरण करें।

यहां पर यह कह देना भी आवश्यक है कि सप्तशती का पाठ शक्ति मन्त्र दीक्षित ब्राह्मणों द्वारा ही करना चाहिए, क्योंकि अदीक्षितों की क्रिया सर्वथा निष्फल होती है। दीक्षा के बिना अन्तःकरण में शुद्ध शक्ति का संचार नहीं होता तथा इनके बिना संकल्प सिद्धि नहीं होती। वर्तमान समय में ऐसे साधक ब्राह्मणों की प्राप्ति बहुत ही दुर्लभ हो गई है। इसीलिये अनुष्ठानों की

सिद्धि नहीं देखी जाती तथापि इसका सर्वथा अभाव नहीं है। शुद्ध श्रद्धा विश्वास वालों को यथार्थ कर्यकर्त्ता अवश्य ही मिल जाते हैं। यह उक्त प्रयोग सरल, अल्प व्यय साध्य है। प्रत्येक देवी पर्व पर इसे कराकर मनुष्य सफलीभूत हो सकते हैं।

वसन्त एवं शरद ऋतु में इसका अनुष्ठान विशेष सिद्धिकर है। इसके करने में एक ही दिन लगता है। अनेक दिनों में जो अनुष्ठान होते हैं, उनमें करने वालों के उत्साह में शिथिलता आ जाती है ऐसा इसमें नहीं।

सप्तशती के पाठ में कितना प्रभाव है यह बात यहां पर बताने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विश्व की कोई भी ऐसी विभूति नहीं, जो इसके द्वारा प्राप्त न हो सके।

इस घोर कलिकाल में यह एक ही ग्रन्थ शाक्त धर्म की महिमा अक्षुण्ण बनाये हुये है। सहस्त्र चण्डी, शतचण्डी आदि महानुष्ठान बहुत ही कठिन एवं दुःसाध्य इस समय हो गये हैं। इसी बात को लक्ष्य करके यह ''सार्ध नवचण्डी'' प्रयोग यहां लिखा गया है आशा है कि, शाक्तजन स्वयं इसे प्रयोग में लाकर कृतकार्य होंगे तथा इसका समुचित प्रचार करके धार्मिक श्रद्धालु जनता का हित करेंगे।

॥ ॐ शम् ॥

१५. श्री छिन्नमस्ता महाविद्या

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरां नाशयते तमः॥
(दे० ४)

अग्नि के समान रक्त वर्ण वाली तप से सदैव प्रज्वलित कर्म फल की इच्छा वाले साधकों से सेवित, वैरोचनी दुर्गा देवी के शरण जाता हूँ जो कि अज्ञानान्धकार का अपने आप नाश कर देती है, या जिसके प्रभाव से अज्ञान स्वयमेव नष्ट हो जाता है।

श्री आचार्य क्षेमराज शक्तिसूत्र प्रत्यभिज्ञा हृदय में शक्ति पदार्थ का लक्षण करते हुए कहते है।

"चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः (प्र० ६०)

जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार की सिद्धि 'चित्ति' महाशक्ति द्वारा ही होती है और वह स्वतन्त्र है। महाशक्ति के अनुग्रह और तिरोधान ये दो कृत्य तन्त्रों में और भी माने गये हैं, इसलिये उसे 'पञ्चकृत्यकारिणी' भी कहते है। अनुग्रह तिरोधान को बन्ध और मोक्षपद से कहा जाता है, समस्त सिद्धियों का हेतु वह महाशक्ति ही है, क्योंकि योगी उसकी कृपा से ही सिद्धियों को पाता है, यह दूसरा अर्थ भी सूत्र का किया जाता है। सारा विश्व उसी का परिणाम है। सभी पदार्थ उसी से विकसित हो रहे हैं। सब में उसी की सत्ता है और सब वही है। यह शाक्त दर्शन का अन्तिम निर्णय है, इस तत्व को साक्षात् करने के लिये साधना पद्धतियों का निर्माण महर्षियों ने

किया है, उनमें भिन्न-भिन्न उसके रूप और प्रकार नियत किये गये हैं। तथापि मुख्यत: साधक महापुरुषों ने दस रूप में उसका पूर्ण विभूति का अनुभव करके कृतकृत्यता लाभ किया है-जिन्हें-

''कालीतारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥''
''बगला सिद्ध विद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता विद्या महेशानि महाविद्या प्रकीर्तिताः॥''

(तन्त्रसार) कहा गया है। ये सभी रूप एक ही के हैं।

आज के इस निबन्ध में श्री भगवती छिन्नमस्ता जी के विषय में यथा ज्ञान 'चण्डी' के पाठकों के लिये कुछ निवेदन किया जा रहा है। श्री जगदम्बा के इस रूप का बहुत ही रहस्यमय स्वरूप है। इनकी साधना पद्धति एवं इनके साधक बहुत ही दुर्लभ है। अत: यत्किंचित उपलब्ध शास्त्रीय वचनों के आधार पर ही यह लेख लिखा जा रहा है। यद्यपि श्री पं रमादत्त जी शुक्ल का कथन विस्तृत रूप में लिखने का है, तथापि उक्त परिस्थिति को देखते हुये समास में ही व्यास को समझना उचित होगा। शक्ति साधना में मुख्य रूप से दो क्रम माने जाते हैं सृष्टि एवं संहार। स्थितिक्रम सृष्टि के ही अन्तर्गत है, इन दसों रूपों का सृष्टि एवं संहार में अन्तर्भाव होने से दो प्रकार साधना के माने जाते हैं, जिन्हें काली कुल एवं श्री कुल कहते हैं। श्री भगवती छिन्नमस्ता की गणना काली कुल में की जाती है। यद्यपि काली, तारा, षोडशी के भेद से तीन क्रम माने जाते हैं तथापि श्री तारा और काली में भेद न होने से ऐक्य स्थापन किया गया है- **''काली महाकाल मलं ग्रसन्तीम्''** **(भावोपहार की टीका)**

'महाकाल रूप अहम्'

प्रत्यय को भी अन्त में ग्रस लेने वाली काली है। श्री तारा के शिव को अक्षोभ्य नाम से कहते हैं, क्योंकि 'अहम्' के ग्रास होने पर ही अक्षोभ्यावस्था प्राप्त होती है, अहमाकार समष्टि क्षोभ से ऊपर यह अवस्था है। अतः श्री तारा के मस्तक में इनका पूजन होता है। तारा कर्पूर में अक्षोभ्य को महाकाल ही कहा गया है।

"महाकालेनोद्यत्पुलक निचयां स्मरेवदनाम्" (१६)

श्री तारा एवं छिन्नमस्ता जी का बीज 'हूँ' है। इन दोनों की पूजा पद्धति आराधना क्रम प्रकृति विकृत न्यास से एक ही है। श्री तारा का पूर्ण क्रम होने से श्री छिन्नमस्ता जी का इन्हीं में अन्तर्भाव माना जाता है, शक्तिसंगम में यह विषय स्पष्ट है। श्री भैरव तन्त्र में इनके विषय में कहा है--

" प्रचण्डचण्डिकां वक्ष्ये सर्वकाम फलप्रदाम्,
यस्याः स्मरण मात्रेण सदाशिवो भवेन्नरः।
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान् भवेत,
कवित्वं दीर्घपाण्डित्यं लभते नात्र संशयः॥"

अर्थात् प्रचण्ड चण्डिका श्री छिन्नमस्ता का वर्णन किया जाता है, जिनकी आराधना से साधक जीवभाव से रहित होकर शिव हो जाता है, तथा पुत्र, धन, कविता, पाण्डित्य आदि ऐहिक विषय भी उसे प्राप्त हो जाते हैं अर्थात साधक

इच्छानुसार जो चाहता है, उसे वही प्राप्त होता है। इनके अविर्भाव की कथा इस प्रकार कही जाता है--

एक समय अपनी सहचरी जया विजया के साथ श्री भवानी मन्दाकिनी में स्नान करने गई वहां स्नान करने पर कामाग्नि से पीड़ित होकर वह जगदानन्दकारिणी कृष्णवर्ण की हो गयीं उस समय सहचरियों ने उनसे कुछ भोजन करने को माँगा क्यों कि वे क्षुधित थी, देवी ने उन्हें प्रतीक्षा करने को कहा, पुनः याचना करने पर भी प्रतीक्षा करने को ही कहा, तब उन सहचरियों ने विनम्र मधुर स्वर में फिर कहा कि "माता प्रार्थना करने पर अपने शिशुओं को अवश्य ही भक्ष्य भोज्य देती है, क्योंकि वह दयामयी होती है, इसलिये अवश्य ही कुछ भोजन देना चाहिये।" इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपावती देवी ने कराग्र से अपने शिर का छेदन कर दिया। छिन्न शिर श्री देवीं के बायें हाथ पर आ गिरा, और उनके कबन्ध से तीन धारायें वह निकलीं दो धारायें अपनी सहचरी डाकिनी और वर्णिनी के मुख में प्रवाहित होने लगी औरी तीसरी धारा कटे हुये अपने शिर से स्वयं पान करने लगीं। तभी से उस समय के स्वरूप की छिन्नमस्ता संज्ञा हुई, इसी से मिलती जुलती और भी कथायें प्रचलित हैं।

योगसिद्धि की चरम सीमा का निर्देश इस कथा में किया गया है। योगशास्त्र में तीन ग्रन्थियां बताई गई हैं, जिनके भेदन पर योगी को पूर्णता लाभ होता है, जिन्हें ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि (प्रा०तो०पृ० ७२८)

और रुद्रग्रन्थि के नाम से कहा गया है। मूलाधार में ब्रह्मग्रन्थि, मणिपूर में विष्णुग्रन्थि एवं आज्ञा में रुद्रग्रन्थि का स्थान है। इसके भेदन पर ही अद्वैतानन्द का अनुभव होकर पूर्णानन्द रूप मुक्ति की प्राप्ति होती है। ब्रह्म, विष्णु ग्रन्थियों के भेद होने पर भी साधक के अन्दर रहे हुए अहंकार का पूर्ण रूप से अभाव न होने से पुनः संसार में उसे आना पड़ता है; क्षुद्र अंहता का विलय पराहन्ता में रुद्रग्रन्थि के भेदन पर ही होता है। महाशक्ति कुण्डलिनी चित्रा, वज्रा और ब्रह्मनाड़ी के साथ आज्ञाचक्र को भेदकर वज्रनाड़ी में से प्रवाह करती है, तब यह कार्य सम्पन्न होता है इसे ही कपाल भेद भी कहते हैं। इसके पश्चात् ही शिव की समस्त सिद्धियां योगी को प्राप्त होती हैं तथा सोम, सूर्यात्मक समस्त जगत का पोषण भी उससे होता है। इस मार्ग में काम सबसे बड़ा अवरोधक होता है। जिसका संकेत उक्त कथा में किया गया है। श्री भगवती के ध्यान में भी विपरीत रतियुक्त काम का स्वरूप बताया गया है।

'अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीं, रतिकामोपविष्टां च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिणः......... '............'विपरीतरतासक्तौ ध्यायेद्रतिमनोभुवौ'

इति, योगियों का ऐसा अनुभव है कि मणिपूर चक्र के नीचे की नाड़ियों में ही काम एवं रति का मूल है, उसी पर छिन्नामहाशक्ति आरूढ़ है। नीचे के प्रवाह में ही रति एवं काम को उत्पन्न करते हैं, जिनमें सारा संसार बहा जा रहा है, उसके वैपरीत्य अर्थात् ऊर्ध्व प्रवाह होने पर ही रुद्रग्रन्थि का भेद होता

है। कुलाचार के पञ्चम मकार का भी यही रहस्य है। जितने सिद्ध योगी हुए हैं, वे सब इसी बड़ी घाटी को पार करने पर ही पूर्ण सिद्ध हुए हैं। इसीलिये योगी गोरखनाथ ने अपनी गोरक्ष संहिता में कुण्डलिनी शक्ति के इसी ध्यान को बताया - "नाभौ शुभ्रारविन्दं तदुपरि विमलं मण्डलं चण्डरश्मे, संसारस्यैकरूपां त्रिभुवनजननीं धर्मधात्रीं नराणाम्। तस्मिन् मध्ये त्रिमार्गे त्रितयतनुध रां छिन्नमस्तां प्रशस्तां, तां वन्दे ज्ञानरूपां मरणभयहरां योगिनी योगमुद्राम्।"

(गो०प०२-७९)

अर्थात् नाभि प्रदेश में शुभ्र वर्ण पद्म और उस पर निर्मल सूर्य मण्डल का चिन्तन कर उसमें संसार की सार भूत त्रिभुवनजननी, धर्म-काम और दयासम्पन्न प्रशस्ता ज्ञानरूपा जन्ममरण के भय को दूर करने वाली योग मुद्रा योगिनी छिन्नमस्ता देवी की मैं वन्दना करता हूँ। इसी विषय में 'उमा सहस्रम्' नामक भी भगवती के एक उत्कृष्ट काव्य में ऐसा कहा गया है--

तवच्छिन्नं शीर्ष विदुरखिलधात्र्यागमविदो,
मनुष्याणामस्ते बहुलतपसा यद्‌विदलिते।
सुषुम्णायां नाड्यां तनुकरण सम्पर्क रहिता,
वहिःशक्त्या युक्ता विगत चिरनिद्रा विलससि।

(सप्तमें स्तवके ३-२१) हे जगद् धात्रि, आगमवेत्ता तान्त्रिक लोग आपको छिन्नमस्ता रूप से जानते हैं। दीर्घकाल

तक तप के अनुष्ठान से विदलित दो भागों में विशीर्ण मनुष्यों के मस्तक प्रदेश में ज्योतिवाहिनी सुषुम्ना नाड़ी में देहेन्द्रियादि-सम्बन्धवर्जित अर्थात् निर्लेप होती हुई शरीर से बाहर ब्रह्माण्डस्थ महाशक्ति से युक्त सदैव जाग्रत रुप में योगी के शरीर में कुण्डलिनी रूप में विलास करती हो, अर्थात् योगियों में कुण्डलिनी के प्रबुद्ध होने पर सुषुम्ना में प्रवाह कर शरीर के सम्बन्ध से रहित होकर शीर्ष कपाल भेद कर ब्रह्माण्ड में व्यापक महाशक्ति से एक होकर विलास करती हो। इसके आगे श्लोक के टीकाकर विद्वद्वर श्री कपाली शास्त्री लिखते हैं कि - 'जीते ही योगी का शीर्ष काल भेद अनुभव सिद्ध है'-

'व्यपोह्य शीर्षकपाले'

इस तैत्तरीयारण्यक श्रुति से प्रमाणित किया है। कठोपनिषद् में -

'विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्'

ब्रह्मविद्या और सम्पूर्ण योगविधि को नचिकेता ने यम से प्राप्त किया। इस प्रसंग में योग विधि रूप से यही तत्व लिया गया है -

'शंत चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमपि निःसृतैका।
तयोर्ध्वमाचन्नमृतत्वमेति विश्वङ्न्या उत्क्रमेण भवन्ति।'

हृदय की एक शत नाड़ियों में एक नाड़ी मूर्धा को भेदकर ब्रह्म लोक को गई है, उसी से उत्क्रमण होने पर मुक्ति होती है।

अन्य नाड़ियों द्वारा उत्क्रमण पुनरावृत्ति का हेतु है। उक्त तान्त्रिक छिन्नमस्ता साधना का यह वैदिक रूप है। यह बात प्रसिद्ध है कि शाक्त साधना मुक्ति और भुक्ति दोनों को ही समान रूप से एक साधकावच्छेदन स्वीकार करती है। इसी के अनुसार उक्त मन्त्र की व्याख्या श्री आचार्य भगवत्पाद ने की है--

'ब्रह्मणा व सहकालान्तरेण मुख्यममृत्त्वमेति
भुक्त्वा भोगाननुपमान् ब्रह्मलोकगतान्'

(क०अ० २-१६)

ब्रह्मलोक में गया हुआ साधक ब्रह्मलोग के अनुपम भोगों को भोग कर अन्त में मोक्ष को प्रांप्त करता है। संक्षिप्त रूप में यह यौगिक सिद्धान्त ही विस्तार में श्री छिन्नमस्ता भगवती की आराधना का तन्त्र है। महर्षि याज्ञवल्क्य, भगवान् परशुराम आदि दिव्य महापुरुष इनके साधक थे। महर्षि याज्ञवल्क्य ने जनक की सभा में शाकल्य का मूर्धापात इसी शक्ति द्वारा किया था। श्री भगवान परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा से अपनी माता का शिरच्छेद किया था। उनकी माता श्री रेणुका सती होने से श्री छिन्नमस्ता के तेज ने उनमें प्रवेश किया। अत: रेणुका का भी साधन पूजन होता है। बृहदारण्यक में कही गई मधुविद्या अश्वशिर वाले दध्यङ-ङ्ना-थर्वण ऋषि से जिसका उपदेश दिया गया है, वह यही है। श्री भागवत में एवं श्री देवी भागवत में हयग्रीव विद्या भी यही है। प्राचीन वैदिक ऋषि इसे इसी रूप में मानते थे। श्री मत्स्येन्द्रनाथ, श्री गोरखनाथ आदि

महासिद्ध महात्मा इसी महाशक्ति के आराधक थे। अर्थ, काम को लक्ष्य करके दैत्य राक्षसों में भी यह साधन रहा है। हिरण्यकशिपु, वैरोचन आदि भी इस शक्ति के एक निष्ठ साधक थे, इसी लिये इन्हें 'वज्रवैरोचनीया' भी कहते हैं। वास्तव में वैरोचन नाम अग्नि का है, अग्नि के स्थान मणिपूर में इसका ध्यान किया जाता है। वज्रानाड़ी में प्रवाह होने से इनकी 'वज्रवैराचनीया' इस नाम से साधकों में प्रसिद्धि है--

'वैरोचनी कर्मफलेषु जुष्टाम्'

इस मन्त्र में यही बात कहीं गई है, क्योंकि कर्मफल अग्नि द्वारा ही प्राप्त होता है। अर्वाचीन काल में तथागत बुद्ध इसी साधना से मार को जीत पाये थे। इसीलिये उनका एक नाम वैरोचन बुद्ध भी है, यह वज्रयान के ग्रन्थों में मिलता है। गुह्य समाज तन्त्र में लिखा है- 'एव मया श्रुतं एकस्मिन् समये भगवान सर्वतथागत: कायवाक्चित्हृदयवज्रयोषिद्-भगेषु विजहार' (पृ० १)

इससे सिद्ध है कि बुद्ध तान्त्रिक साधक थे। 'हूं' बीज श्री तारा एवं श्री छिन्नमस्ता का माना जाता है, इसका निरूपण उक्त तन्त्र में किया है। श्री जालन्धर पीठ में वज्रेश्वरी (श्री तारा) की पूजा होती है। कांगडा का भवन इस नाम से प्रसिद्ध है। श्री छिन्नमस्ता का पीठ 'चिन्त्यपूरणी' नाम से उक्त पीठ में प्रख्यात है। शीतकाल में अनेक बौद्धं मतानुयायी तिब्बत से श्री भगवती के दर्शनार्थ वहां आते हैं, इनकें आराधन का क्रम चीनाचार एवं

दिव्य चीनाचार के नाम से उन लोगों में प्रचलित है। ब्राह्मणों के आधुनिक तन्त्रों के संग्रह ग्रन्थों में इनका भी नाम है तथापि इसका आचरण वही लोग करते हैं। बहुत से आधुनिक विचारक इस बात को नहीं मानते हैं कि बुद्ध तान्त्रिक थे और बौद्धों में तन्त्र मन्त्र की मान्यता थी, जैसे गंगा के पुरातत्व विशेषांक में श्री महा पंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'अपने लेख में लिखा है कि, 'बुद्ध' के निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् मन्त्र तन्त्र का प्रचार बौद्धों में होने लगा। भैरवी चक्रादि बहुत पहले से ही प्रचलित थे। जिन्हें विदेशों में भी लोग मानते थे, इत्यादि यह मार्ग रहस्य का है। प्रत्येक व्यक्तितथा सामान्य जनता में इसे प्रकट नहीं किया जाता है, इस मार्ग के लोगों का जीवन सर्वथा रहस्यमय ही होता है इसलिये बुद्ध ने अपने कतिपय शिष्यों को ही इसे बताया हो। अन्यथा प्रधान सम्प्रदाय महायान में वज्रयान का विपुल प्रचार होना, यह कोई साधारण बात नहीं है। आगे चलकर राहुल जी ने यह माना है कि बुद्ध के निर्वाण ४०० वर्ष पश्चात् मन्त्र, हठ और मैथुन बुद्ध धर्म में प्रविष्ट हो गए, पर यह नहीं बताया कि बातें कहां से आकर प्रविष्ट हुई। ये बातें शाक्त लोगों में प्रचलित थी, वहीं से बौद्धों में आयी। बौद्ध धर्म तो सर्वदा इन बातों का विरोधी है, तथागत अहिंसा के उपदेष्टा होते हुए भी मांसाहारी थे। यह "महापरिनिब्वाणसुत्त" में लिखा है कि सूकर का मांस खाने से उनका देहान्त हुआ था। चमत्कार भी बताते थे, जैसे सूखी नदी में पानी बहा देना आदि शाक्त धर्म की चीज है। इससे सिद्ध है कि बुद्ध तान्त्रिक

थे। कितने लोग यह भी मानते हैं कि बौद्ध तन्त्रों के अनुकरण पर ही शाक्तों के तन्त्र बने हैं, तथापि यह निराधार है।

शाक्तों के तन्त्रों का आधार पञ्चब्रह्म मन्त्र हैं, जिनका उल्लेख कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय मैत्रायणी आदि शाखाओं में है। जिन्हें सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान कहते हैं। भगवान शिव के ये पांचों मन्त्रमय मुख कहे जाते हैं, इन्हीं से शैवागम एवं शाक्तागमों का विस्तार हुआ है जिसे परशुराम कल्पसूत्र में कहा है। भगवान परम शिव ने श्रुति आदि अष्टादश विद्या सर्व दर्शन लीला न्याय से बनाकर संविन्मयी श्री भगवती के पूछने पर अपने पञ्चमुख से पञ्चाम्नायों को कहा। (परशु २) इन्हीं पांचों मन्त्रों पर पञ्चाध्यायात्मक पाशुपत सूत्रों की रचना कर शैव धर्म का विस्तार किया गया है। ये मंत्र शैवों एवं शाक्तों को समान रूप से मान्य हैं। शैवों ने अपने ग्रन्थों में शाक्तों को भी शैव ही बताया है। वीर शैवों ने इन्हीं पांचों मन्त्रों से अपने पञ्च आचार्यों की कल्पना की है जिन्हें रेणुक, दारूक, चंकुकर्ण, धेनुकर्ण और विश्वकर्ण कहते हैं। बुद्धों की पञ्चबुद्ध कल्पना भी इसी का अनुकरण हैं।

जिनो वैरोचनः ख्यातो रत्नसम्भव एव च ।
अमिताभोऽमोघसिद्धि रक्षोभ्यश्च प्रकीर्तितः॥

जैसे सद्योजातादि का दिशाक्रम है, ऐसे ही बुद्धों का भी है। पूर्व में ''वैरोचन' दक्षिण में ''अमिताभ'' पश्चिम में '' रत्नसम्भव'' उत्तर में '' अमोघसिद्धि'' एवं ऊपर में ''अक्षोभ्य''

बुद्ध माने जाते हैं। "विरोचन बुद्ध" एवं 'अक्षोभ्य' बुद्ध का सम्बन्ध वज्रयान से है जिन्हें छिन्ना एवं ताराशक्ति के सम्बन्ध में बताया गया है। विरोचन ही विकराल शिव का नामान्तर है अहिंसा धर्म के प्रचारक बुद्ध धर्म में बलिदान, श्मशान सेवनादि क्रियायें शाक्त धर्म से ही ली गई हैं। ज्ञानसिद्ध, प्रज्ञोपाय, विनिश्चय ग्रन्थ में इनका वर्णन स्पष्ट रूप में किया गया है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि बौद्ध तन्त्रों के अनुकरण शाक्त तन्त्र बने, उपहासास्पद ही है। अनेक शाक्त ग्रन्थों में बौद्ध जैनादि तन्त्रों का उल्लेख मिलता है जैसे षडायतन पूजन में चार्वाक जैन बौद्ध दर्शन भी लिये गये हैं, इसका कारण शाक्त तान्त्रिकों की समन्वयात्मक दृष्टि है, इसीलिये यहा यह भी ले लिया है, जैसे पुराणों में बृहस्पति, ऋषभ एवं बुद्ध को भी भगवदवतार मान लिया है, तथापि उनका आचार कहीं भी नहीं लिया है, यह वाद की कल्पना है। बौद्ध तन्त्र "साधन माला" में वज्रयोगिनी साधना में पृष्ठ ४५३ पर कहा गया है--

ओड्डियान पूर्णगिरि कामाख्या सिरिहट इत्यनेन पूजयेत्॥

ओड्डियान, पूर्णगिरि, कामाख्या, श्रीहट्ट आदि पीठों को बौद्धों ने मान लिया है। ये पीठ स्थान शाक्तमत के प्रमुख साधन स्थल हैं, बुद्ध धर्म में इनका कोई स्थान नहीं है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को शाक्त चर्चा का निषेध किया था, ऐसे भी प्रमाण मिलता है, तथापि अयोग्य और अनधिकारियों को ही उन्होंने ऐसा किया था, क्योंकि लोकोत्तर वस्तुओं को प्रदान करने वाली इस अर्चा से दुरुपयोग होकर अनर्थ की पूर्ण सम्भावना है, इसे बुद्ध जानते थे।

अहिंसा धर्म का समर्थक जैन धर्म भी पञ्चणमोकार मन्त्र को मानता है। जैन दर्शन नामक पुस्तक में पांच रूपों में इसका भी समन्वय किया गया है। जिसे मुनिविद्या विजय सूरि ने लिखा है। प्रसिद्ध "भैरव पद्मावती कल्प" नामक जैन तन्त्र में शाक्तों की सभी बातों को अङ्गीकार किया गया है। सरस्वती साधन जैन तन्त्र का सिद्धिप्रद अध्याय है। देवी स्तोत्र में शाक्तों की सभी शक्तियों का उल्लेख है। इस शक्तिसाधना से जैन शासन की सिद्धि बताई गई हैं। 'स्यादवाद मञ्जरी' के टीकाकर श्री हेमचन्द्राचार्य ने इसे स्वीकार किया है। 'पद्मावती कल्प' में शाक्तों की शक्ति उपसना एवं जैन मान्यता एक सी मानी गई है। जैसे --

तोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा काम साधिनी।
देव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुरा भैरवी॥

(प०क० ३)

भक्तामर स्तोत्र एक सिद्धिप्रद जैन स्तोत्र है, इससे मारण उच्चाटन आदि षट्कर्म की सिद्धियां बताई गई हैं इन बातों को देखते हुए पूर्ण निश्चय हो जाता है कि शाक्त धर्म का प्रभाव इन अहिंसक धर्मो पर भी पड़ा है। जैसे पञ्चबुद्ध की कल्पना बौद्धों ने की है, इसी प्रकार वायु पुराण पंचरात्र के आधार पर वैष्णवों ने भी पञ्चव्यूह की कल्पना की है, जिन्हें नारायण कृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कहते हैं इनकी इस कल्पना का आधार वेद नहीं पुराण है, जिसका अवैदिकत्व श्री

शंकराचार्य ने वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय दूसरे पाद के अन्तिम चार सूत्रों में दिखाया है। यह भी शैवों की उक्त कल्पना के बाद की कल्पना है इस मत में भी उपासना के तन्त्र हैं, वे सब के सब शाक्त तन्त्रों के अनुकरण पर ही बने हैं। श्री रामानन्दीय सम्प्रदाय में मुख्योपदेश राममन्त्र का होता है, यह मन्त्र तन्त्र का है, शारदा तिलक में इसका उपदेश दिया गया है। श्रीकृष्ण की उपासना में गोपाल मन्त्र की प्रधानता है, इसका सविस्तार निरूपण 'क्रमदीपिका' में किया गया है। 'क्रमदीपिका' विशद तन्त्र ग्रन्थ है, इसके संग्राहक श्री केशव काश्मीरी भट्ट हैं। श्री निम्बार्क मत के साधकों में इसका प्रचार है, मूल में गौतमी तन्त्र में इसका उपदेश दिया गया है, इसका आदि से अन्त तक शाक्त तन्त्र ही आधार है।

चैतन्य मत में भी तन्त्र माने जाते हैं। श्री नित्यानन्द तथा श्री चैतन्य श्री विद्या के उपासक थे, श्री रामानुजाचार्य का लिखा हुआ 'श्री भगवती नित्याराधन ग्रन्थ' शुद्ध तान्त्रिकी प्रणाली का ग्रन्थ है, जिससे श्री भगवान नारायण की आराधना इस मत में होती है। श्री वल्लभ मत में पञ्चरात्र एवं गोपाल मन्त्र की साधना होती है। श्री गोस्वामी हितहरिवंश के मत में यद्यपि कोई संस्कृत ग्रन्थ का आधार नहीं हैं, तथापि पूजन प्रकार तन्त्रों के अनुकूल ही है। हयशीर्ष, काश्यप संहिता सात्वत तन्त्र आदि ग्रन्थों तान्त्रिक प्रणाली के पूजन के निर्देशक हैं, जिन्हें श्री रामानुजीय श्री वैष्णव मानते हैं, इस प्रकार शैव शाक्तागम ही हिन्दू अहिन्दू सभी सम्प्रदायों में माने जा रहे हैं। शैव शाक्त क्रम

वैदिक है, इसलिये इसकी प्रचीनता एवं प्राथम्य में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

आचार्य भगवत् पाद के सिद्धान्त 'अद्धैतवाद' को भी बहुतों ने प्रच्छन्न बौद्ध मत बताया है, जिसे माध्यमिक मत के आचार्य नागार्जुन के शून्यवाद का रूपान्तर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। शून्य वाद का वर्णन माध्यमिक कारिका, महायान विंशक आदि शून्यवाद के ग्रन्थों में किया है, वही श्री शंकर के अद्वैतवाद का आधार है। श्री पं. विधुशेखर भट्टाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् पर लिखी हुई आचार्य गौडपाद की कारिकाओं की व्याख्या इसी भावना से की है, तथापि यह बात यथार्थ नहीं है। श्री शंकराचार्य का मत वही है जिसे काश्मीर के शैव एवं शाक्तों ने माना है, तथा वसुगुप्त एवं सोमानन्द आदि ने जिसका विस्तार किया है। शैवशाक्त अद्वैतवाद में परिणाम वाद पर जोर दिया गया है। श्री आचार्य शंकर ने विवर्तवाद मान कर केवल कार्यकारणवस्था में सत्य है, जगद अवस्था में मिथ्या है, इसका प्रधान रूप में प्रचार किया है। 'सौन्दर्य-लहरी' में आचार्य ने परिणामवाद को ही स्वीकार किया है। यह प्रत्याभिज्ञा शैवसिद्धान्त है। पाशुपत सूत्रों की भूमिका में शैवों के भेदों का निरूपण करते हुए श्री आर०एस० शास्त्री ने काश्मिरी शैवों के विषय में कहा है, - 'दि काश्मीर शैविज्म ऑन दि अदर हॅन्ड गेव मोर प्रोमीनेन्स टू उमा देन टु लार्ड शिव। वसु गुप्त एन्ड सोमानन्द वेयर दि फाउन्डर आफ दिस'।

अर्थात् कश्मीर के शैव श्री भगवान शिव की अपेक्षा श्री भगवती उमा को ही प्रधानता देते हैं, इस मत के संस्थापक वसु गुप्त एवं सोमानन्द हैं। शाक्त दर्शन का निर्माण यहीं हुआ है। 'प्रत्यभिज्ञा हृदय', 'तत्वसंदोह' 'पराप्रावेशिका', 'कामकला विलास' आदि ग्रन्थ इसी सम्प्रदाय में लिखे गये हैं। इस मत का विकसित रूप ही श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद है। श्री शंकराचार्य ने इसका कहीं खण्डन भी नहीं किया है। शंकर मत में श्रुति की प्रधानता है। आगम वचनों का प्रमाण छोड़ दिया गया है। काश्मीर के शैव आगम को मुख्यता देते हैं। काश्मीर के शैवों में विवर्तवाद भी माना है। श्री सिद्धनाथ ने 'अभेद कारिका' में कहा है--

वस्तुनो भावशून्यस्य त्वग्राह्यस्य निराकृतेः।
कल्पनामात्रमेवैतत् यच्छिवव्यपदेशनम्॥
नेत्थं विभोर्विवर्तोऽस्ति परिणामश्च न क्वचित्।
अथवा द्वयमप्यस्तु तथाप्यस्य न खण्डना॥

अर्थात अग्राह्य, आकृतिरहित भावशून्य वस्तु को शिवपद से व्यवहार करना भी एक कल्पना मात्र है, इस प्रकार विवर्त एवं परिणाम दोनों ही नहीं हो सकते अथवा दोनों ही हों, इसका हम खण्डन भी नहीं करते। इन दोनों मतों का प्रतिपादन 'संवित्प्रकाश' में किया है-

इति निर्मलवोधैकरूपे देहपरिग्रहः।
विवर्तपरिणामाभ्यां द्वाभ्यामप्युपद्यते।।
विवर्तेऽतथा रूपस्तथा भासित्वमच्युत।
परिणामे स एव त्वम् सुवर्णमिव कुण्डले॥

इस प्रकार निर्मलज्ञानैक स्वरूप में विवर्त और परिणाम दोनों प्रकार से सृष्टिकार्य बन सकता है। हे अच्युत! विवर्त में तुम अतथा रूप से भासित होते हो, जैसे रज्जू में सर्प और परिणाम में तुम वही हो, जैसे कुण्डल में स्वर्ण। ये दोनों बातें 'माण्डूक्यकारिका' में विस्तार एवं स्पष्ट रूप में गौडपाद ने स्वीकार की है। नागार्जुन ने अपने शून्य का लक्षण भी ऐसा ही किया है। शैव दर्शन प्राचीन होने से श्रुति-आगम सम्मत है, नागार्जुन ने केवल तर्क से ही इसे सिद्ध किया है तथापि यह शून्यवाद शैवों का ही अनुकरण है। श्री वातुलनाथ सूत्रों में भी शिव को शून्यकार में बतलाया गया है शून्य का अर्थ श्री अमृतानन्द नाथ योगी ने 'योगिनी हृदय' की टीका में ऐसा किया है- **शून्यकाराद् विसर्गान्तात् विन्दोः प्रस्पन्द संविदः (१-१०)** इस श्लोक की व्याख्या में कहा है- **शून्यत्वं पुनर्निरस्तानिखिलप्रपञ्चत्वात् अतएव परमशिवः।** समस्त प्रपञ्च से रहित परम शिव ही शून्यकार वाले हैं- प्रपञ्चोपशमं शिवं।

इस माण्डूक्योपनिषद् में भी शिव का स्वरूप उक्त प्रकार का ही बताया है यह उपनिषद् भी शैव सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करती है, इसमें स्पष्टतः कई बार शिवपद का नाम लिखा गया है, यह शिवतत्व भावाभाव विलक्षण है, यही वाङ्मनोऽगोचर शांकर अद्वैत है। आचार्य भगवत्पाद के मत में शिव विष्णु का भेद न होने से उनका मत एक प्रकार का समन्वयवादी मत है, तथापि, श्रुति की प्रधानता को अंगीकार करते हुए एक स्वतन्त्र शैवाद्वैत ही उनका मत है। शांकर मत के अनुयायी सन्यासी, गृहस्थ, ब्रह्मचारी आदि मुख्य रूप शिवशक्ति की ही उपासना करते हैं तथा उपासना के शैवशाक्त चिन्हों को धारण करते हैं।

उन्हें नागार्जुन मत का अनुकरण कर्ता कहना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं, प्रत्युत नागार्जुन ही इसके अनुकरण करने वालें हैं। शैवों के चौथे भेद का निरूपण करते हुये श्री आर. एस. शास्त्री लिखते हैं--

'दि फोर्थ सेक्ट हैड ओन्ली ए वे वेरी फ्यू लीडर्स फार दे वान्टेड टू अटैन सिद्धीज फार देमसेल्व्ज। श्री गोविन्द भवगत्पाद वाज बन हू फालोड दिस सेक्सन।' अर्थात चौथे प्रकार के शैवों में थोड़े आचार्य हुए हैं। उस विभाग में केवल सिद्ध लोग ही हुएँ हैं, इनमें गोविन्द भगवत्पाद मुख्य हैं, यही गोविन्द भगवत्पाद श्री शंकराचार्य के गुरु हैं। पहले के प्रमाणों से यह सिद्ध है कि शैव शाक्त मतों के सिद्धान्तों के अनुकरण पर बौद्धों तान्त्रिक मत बने हैं, इसी प्रकार शैव तत्व ज्ञान के अनुकरण पर ही नागार्जुन का शून्य मत है।

शाक्त दर्शन एवं उनकी पूजा पद्धति किसी के अनुकरण पर नहीं बनी हैं प्रत्युत इन्हीं का अनुकरण सबने किया है, यह एक सार्वभौम सिद्धान्त है, इसके इस समय भी सबसे अधिक प्रचार चिह्न संसार में मिलते हैं। श्री पाणिनी के सूत्रों में एक भी सूत्र बुद्ध मत पर नहीं है, क्योंकि बुद्ध पाणिनी के पश्चात् हुए हैं। 'शिवादिभ्यो अण्' (अ० ४-१-११२)

इस सूत्र के द्वारा पाणिनी ने यह प्रमाणित किया है कि शिव शब्द या शैव धर्म पहले का है। नागार्जुन ने अपनी माध्यमिक कारिका में भी शिव शब्द का प्रयोग किया है--

यः प्रतीत्य समुत्पादं प्रपञ्चपशमं शिवम्।
देशयामास सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदां वरम्॥

'प्रपञ्चोपशमं शिवम् पद माण्डूक्य उपनिशद' से लिया गया है, ऐसी अवस्था में शांकर अद्धैत किस प्रकार बुद्ध मत के अनुकरण पर है, इसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। यह अवश्य है कि शून्यवाद एवं शांकर अद्वैतवाद में बहुत युक्तियां एक-सी प्रयुक्त हुई हैं। अतः बहुत अंशों में साम्य है तथापि शांकर सिद्धान्त श्रोत है इसलिये नागार्जुन का अनुकरण नहीं हो सकता, प्रत्युत नागार्जुन का मत ही शैव सिद्धान्त के अनुकरण पर है।

उपर्युक्त बहिरंग बातें लिखने का यही प्रयोजन है कि शाक्य साधना पर बहुत ही भ्रान्त धारणायें लोगों में प्रचलित हैं तथा अविचारक लोग इस समय भी उनका प्रचार कर रहे है। उनका निराकरण होना आवश्यक है नहीं तो साधना तत्व के निरूपण के प्रसंग पर इन बातों की आवश्यकता ही क्या है? अतः संक्षेप में श्री भगवती की साधना विधि को लिखकर अब इस विस्तार से उपरत होना ही ठीक है। श्री भगवती छिन्नमस्ता जी की साधना इस प्रकार करनी चाहिये- सर्वप्रथम प्रातःकाल शैय्या से उठकर सहस्त्रार में स्थित श्री के गुरू का ध्यान मानसिक पूजन एवं गुरूपादुका मन्त्र या वाग्भव बीज जपपूर्वक १०८ बार जप करना चाहिये। अनन्तर षोडशी मूलमन्त्र अथवा कूर्चबीज का १०८ बार जप ध्यानपूर्वक करे, तदनन्तर स्नान-सन्ध्या आदि आवश्यक कृत्य से निवृत्त होकर पद्धति के अनुसार पूजन करे। इनके दो प्रकार के पूजन यन्त्र हैं-१) गृहस्थों के लिये तथा २) यतियों के लिये। त्रिकोण, इसके बाद

तीन मण्डल, उसके ऊपर योनि चक्र, तीन द्वारों से युक्त, बाहर अष्टदल भूपुर की तीन रेखायें, मध्य मे 'हूँ' बीज, तीनों कोणों में 'हूँ फट्' इन वर्णों को लिखना चाहिये, मध्य में श्री छिन्नमस्ता जी का दीपज्योति के सदृश ध्यान करना चाहिये। यह यतियों का ध्यान है।

गृहस्थों को, स्वशरीर नाभि-मण्डल में शुभ्र कमल पर निर्गुण स्वच्छ चन्द्रमा की कान्ति सदृश कलातीत, गुणातीत ध्यान करना चाहिये। इसके बाद शंख स्थापन आदि क्रियायें तारा विद्या के तुल्य ही करें। षोढान्यास, वज्रान्यास,, इस साध ना में अत्यन्त आवश्यक है। एकाक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर, पंञ्चाक्षर, षडक्षर, त्रयोदश, चतुर्दश, पंचदश, षोडश तथा सप्तदश कलातीत मन्त्रों का अभ्यास क्रम से करना चाहिये। अष्ट दशाक्षरी, एकोनविंशत्यक्षरी विद्या भी पूर्णता देने वाली है, तथापि इन्हें कोई-कोई ही जपते है इनके पूजन में पशु-बलिदान नित्य ही आवश्यक है। यति अनुकल्प से कर सकते हैं। इनका रात्रि-पूजन वामाचार का है, यही प्रधानतः सिद्धि-प्रद है। श्री तारा के मन्त्र एवं दक्षिणा-काली के मन्त्र भी पूरक रूप में जपे जाते हैं। इस प्रकार सतत श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक अनुष्ठान करने से श्री भगवती सभी हितों को पूर्ण करती है।

॥ ॐ शम् ॥

१६. एक समाधान

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृन्मरुतमाकाशमुपरि।।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।

अर्थ - हे कुण्डलिनी स्वरूपे भगवति ! मूलाधार में पृथिवी, मणिपूर में जल, स्वाधिष्ठान में अग्नि, अनाहत में वायु, विशुद्धि में आकाश, भ्रूमध्य में मन-कुलपथ के इन चक्रों को भेदकर सहस्रार में परम शिव के साथ एकान्त विहार करती हो (सौन्दर्यलहरी) इस पद्य में मूलाधार के बाद मणिपूर स्वाधिष्ठान के स्थान में कहा गया है तथा स्वाधिष्ठान के स्थान में मणिपूर बताया गया है। यह प्रकार प्रायः योग ग्रन्थों में एवं तान्त्रिक पद्धतियों में नहीं मिलता। इस पर यह जिज्ञासा होती है कि आचार्य भगवत्पाद ने ऐसा क्यों लिखा है? वामकेश्वर तंन्त्र में स्वाधिष्ठान में अग्नि का वास माना जाता है-

वाय्वाघात वशादग्निः। स्वाधिष्ठान गतो ज्वलन्।।
ज्वलनाघात पवनाघातैः। रुन्निद्रितो ऽहिराट्।।

वायु के आघातवश स्वाधिष्ठान में रही हुई अग्नि जल उठती है। इसके आघात से कुण्डलिनी जाग जाती है।

"मणिपूरैक वसतिः प्राविषेण्यः सदाशिवः।"

इस वाक्य में मणिपूर में जल की स्थिति मानी गयी है। समयाचार का साधन भी इसे स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त श्रीविद्या के उपासना क्रम में ऊर्ध्वाम्नाय का प्रकार साधना मार्ग के चरम विकास का स्वरूप है। इस क्रम में

मायाजन्य भेद-भ्रान्ति का पूर्ण रूप से निराश होता है और साधक अद्वैतानुभव की अवस्था में पहुंचकर कृतकृत हो जाता है। आचार्य भगवत्पाद ने इसी क्रम के अनुसार सौन्दर्यलहरी की रचना की है। शक्ति संगम में क्रम साधना की तीन शक्तियां ही प्रधान रूप से मानी गई है, जिन्हें इस प्रकार कहा गया है।

सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी।
क्रमे पूर्णे महेशानि क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति॥

श्री शंकर श्री देवी से कहते हैं कि श्रीसुन्दरी, तारिणी एवं काली ही क्रम की पूर्णता करने वाली शक्तियां हैं। श्रीसुन्दरी का क्रम इस प्रकार बताया गया है --

चद्राग्निपक्षषोढाख्यपरा निर्वाणतत्परा।
षट्शाम्भवं ततो देवि चक्रसम्भेदमेवच॥
स्वचक्रदेहविज्ञाप्नं परकाय प्रवेशनम्।
एतज्ज्ञानाद्भवेन्मेधा दीक्षा प्रोक्ता मया तव॥
हादाविदं निगदितं श्रुणुकादी महेश्वरि।

(श०कालीखण्ड १६-२४)

इस क्रम दीक्षा प्रकार में षट्शाम्भव का क्रम ऊर्ध्वाम्नाय में आता है। षट्चक्रों में इस क्रमानुसार जो पञ्चतत्वों की रश्मियों का न्यास किया जाता है, उसमें जलीय रश्मियों का न्यास मणिपूर में एंव आग्नेय रश्मियों का न्यास स्वाधिष्ठान में होता है। पूजारत्न ग्रन्थ के १४ वें मयूख में इसे इस प्रकार कहा गया है।

शाम्भवक्रमे स्वाधिष्ठानमणिपूरयोः व्यत्यय।

इसी के अनुसार श्री पं० नरसिंह ठक्कुर ने सौन्दर्य लहरी के **'तव स्वाधिष्ठाने हुतवहम्'** इत्यादि ३८ वें श्लोक की व्याख्या में **'शाम्भवक्रमे स्वाधिष्ठान मणिपूरयोः स्थलवैपरीत्यम्'** कहा है। इन लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य भगवत्पाद ने स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर में जो प्रसिद्ध क्रम का परिवर्तन करके लिखा है, वह शाम्भव क्रमानुसार है। इसके अतिरिक्त अनेक टीकाकारों ने जो भिन्न भिन्न इस पर कल्पनायें की हैं, वे संगत नहीं हैं। यह विषय हादिक्रम का होने से आचार्य ने इसलिये हादि विद्या की प्रधानता अङ्गीकार कर "शिवः शक्तिःकामः" इत्यादि ३२ वें श्लोक में हादि विद्या का ही प्रधान रूप से उद्धार किया है। इस प्रकार जिज्ञासा का समाधान चारुरूप से हो जाता है।

॥ ॐ शम् ॥

१७. तान्त्रिक पंचांग

आज कई वर्षों की बात है कि एक साधक श्री पीताम्बरा जी के दर्शनार्थ आये थे। कुछ दिन पीठ स्थान पर ठहर कर उन्होंने विश्राम भी किया था। उस समय प्रतिदिन साधना सम्बन्धी चर्चा के साथ साथ अन्य शास्त्रीय विषयों पर विचार हुआ करता था। वे श्री विद्या के उपासक एवं पूर्ण निष्ठावान पुरुष थे। श्री भास्करराय की परम्परा में ग्वालियर के किसी सुयोग्य महाराष्ट्रीय साधक से उन्होंने पूर्ण दीक्षा प्राप्त की थी। उपसना की अन्य क्रियाओं के साथ साथ वे पारायण भी करते थे। उनके पास तान्त्रिक पञ्चाङ्ग तथा सौभाग्य तन्त्र की एक लिखित प्रति भी थी। इन दोनों ग्रन्थों की एक-एक प्रतिलिपि कर यहां (पीठ स्थान पर) भी रख ली गयी। तभी से प्रत्येक तान्त्रिक वर्ष के आरम्भ में पञ्चाङ्ग की एक प्रति लिख ली जाती और उसी के अनुसार पूजा आदि के संकल्प कर लिये जाते रहे हैं। इस तान्त्रिक पञ्चांगके अहर्गण आदि की साधना शकसंवत् १७८० में की गई है, जिसे कई वर्ष हो रहे हैं। इतने दिनों में इसकी गणना वार आदि में बहुत ही कम अन्तर पड़ा है, जो कि आश्चर्यजनक ही है, क्योंकि लिखित परम्पराओं में ऐसा न होना अर्थात् अन्तर का न होना अनिवार्य नहीं है। विचार हुआ कि यह पंचांग अन्य पञ्चांगों की तरह यदि छपा दिया जावे तो साधकों का इससे लाभ ही होगा। इसके लिये श्री पं० रमादत्त जी शुक्ल से राय ली गई, तो आपने इसे सहर्ष प्रकाशित करने का वचन दिया एवं ठीक समय पर प्रकाशित करके प्रकट कर दिया। यह विषय बिल्कुल नवीन था। बड़ी प्रसन्नता की बात है। कि इस विषय के कई पारदर्शी विद्वानों ने इस विषय पर अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान की। मद्रास से डा०

श्री आर०बी० दुवे महाशय का एक बहुत बड़ा स्पष्ट प्रमाण गर्भित पत्र श्री पं० रमादत्त जी शुक्ल के द्वारा प्राप्त हुआ जिसमें परशुराम कल्पसूत्र की टीका के अनुसार अहर्गण आदि की गणना की रीति से पञ्चांग का प्रकार बताया गया है। इस रीति के अनुसार तान्त्रिक पञ्चांग की अहर्गण की संख्या में सात दिन का अन्तर आता है। श्री डाक्टर साहब ने विद्या एवं महाविद्या की गणना में तान्त्रिक पञ्चांग की भूल को भी सूचित कर बहुत ही शुभ सूचना दीं, जिसे अग्रिम अंक में सुधार दिया गया है। इन्हीं जटिल बातों के निर्णयार्थ कुलमार्तण्ड पं० योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी के पास भी एक प्रति पञ्चांग की भेजी, जिससे इसके विषयों पर आप प्रकाश डालें। संवत् २०१५ की कार्तिक एवं मार्गशीर्ष मास की 'चण्डी' में तांत्रिक पञ्चांग नाम से आपका अध्ययनपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें श्री शास्त्री जी ने पञ्चांग के सभी विषयों को सांग पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है। कुछ बातें स्पष्ट करने के लिये यह लेख लिखा जा रहा है, जिन्हें अन्य साधकों ने पूछा हैं। आशा है इससे उसका समाधान अवश्य ही होगा।

अहर्गण की साधना और उसके प्रमाण -

कलेरारम्भदिवसात् वर्तमान दिनावधिः।
अहर्गणस्य विज्ञानं तन्त्रमित्यभिधीयते।।

(श०का०३)

अर्थात् कलि आरम्भ से वर्तमान दिवस गणना पर्यन्त अहर्गण के विज्ञान को तन्त्र कहते हैं। इसीके अनुसार सौभग्य तन्त्र के प्रथम पटल में यह विज्ञान बताया गया है तथा इसका सार लेकर पुस्तक के अन्त में इस प्रकार निर्देश किया गया है जिसे हिन्दी में दिया

जाता है, जिससे वर्तमान ३ ख युग १८ थं परिवृत्ति वाले पांचवे वर्ष शुद्ध विद्या वर्ष के अहर्गण की संख्या बन जाती है। वर्तमान शक (१८८१) संवत् में १७८१ को घटाकर शेष में ११३२३ से गुणा करने पर जो अंक आवें, उनमें ३१ का भाग देना चाहिये। भाग के लब्धयंक में गत संक्रांति के ध्रुवांक को जोड़ना तथा उससे जो अंक आवें, उनमें वर्तमान संक्रांति के वर्तमान गत अंश को मिलावें। तदन्तर १८११६९१ में जोड़ने से शुद्ध अहर्गण आते हैं। १२ संक्रातियों के ध्रुवांक इस प्रकार दिये गये हैं। ३१ मेष, ६२ वृष, ९४ मिथुन, १२५ कर्क, १५६ सिंह, १८७ कन्या, २१७ तुला, २४६ वृश्चिक, २७६ धनु, ३०५ मकर, ३३५ कुम्भ, ३६५ मीन। इस संक्रातियों में कुछ अंश भी लिये जाते हैं तथापि तान्त्रिक क्रम में ऐसा नहीं होता अर्थात् उक्त पूर्व के ध्रुवांकों से ही हिसाब लगाया जाता है।

वर्तमान शक १८८१ में से १७८१ घटाने से १०० बचे, उसमें ११३२३ का गुणा करने से ११३२३०० हुए, इसमें ३१ का भाग देने से ३६५२५ लब्ध हुए। इसमें गत संक्रान्ति सिंह के १५६ ध्रुवांक मिलाने से ३६६८१ हुए। १८११६९१ मिलाने से १८४८३७२ हुए। वर्तमान संक्रान्ति कन्या के गत अंश १२ मिलाने से १८४८३८४ संख्या पर यह वर्ष पूर्ण होता है। गत वर्ष के अहर्गण १८४७८०८ में ५७६ दिन के जोड़ने से भी उक्त १८४८३८४ संख्या ही आती है युग परिवृत्ति आदि के जोड़ने से भी उक्त अहर्गण आते हैं। जैसे-जैसे २ युग की ७२ परिवृत्ति एवं १७ परिवृत्ति जोड़ने से ८९ हुई। उनमें ३६ का गुणा करने से ३२०४ वर्ष हुए। वर्ष में ५७६ का गुणा

करने से १८४५५०४ दिन हुए। शेष चार वर्षों के दिन २८८० मिलाने से १८४८३८४ होते हैं। उस दिन १९५९ ई० के सितम्बर मास की तारीख ३० है तथा दिन बुधवार है। इस प्रकार आगामी ङं नामक षष्ठमायातत्वात्मक वर्ष का आरम्भ निम्न तालिका के अनुसार होता है-

अहर्गण वारादि के प्रमाण सौभाग्य तन्त्र प्रथम पटल में इस प्रकार दिये हुए हैं- 'वर्ष शेषं रसगुणैर्भक्ते मासास्तु ते गता।' अर्थात् अहर्गण की संख्या में ३६ का भाग देने से गत मास ज्ञात होते हैं। ३६ दिन का मास होता है, जो कि ३६ वर्ष रूप ३६ तत्वों का बोधक है।

'सप्तभक्ते तु शुक्रादिः स्यात्' - ७ का भाग देने से शुक्रादि वार आते हैं। इस मत में दिवस गणना शुक्रवार से होती है। 'उदयं पञ्चभिर्हते' अहर्गण की संख्या में पांच का भाग देने से घटी का उदय होता है। 'नवभिर्नववासराः' नव से भाग देने से प्रकाशानन्दादि नाथात्मक वार आते हैं। 'षोडशभिः षोडशाख्य नित्या पर्याय नामतः' -- १६ से भाग देने पर षोडश नित्या के नाम से प्रसिद्ध षोडश मास आते हैं। 'त्रिंशत्तिथिफलप्रदः (३ पटल) ३० का भाग देने से नित्या का ज्ञान होता है।'

'शेष रसाद्रि इषुहते वर्षाणि' -- ५७६ से भाग देने पर वर्ष, १० से भाग देने पर विद्या एवं १०० से भाग देने पर महाविद्या का ज्ञान होता है। इन्हीं नियमों के अनुसार आगामी षष्ठ (६) माया तत्वात्मक वर्ष की उक्त तालिका दी गयी है। छपे हुये तान्त्रिक पंचाङ्ग में १८४८३८४ के जगह पर ८५ छपा है। इसके अनुसार आगामी वर्ष ८६ के अंक से होना चाहिए, परंतु उक्त हिसाब से यह

भूल मालूम होती है। पहले के लिखित पंचाङ्गों में ऐसा ही लिखा आ रहा था। इसलिये लिख दिया गया, अर्थात १ दिन अधिक जोड़ा जाता रहा है, परंतु नित्या आदि का हिसाब शुद्ध अहर्गण से ही होता रहा है। ऐसा क्यों हुआ, इसे ठीक नहीं कहा जा सकता।

कदाचित् इसमें कोई गोपनीयता का रहस्य हो सकता है तथापि हिसाब से अशुद्ध ही समझना चाहिए (१ दिन बढ़ाकर लिखना और हिसाब में उसकी गणना नहीं होती है) अन्तिमषोडश अः नामक मास मे 'परापरमयी' महाविद्या में वर्ष की समाप्ति होती है। ऐसा तान्त्रिक पंचाङ्ग में छपा है, परंतु अहर्गण की संख्या में १०० का भाग देने से ८४ बचते जिससे नवीं महाविद्या, 'माता' आती है। यह भी पहले से ही आ रहा है। शिव नामक प्रथम वर्ष में यह अव्यवस्था हो गयी है। इसलिये साधकों को इसे सुधार लेना चाहिए अन्य बातें ठीक आती हैं, जो उक्त तालिका में समझने के लिये दी गयी हैं। श्री महात्रिपुर सुन्दरी के उपसकों में रस पंचांग का उपयोग होता हैं। कुल मार्तण्ड श्रीमान् पं० योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी ने श्री काली के उपासकों के लिये भी वार एवं नित्या के भेद से पारायण का प्रकार बताया है। कालीखण्ड श्री शक्ति संगम में यह विषय आया है। 'थियोसोफीकल पब्लिसिंग हाऊस, अडयार' मद्रास से छपे हुए अनपब्लिश्ड 'उपनिषद' के गुटके में शैव उपनिषदों में एक पारायणिक उपनिषद है। उसमें पारायण क्रिया में काली द्वाविंशाक्षरी विद्या का उल्लेख किया गया है। इस क्रम में भी विद्या, महाविद्या का प्रकार है जिसे ध्यान एवं मन्त्रोद्धार पूर्वक शक्ति संगम तन्त्र सुन्दरी खण्ड की इंग्लिश भूमिका में दिया गया है। इस

प्रकार से श्री काली उपासकों के लिये भी पंचाङ्ग का उपयोग हो सकता है। काली के वार एवं नित्याओ के नाम तान्त्रिक पंचाङ्ग नाम क लेख में श्री शास्त्री जी ने दिये हैं। उन्हें जान लेना चाहिए। श्री डा० आर० बी० दबे महाशय ने तो क्रम पंचाङ्ग का लिखा हैउसमें तान्त्रिक पंचाङ्ग से ७ दिन का अन्तर आता है। अहर्गण की संख्या तो एक ही है अर्थात् शुद्ध विद्या वर्ष का आरम्भ १८४७८०९ से ही है तथापि उसका आरम्भ तान्त्रिक पंचाङ्ग में फाल्गुन शुक्ल १४ तदानुसार ४ मार्च सन् १९५९ ई० को होता है। डॉक्टर साहब ने चैत्र कृष्ण ६ मंगलवार ११ मार्च सन् १९५८ ई० को बताया है। यह भी देखने में ठीक ही प्रतीत होता है। श्री विद्या नित्याह्निक में दिए १३ श्लोकों से यह बनाया गया है। परशुराम कल्पसूत्र की टीका में भी इसके आधार हैं। तान्त्रिक छठे वर्ष की गणना जो दी गयी है वह सौभाग्य तन्त्र के अनुसार ठीक ही बैठती है। ऐसी परिस्थिति में साधकों को जो रूचिकर प्रतीत हो उसे अपनायें क्योंकि दोनों प्रकारों का आधार भिन्न है। अन्त में इस विषय पर योग्य सम्मति देने वाले साधक महाशयों को सधन्यवाद लेख को समाप्त करते हुए श्री जगदम्बा से सबके कल्याण की कामना करता हूं।

॥ ॐ शम् ॥

१८. श्री रमा पारायण

श्री, रमा, कमला, महालक्ष्मी आदि नामों से साधना शास्त्र में कही जाने वाली महाशक्ति सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि महत्व की वस्तुओं को प्रदान करने में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। इसलिये जगन्माता के प्रमुख दश रूपों में महाविद्या संज्ञा से कही जाती हैं।

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।" ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है, जो शब्द ब्रह्म से प्रकाशित नहीं होता। अर्थात् सभी तत्व शब्द द्वारा ही स्वरूप लाभ करते हैं। इसलिये रमा के स्वरूप ज्ञान के लिये कमला विद्या का मंत्र इस प्रकार बताया गया है, जिससे उसका स्वरूप प्रकट होता है--

वातं वह्निसमारूढं वामनेत्रेन्दु संयुतम्।
बीजमेतच्छ्रियः प्रोक्तं चिन्तारत्नामिवापरम्॥

(श्रीं)

इस मन्त्र के द्रष्टा भृगु ऋषि निवृच्छन्दः तथा श्री देवता है।

"ध्यानं विना भवेन्मूकः" -- ध्यान के बिना साधक मूक के सदृश है। जिससे उपास्य तत्व अपने समस्त गुणों को प्रकट कर साधक के अभीष्ट को पूर्ण करता है, उसे ध्यान के द्वारा कहा जाता है। स्वर्ण समान कान्तिवाली, चार श्वेत हाथियों द्वारा सूंड में धारण किये हुए सोने के चार घड़ों से अभिषिक्त होती हुई, दो हाथों में दो कमल एवं दूसरे दो हाथों में वराभय धारण किये हुए, सुन्दर मुकुट एवं क्षौम वस्त्र धारण किये, सुन्दर कमलासन पर आसीन श्री रमा का ध्यान करना चाहिए।

जप, पूजन, होम आदि शास्त्रीय विधान के अनुसार पुरश्चरण करके श्री का साक्षात्कार साधक को प्रथम करना चाहिये। यहाँ पर तो केवल श्री रमा पारायण कैसे करना चाहिये, इसे ही लिखा जायेगा, क्योंकि मन्त्र के वैशिष्ट्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिये पारायण अवश्य ही कर्तव्य होता है। पारायण संकल्प की प्रतिदिन की प्रक्रिया 'तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के नियम' में बताई गयी है। उसे जानकर ही सिद्धि होती है, क्योंकि काल ही समस्त सिद्धि का हेतु है। अतः उसे जान लेना परमावश्यक है। सौभाग्यतन्त्र में यह विषय इस प्रकार बताया गया है। जिसके श्लोकों का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है।

अब तैतीसवाँ रमा पारायण कहता हूँ, जिसको करके साधक कुबेर के सदृश हो जाता हैं। साधक अपना नित्य कर्म करने के पश्चात एकान्त पवित्र स्थान में पारायण का संकल्प करे। भूत शुद्धि एवं भू शुद्धि करने के पश्चात् ऋष्यादिन्यास करे। हृदय मार्ग में स्फुरित होती हुई श्री रमा का ध्यानोक्त विधिसे चिन्तन करे। मानसिक पूजन के पश्चात् योनिमुद्रा से प्रणाम करें। इसके पश्चात् प्राणायाम करके पारायण का जप आरम्भ करे। ४ अं श्रीं आं श्रीं से आरम्भ कर क्षं श्री छत्तीस वर्णों की षोडश स्वर के क्रम से जोड़कर इस क्रम से जपे।। ५७६९२१६ संख्या पारायण की होती है। ९७९२।। इस प्रकार तन्त्र शास्त्र को जानने वालों में रमा देवी के पारायण की विधि सूचित की है।।७।। अपने इष्ट सिद्धि की कामना के लिये गुरुमुख से अभ्यास करना चाहिये।।८।। अब भुवनेश्वरी ३४ वाँ पारायण

लिखता हूँ। यह जो पारायण का आचरण है वह मन्त्र सिद्धि का देने वाला है। विशेषता पूर्वक समझकर रमा बीज के स्थान पर भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) को जोड़ना चाहिये। रमा पारायण के सदृश ही भुवनेश्वरी पारायण करना चाहिए। अब कामेश्वरी का ३५ वाँ पारायण कहता हूँ। महादेवी का यह पारायण संसार को आनन्द प्रदान करने वाला है। यहाँ भी रमा बीज के स्थान में कामेश्वरी देवी का बीज (कल्रीं) लगाना चाहिए। शेष रमा पारायण की तरह ही विधि करनी चाहिए। ।।९७९२।। इसको कामेश्वरी का प्रसाद नामक पारायण कहा जाता है। जिसके प्रभाव से साधक सम्पूर्ण भोगों को भोगने वाला होता है तथा सर्व सिद्धि को प्राप्त होता है।।१३।।

इस प्रकार ये तीनों पारायण क्रम से करने चाहिए।

१-- अ अं श्रीं से अ अः श्रीं तक बराबर = १६,
क अं श्रीं से क अः श्रीं तक = १६,
ख अं श्रीं से ख अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

२-- अ अ अं श्रीं से अ अ अः श्रीं तक बराबर = १६,
क अ अं श्रीं से क अ अः श्रीं तक = १६,
ख अ अं श्रीं से ख अ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

३-- अ आ अं श्रीं से अ आ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क आ अं श्रीं से क आ अः श्रीं तक = १६,

ख आ अं श्रीं से ख आ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

४-- अ इ अं श्रीं से अ इ अः श्रीं तक बराबर= १६,

क इ अं श्रीं से क इ अः श्रीं तक = १६,

ख इ अं श्रीं से ख इ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

५-- अ ई अं श्रीं से अ ई अः श्रीं तक बराबर= १६,

क ई अं श्रीं से क ई अः श्रीं तक = १६,

ख ई अं श्रीं से ख ई अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

६-- अ उ अं श्रीं से अ उ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क उ अं श्रीं से क उ अः श्रीं तक = १६,

ख उ अं श्रीं से ख उ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

७-- अ ऊ अं श्रीं से अ ऊ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ऊ अं श्रीं से क ऊ अः श्रीं तक = १६,

ख ऊ अं श्रीं से ख ऊ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

८-- अ ऋ अं श्रीं से अ ऋ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ऋ अं श्रीं से क ऋ अः श्रीं तक = १६,

ख ऋ अं श्रीं से ख ऋ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

९-- अ ॠ अं श्रीं से अ ॠ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ॠ अं श्रीं से क ॠ अः श्रीं तक = १६,

ख ॠ अं श्रीं से ख ॠ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१०--अ लृ अं श्रीं से अ लृ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क लृ अं श्रीं से क लृ अः श्रीं तक = १६,

ख लृ अं श्रीं से ख लृ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

११--अ ॡ अं श्रीं से अ ॡ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ॡ अं श्रीं से क ॡ अः श्रीं तक = १६,

ख ॡ अं श्रीं से ख ॡ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१२--अ ए अं श्रीं से अ ए अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ए अं श्रीं से क ए अः श्रीं तक = १६,

ख ए अं श्रीं से ख ए अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१३--अ ऐ अं श्रीं से अ ऐ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ऐ अं श्रीं से क ऐ अः श्रीं तक = १६,

ख ऐ अं श्रीं से ख ऐ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१४--अ ओ अं श्रीं से अ ओ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क ओ अं श्रीं से क ओ अः श्रीं तक = १६,

ख ओ अं श्रीं से ख ओ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१५--अ औ अं श्रीं से अ औ अः श्रीं तक बराबर = १६,

क औ अं श्रीं से क औ अः श्रीं तक = १६,

ख औ अं श्रीं से ख औ अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१६--अ अं अः श्रीं से अ अं अः श्रीं तक बराबर = १६,

क अं अः श्रीं से क अं अः श्रीं तक = १६,

ख अं अः श्रीं से ख अं अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार क्षं तक ३६X१६ = ५७६।

१७--अ अः अं श्रीं से अ अः अः श्रीं तक बराबर = १६,

क अः अं श्रीं से क अः अः श्रीं तक = १६,

ख अः अं श्रीं से ख अः अः श्रीं तक = १६,

इसी प्रकार ३६ X १६ = ५७६।

इसी प्रकार एकत्र ५७६ X १७ = ९७९२।

सूचना -- इसी प्रकार भुवनेश्वरी पारायण, कामेश्वरी पारायण भी किये जाते हैं एवं ये तीनों पारायण एक साथ होते हैं।

॥ ॐ शम्॥

१६. श्री अक्षर अनन्य का वेदान्त ज्ञान

भारतवर्ष में तत्वज्ञान सम्बन्धी विचार बहुत प्राचीन समय से चले आ रहे हैं। वैदिक काल में भी इसके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं। वैदिक संहिता ग्रन्थ, ब्राह्मण उपनिषदों में अध्यात्म विषय के उल्लेख रहस्यमय रूप से किये गए हैं। पुराण, इतिहास तथा तन्त्र ग्रन्थों में तो बहुत ही परिष्कृत रूप में इसका निरूपण मिलता है। इस ज्ञान की प्राप्ति निवृत्ति मार्ग से प्रधान रूप से की जाती रही है। अभी तक साधु संन्यासियों की जो परम्परा प्रचलित है, उससे त्याग वैराग्य की भावना सहित वेदान्त या अध्यात्म तत्व का सम्बन्ध अविच्छेद रूप से ज्ञात होता है। इन नियमों के अपवाद भी हैं, बहुत से गृहस्थ मार्ग का पालन करते हुए भी ब्रह्म निष्ठ स्वीकार किये गये हैं। इस विषय में वशिष्ठ जनक और श्रीकृष्ण के निदर्शन दिये जाते हैं। जब से बुद्ध भगवान के उपदेशों का प्रचार हुआ, तब से निवृत्ति मार्ग का प्रचार प्रधान रूप से हो गया, और अध्यात्म प्राप्ति का एक मात्र साधन निवृत्ति मार्ग (त्याग, वैराग्य प्रधान) ही माना जाने लगा। बाद के आचार्य श्री शंकर, रामानुज आदियों ने भी इसी सरणि का अवलम्बन किया। समन्वयात्मक पद्धति के मानने वालों का भी सर्वथा अभाव नहीं रहा। निवृत्ति के आवेश में आकर प्रवृत्ति मार्ग को सर्वथा व्यर्थ बताने की शैली का बीज भगवत् गीता में न होने से निष्काम कर्मयोग द्वारा ब्रह्मनिष्ठा की सिद्धि होने से प्रवृत्ति मार्ग का उपदेश भी विशद हो गया है। वास्तव में जीव जगत और ब्रह्म इनका परस्पर सम्बन्ध और स्वरूप का विचार ही अध्यात्म शास्त्र के

मुख्य विचारणीय विषय हैं। निवृत्ति तथा प्रवृत्ति ब्रह्म प्राप्ति के साधन मात्र हैं अधिकारी एवं दृष्टि भेद से दोनों ही मार्ग अपने अपने स्थान पर उपयुक्त हैं। उनमें किसी को अनुपयुक्त कहना असंगति है। अधिकार भेद से यह आध्यात्मिक विचारद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत इन चार श्रेणियों में विभक्त है। द्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत यह तीनों विचार एक प्रकार से द्वैत के अन्तर्गत हैं। अन्तिम कोटि तो अद्वैत की ही है, जिनका संक्षेप में यह मन्तव्य है कि नाम रूप भेद से भिन्न यह सारा दृश्य जगत ब्रह्म की माया शक्ति का कार्य है, यह वास्तव में सत्य नहीं है। अंधेरे में पड़ी रस्सी को जैसे साँप मानकर भ्रम हो जाता है तथा भय से मनुष्य के अन्दर कम्प होने लगता है ऐसे ही यह सारा जगत मिथ्या प्रतीत होता है, सत्य केवल ब्रह्म है, और जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। इसलिये सत्ता एक ब्रह्म की है। जीव-जगत की सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं है, जैसे रस्सी का साँप रस्सी से भिन्न नहीं है। एक ही तत्व होने से इसे अद्वैत के नाम से पुकारा जाता है इसे विवर्तमार्ग भी कहते है। दूसरा अद्वैत का एक प्रकार और है, जिसे शैवागम ग्रन्थों में माना गया है। सांख्य शास्त्र में पुरुष और प्रकृति दो तत्व माने गये है। दोनों तत्व निरपेक्ष, स्वतन्त्र होने से जगत निरपेक्ष कार्य करने में असमर्थ हैं। इसलिये उक्त द्वैत और सांख्य द्वैत के बीच में समन्वयात्मक एक श्रेणी तत्व विचार की और मानी गयी है, जिसमें पुरुष और प्रकृति का मूल में अभेद मानकर अद्वैत बताया गया है। उक्त अद्वैत से यह विलक्षण है, क्योंकि इस मत में कोई पदार्थ मिथ्या नहीं है जैसे सोने के आभूषण सोने से भिन्न न होने से

एक ही हैं और आभूषण रूप से भिन्न होने से लौकिक व्यवहार के हेतु हैं तथा सत्य हैं। इस मत में कोई वस्तु मिथ्या न होने से तथा कार्य-कारण सम्बन्ध नित्य होने से कारणावस्था में भी कार्य की स्थिति है, जैसे दूध की अवस्था में दही न हो तो दहीं नहीं बन सकता। इस क्रम को परिणामवाद कहते हैं। जगत जीव अपने स्वरूप से ब्रह्म में रहने से अद्वैत है, तथा कार्य रूप से जगत होने से व्यवहार का हेतु है। केवल भेद मात्र झूठ है। पदार्थ सब सत्य है। संक्षिप्त रूप से ये अद्वैत के दो प्रकार माने जाते है।

अध्यात्म विद्या का यही लक्ष्य है इसी की प्राप्ति के लिये कर्मयोग, भक्ति, उपासना तथा योगाभ्यास आदि उपाय बताये गये हैं। जब साधक अद्वैतनिष्ठ हो जाता है तब सारे भेद भाव, ऊँच, नीच, जाति भेद और वर्णाश्रम के कृत्यों को करने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि यह सारे भेद अविद्या से बने हुए हैं। उक्त अद्वैत विद्या की प्राप्ति होने पर जैसे प्रकाश से अंधेरा नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार द्वैत से होने वाले सारे भेद नष्ट हो जाते हैं, और साधक कृतकृत्य हो जाता है। ऐसे ही महापुरुषों को 'सिद्ध' संज्ञा प्रदान की जाती है। प्रस्तुत लेख में जिस महात्मा के सिद्धान्त के विषय में चर्चा की जा रही है, वह भी सिद्ध एवं अद्वैत निष्ठा को प्राप्त किये हुये थे। उन्होंने अपने जीवन में जगत कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया था, तथा अधिकारी पुरुषों को तत्व उपदेश प्रदान कर कल्याण मार्ग को बताया था। लोक में 'अक्षर अनन्य' एवं 'अनन्य' के नाम से उनकी प्रसिद्धी है। उनके लिखित 'वेदान्त

तत्व दर्शन' नामक ग्रन्थ से कुछ उदाहरण यहाँ पर दिये जा रहे हैं, जिससे अद्वैत ज्ञान का परिचय पाठकों का प्राप्त होगा।

दतिया राज्यान्तर्गत सैंवढ़ा के राजा प्रथ्वीसिंह को आपने जो उपदेश दिया है, वही उक्त ग्रन्थ के नाम से कहा जाता है। संसार के विषयमें आपने कहा है :-

''जग मिथ्या करतार सत्य लहि; ज्ञान कहत हैं यासौं।
जग प्रपंच में भूल न रहिए, सुरत बाँधिये वासौ।।''
इस पद्य से जगत का मिथ्यापन सिद्ध होता है।
''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलः।।

यह वेदान्त का सिद्धान्त प्रसिद्ध है, जिसे जगद्गुरु भगवान शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थों में विस्तार से कहा है। ''एकमेवाद्वितीयम्'' इस श्रुति में अद्वैत को ग्रहण किया गया है। ''तमेवभान्तमनुभातिसर्वम्'' इस वाक्य में जगत का मिथ्यापन बताया गया है। ''नेह नानास्ति किञ्चन्'' इस वाक्य में नाना प्रकार का भेद अर्थात् द्वैत को झूठा कहा गया है, इत्यादि श्रुतियों का अभिप्राय उक्त पद्यं में सुन्दर रीति से कहा गया है, अनेक अन्तःकरणों में चेतन ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है। जैसे बिम्ब से प्रतिबिम्ब अलग नहीं है, इसी प्रकार ब्रह्म जीव से अभिन्न ही है। ऐसे अभेद ज्ञान को स्वरूप ज्ञान कहते हैं। इसे ही आगे भेड़ के बच्चे और बाघ के दृष्टान्त से स्पष्ट किया है। अज्ञात तत्व के दो भेद हैं; एक माया या विद्या, दूसरा अविद्या। माया विशिष्ट सगुण ईश्वर है, वही जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय करता है, माया इसके अधीन है, ईश्वर

की प्रेरणा से जगत के कार्य इसी द्वारा होते हैं। अविद्या व्यष्टि रूप वाली अनेक हैं जो सभी जीवों को अपने अधीन किये हुये है; जीव को स्वर्ग-नरक आदि इसी के द्वारा प्राप्त हैं। ईश्वर माया के अधीन न होकर स्वतन्त्र और सर्वज्ञ है। जीव अल्पज्ञ एवं सर्वथा परतन्त्र है। श्रीमद्भगवत्गीता में कहा गया है, **'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः'** अज्ञान से ज्ञान आवृत्त होने से जीवों का मोह होता है। ब्रह्म विद्या से अज्ञान की निवृत्ति होकर अद्वैत बोध होता है; इसे ही परम पुरुषार्थ मोक्ष कहते हैं। इसी को बताना वेदान्त शास्त्र का लक्ष्य है। वेदान्त मत में मोक्ष कोई उत्पन्न होने वाली वस्तु नहीं है, वह तो आत्मा का स्वाभाव हैं। अविद्या के निवृत्त होने पर ज्यों का त्यों बोध होना ही मोक्ष है, जैसे रस्सी के साँप के निवृत्त होने पर रस्सी का ज्ञान होता है।

ब्रह्म विद्या का विषय अत्यंत गहन है, केवल पुस्तकों के द्वारा इसे कोई नहीं समझ सकता। इसका ज्ञान सद्गुरु के पास नियम से रहकर कोई अधिकारी ही प्राप्त कर सकता है। श्रुति में कहा है, 'तद् विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्............ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' ब्रह्म ज्ञान सम्पादन के लिय श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठा गुरु का आश्रय करना चाहिए। उनके द्वारा ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, इत्यादि बातें निम्नोक्त गाथा में स्पष्ट एवं सुबोध रूप में बताई गई है। अविद्या के प्रभाव से जीव अपने संच्चिदानन्द स्वभाव को कैसे भूल जाता है। इसे सुन्दर रीति से बताया गया है।

उसे सद्गुरु के उपदेश द्वारा अभेद बोध होने से छुटकारा मिलता है; इसे आपने एक वाघ के बच्चे के दृष्टान्त द्वारा इस प्रकार बताया है:-

जैसे एक बाघ को बच्चा डरो गड़रिया पायो।
जात-कर्म भूले उहि अपने गाडर मान बँधायो॥
बाघ पराक्रम कछु न जाने माँसहि दाँत न चम्पै।
चलै फिरै गाड़र विच डोलै सदा गड़रियै कम्पै॥
एक दिन बन चरत फिरत ते तहाँ बाघ एक गाज्यौ।
भगे गड़रिया लै सब गाड़र तिनहूं में यह भाज्यौ॥
तब उहि बाघ बाघ यह देख्यौ आपु सामानहि सोहे।
भूल्यो जाति जान यह पकरियो कही बात तू को है॥
तब यह बाघ बाघ नहिं जाने गाडर बोक बतावै।
सुनि उहि लही जाति यह विसरयो देखो सो कहि आवैं॥
तब उहि बाघ बताई आपु गति जाति कर्म समझायो।
भयो बाघ को बाघ गयो भ्रम तब अपनो पद पायो॥
त्यों जग जीव अंश ईश्वर के परे अविद्या माँही।
मान रहे भ्रम जात वेश क्रम आपै जानत नहीं॥
बाघ समान मिले जब सत्गुरु तब भरम भजावै।
करै अविद्या विद्यमान है जीव ब्रह्म पद पावै॥
जीव ब्रह्म निज जाति एक है यह संदेह न मानो।
मिलेअविद्या जीव भये मिल विद्या ब्रह्म बखानो॥
विद्या नाम पढ़न को नाहीं नहिं पोथी न पुराना। जैसे
को तैसो मत समझै यह विद्या विज्ञाना॥
अक्षर अनन्य कहत यह गाथा बीच भ्रम कर दूरी।
पृथ्वीचन्द नृपराज जानिये यह ज्ञान गति पूरी॥

अद्वैत ज्ञान का सारा तत्व ऊपर के कथन में पूर्णतः आ गया है। अद्वैत मत के आचार्यो ने इसी प्रकार का माना है। अनन्य जी की साधना शैवागम की थी। त्रिपुरा शक्ति की उपासना द्वारा आपने सिद्धि प्राप्त की थी। आपने इस मत के अनुसार भी लिखा है, जिसे 'अनन्यपचासा' में सुन्दर रीति से बताया है।

शैवागम एवं त्रिपुरागम शिव एवं शक्ति की प्रधानता को लेकर साधन पथ का निर्देश करते हैं। "एकमेवाद्वितीयम्," इस श्रुति को लक्ष्य करके ही दोनों सिद्धान्त प्रवृत्त हुये हैं। शैव शिव की प्रधानता तथा शक्ति की अप्रधानता स्वीकार करते हैं। त्रिपुरागम में शक्ति प्रधान तथा शिव गौण रूप से माने गये है। "प्रत्यभिज्ञा हृदय" में कहा है--"चितिः स्वतन्त्र विश्वसिद्धिः हेतुः" सच्चिदानन्द रूपिणी पराशक्ति जगत् कार्य करने में स्वतन्त्र है। "सौन्दर्य लहरी" में कहा गया है, "शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्" शक्ति से युक्त होकर शिव प्रभाव वाले हो सकते हैं, अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकते। वस्तुतः शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं, जो शिव है वहीं शक्ति, और जो शक्ति है वही शिव विशिष्ट शक्ति से ही यह सारा जगत उत्पन्न हुआ हैं ऐसा शाक्तचार्यों का मत है। शैव शक्ति विशिष्ट शिव से जगत की उत्पत्ति बताते हैं, यह दोनों ही प्रकार संगत हैं। "सोऽकामयत्" 'एकोहं बहुस्याम' इन श्रुतियों में इसे मान गया है। यह सारा विश्व शिव शक्ति का ही परिणाम है,

जैसे एक सोने के अनेक आभूषण आदि। वास्तव में एक सोने से ही आभूषण परिणाम रूप से प्रकट होते हैं और उससे ये अभिन्न हैं। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुति से जगत को भी ब्रह्म बताया गया है इसलिये जगत ब्रह्म स्वरूप होने से सत्य है। मिथ्या का निरूपण जहाँ जगत के विषय में है वहाँ भेद का ही लक्ष्य करके कहा गया है, पदार्थ को नहीं, यह परिणाम वाद का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में भी माना गया है। " आत्मकृत्येः परिणामात्" (अ० १-४-२६) आत्मा की कृति द्वारा परिणाम होने से जगत ब्रह्म स्वरूप है इसी के अनुसार 'दुर्गापाठ' के अनुवाद में 'अनन्य' जी ने कहा है-

"रूप रेखै नहीं रूप रेखै मही, रूप रेखै सुकी धीव धारायनी।
दृष्टि आवै नहीं दृष्टि आवैं तुही, दृष्टि आदृष्टि त्रैलोक पारायनी।
नित्य निवृत्तिपरावर्तिकारायनी, निर्गुनी सगुनी भेष धारायनी।
अक्षरों अनन्य अद्वैत शक्ति प्रभो, सोम नमो हो नमो मातु नारायनी।
सर्वदास्ते चित्तं नित्त ही सर्वदा, सर्वेदानन्द यंदेव दारायनी।
सर्वसिद्धीन में ऐश्वर्यदा सर्वदा, सर्वदा सर्व उद्योत् सारायनी।
सर्वदा सो प्रकाशं प्रभा वंदिता, वेद वेदान्त सिद्धान्त सारायनी।
सर्व कर्त्तरी श्री सर्व शक्ति स्वयं, सो नमो हो नमो मातु नारायनी।"

उक्त दोनों छन्दों में त्रिपुरागम का सिद्धान्त संक्षिप्त रूप में आ गया है। यह सारा विश्व ब्रह्म रूप है। इस श्रुति के अनुसार शिव-शक्ति का परिणाम रूप यह जगत् सर्वथा सत्य स्वरूप है। इस शैवागमीय सिद्धान्त को एक सवैया छन्द में इस प्रकार बताया गया है-

"मूरख के प्रतिमा परमेश्वर, बालक रीति लही सो लही है।
मध्यम के अवतार कथाव्रत तीरथ राह सो राह गही है॥
उत्तम ज्योति स्वरूप विचार सौं आतम ध्यान में बुद्धि गई है।
पूरन ज्ञान अनन्य भने सर्वज्ञन को शिवशक्ति मई है॥"

इस प्रकार दोनों अद्वैत सिद्धान्तों को स्वीकार करके परिणाम बाद एवं विवर्तवाद के झगड़े को शान्त किया है।

"सुई पण्डित सुइ सिद्ध है, सोइ ज्ञानी सिरमौर।
सर्व भाव ब्रह्महि लहै, रहै न दुविधा और॥"

इस दोहे में सर्व भाव को अर्थात् जगत को ब्रह्म स्वरूप ही बताया है। 'पचासा' के एक छन्द में शाक्त-साधना की अन्तिम अवस्था को इस प्रकार बताया है-

"बहु प्रीति नहीं व्रत नीति नहीं, अरू रीति नहीं बहु राग गई।
जन मान मिटी कुल कान घटी, उलटी बुद्धि बोधहि लीन गई॥
विधि विश्व चिटी परयन्त जितै कन कञ्चन भूषण दीठि दई।
सबही शिव शक्ति 'अनन्य' भनै समता महि दृष्टि समाहि गई॥"

इस पद्य में शाक्त साधना की अन्तिम गति का निरूपण बहुत ही सजीव भाषा में किया गया है। अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधना क्रम को इस प्रकार बताया है-

"पहिले सब तीरथ धर्म करैं, अरु संगति संतन की धरते।'
पुनि भक्ति करैं अवतारन की अरु जोगिन की जुगती जुगतै॥
फिर आतम तत्व विचार करै, तब पूरन ज्ञान सभा सरसै।
क्रम सौ इमि रीति 'अनन्य' भन शिव शक्ति स्वरूप सदा दरसे॥"

अनन्य जी स्वयं विरक्त संसार त्यागी थे; और ये अपना उपदेश प्रवृत्ति मार्गीय तथा निवृत्ति मार्गीय दोनों को एक सा ही किया करते थे; अर्थात् अध्यात्म ज्ञान में दोनों का अधिकार मानते थे। आपके इन सिद्धान्तों पर ध्यान पूर्वक विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि अनन्य जी एक सिद्ध योगी, सफल साधक एवं अद्वैत ज्ञानी थे। उनके इन सिद्धान्तों का रहस्य पाठकों को सरल रीति से बोधगम्य कराने के लिये उनके कुछ सिद्धान्तों का यह संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र यहाँ कराया गया है।

॥ ॐ शम् ॥

(दतिया दर्शन १९५६)

२०. आत्मा शब्द को व्युत्पति पर चर्चा

(दतिया के श्री स्वामी जी दर्शन के प्रकाण्ड पंडित और निःस्पृह वीतराग पुरूष हैं। उन्होंने आचार्य विनोबा भावे की ईशावास्योपनिषदीय वृत्ति में दी गई 'आत्मन्' शब्द की संभावित व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ शंकायें प्रकट की। इस शंकाओं के समाधान के लिये श्री सूर्यदेव शर्मा के द्वारा उन्होंने आचार्य जी के पास पत्र भिजवाया। आचार्य भावे ने संक्षिप्त में उस पत्र का उत्तर दिया। हम यहाँ विद्वानों के मनोविनोद के लिये आचार्य भावे की स्थापना, स्वामीजी की सोपपत्तिशंका, और पुनः आचार्य जी का उत्तर प्रकाशित कर रहे है। आत्मन् शब्द का भारतीय दर्शन में कितना महत्वपूर्ण स्थान है इसे देखते हुए इस चर्चा को हमने उपयोग समझा। इस विषय पर और भी विद्वान अपना मत प्रकट करें तो उनका स्वागत होगा। स्वामी जी ने जो हमें इस चर्चा को प्रकाशित करके की अनुमती दी है, उसके लिये हम उनके अनुग्रहीत हैं। (सम्पादक)

टिप्पणी - ७६ :- विनोबा जी की ईशावास्योपनिषद् वृत्ति पृष्ठ ३२ पर यह लिखा है :-

'आत्मन्' शब्द की व्युत्पत्ति चार प्रकार से दी जाती है। एक श्लोक में इसका इस प्रकार संग्रह किया गया है:-

यदाप्नोति य दादत्ते यच्चास्ति विषयानिह।
यच्चास्य संततोभावः तस्मादात्मेति कीर्त्यते।

''आप्'' व्याप्तौ 'आ + दा' आदाने, अद् भक्षणे 'अत् सातत्य गमने' -- इस तरह ये चार व्युत्पत्तियाँ हैं। मुझे ये सारी ही काल्पनिक लगती है। इनमें से अन्तिम व्युत्पत्ति वास्तविकता के कुछ निकट कही जा सकती है। वास्तव में, मेरे मत से आत्मा शब्द 'आत्' धातु का रूप है। आत् पूर्व वैदिक धातु है। इसका संस्कृत में लोप हो गया है। पर ज्ञानेश्वरी की मराठी में ज्यों का त्यों, और तमिल आदि द्रविड़ भाषाओं में यह धातु अपभ्रंश रूप में प्रकट हुआ है। 'आत्' का भूतकृदन्त ज्ञानेश्वरी भाषा में 'आतला' होता है। ''आत्'' का अर्थ मूलत: 'अस्' और 'भू' के बीच का है। यद्यपि इस अर्थ भेद का आगे लोप हो गया है। तो भी विचार दृष्टि से महत्व का है। 'अस्' याने 'केवल होना' -निर्गुण 'भू' याने विविध भाव युक्त होना' - सगुण। 'आत्' याने 'हो सकने वाला होना' -बीच की स्थिति - सगुण गर्भ निर्गुण। 'आत्मन् का साथी 'भूमन्' एक परमात्म वाचक शब्द उपनिषदों में आता है। दोनों का स्थूल रूप से एक ही अर्थ है। बारीकी से देखें तो 'भूमन्' विशेषण गुण है। 'भूमन' 'भू' धातु से आया है। इसे ध्यान में रखने से यह सूक्ष्म भेद स्पष्ट हो जाता है। 'भूमन्' शब्द की व्युत्पत्ति 'बहु' + 'इमन्' इस तरह पाणिनि ने बताई है। इसका कारण यह पूर्व वैदिक धातु 'आत्' पाणिनि को संभव है ज्ञात न हो। ज्ञात होता हो उन्हें आत+मन= आत्मन्, तथैव भू+मन्= भूमन् यह सूझता । इसके अभाव में उन्हें 'अणिमन्', 'गरिमन्, आदि वर्ग में भूमन् को बिठाने की व्यवस्था करनी पड़ी है। संभवत: उपनिषदों में भूमन् शब्द जहाँआया है, वहाँ वह अल्प के विरोधी के रूप

में उपस्थित किया गया है और इसी कारण पाणिनि को ऐसा करने की आवश्यकता प्रतीत हुई हो, परन्तु 'भूमन्' 'भू' धातु से लगाने से विश्व रूप परमात्मा का वाचक होता है। फिर विश्व रूप में बहुत्व आ ही जाता है। किंबहुना बहु शब्द मूल में 'भू' धातु का ही रूप है। इसकी ओर ध्यान देने पर तनिक भी कठिनाई नहीं रहती, परन्तु ब्रह्मन निर्गुण, आत्मन्, सगुण, निर्गुण, भूमन् सगुण इस तरह का भेद विश्लेषण के लिये किया जाता तो भी अन्त में उस सबको भुला कर 'ईशावास्यमिदं सर्व इतना ही रटना है और वही इसके आगे के मन्त्र का और सारे ईशावास्य उपनिषद् का सार है।

स्वामी जी की इस व्याख्या पर शंका

आत्मन् शब्द की सिद्धि के लिये जो श्लोक दिया हुआ है 'यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह, यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते' इस प्रसिद्ध श्लोक में चार धातुओं से 'आत्मा' शब्द की जो सिद्धि की है उसे आपने कल्पित बताया है, परन्तु यह आत्मा की सिद्धि में प्रायः सर्वत्र ही विद्वानों ने माना है।

(१) यह आत्मा शब्द अद्भक्षणे धातु से भी बनता है। ऐसा व्याससूत्रों में भी माना गया है। 'अत्ताचराचरग्रहणात्'• (वे० १-२-८) इस सूत्र के वेदान्तदीप में भी आचार्य रामानुज की व्याख्या के अनुसार एवं सभी भाष्यकारों के मत से चराचर सम्पूर्ण जगत् का भोक्ता था अत्ता होने से यह अत्ता) शब्द

आत्मा का वाचक है ।

(२) ऐतरेयोपनिषद् के प्रथम मंत्र में 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इत्यादि के भाष्य में श्री आचार्य शंकर भगवत्पाद ने भी लिखा है 'आत्मा आप्नोतेरत्तेरततेर्वा' । इस प्रसंग पर आप, अद्, अत् इन तीनों धातुओं से आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति की गई है ।

(३) व्याकरण के उणादि सूत्रों से भी आत्मा शब्द की सिद्धि अत् धातु से ही की गई है, 'सातिभ्यामनिन् मनिणौ' इस सूत्र की तत्वबोधिनी में भी अत् से आत्मा बनाने का समर्थन किया गया है। उणादि सूत्रों के कर्ता पाणिनि ही माने जाते हैं ।

(४) 'आत्मा यक्ष्मस्यच नश्यति पुरा जीव गृभोयथा' (ऋ० स० ८, ५-१०-१) इस ऋचा में आये हुए आत्मा शब्द की निरूक्ति पर अति प्राचीन यास्क मुनिप्रणीत निरूक्त में भी अध्याय ३ खण्ड १५ में 'आत्माततेर्वाप्तेर्वापि वाप्त इव स्याद यावदव्याप्त भूत इति' इस निरुक्ति से भी सिद्ध है कि आत्मा शब्द आप् और अत् से ही बना है। पाणिनी से पहले के यास्क मुनि हैं। पाणिनि के सूत्रों में भी यास्क का नाम आया है।

यास्कादिभ्यो गोत्रे (२-४-६३)

यदि आत् धातु कोई होता तो यास्क अवश्य ही लिखते। आप् धातु से बने आत्मा के वाचक शब्द को प्राकृत में अप्पा कहते है हिन्दी में उसे ही आप कहते है अत्ता शब्द का प्रयोग बंगाली में अत्ता नाम से ही होता हैं। इससे यह सिद्ध है कि

अद्, अत् और आप् से ही आत्मा शब्द बनता है और यह अर्थ पहले से ही होता आ रहा है। पाणिनी ने इसकी सिद्धि का प्रकार मात्र उणादि सूत्र से बताया है। आपकी बताई हुई आत् धातु का कहीं भी पता नहीं लगता। इसके लिये कोई वैदिक प्रयोग बताना आवश्यक है कि यह प्रयोग पूर्ववैदिक कालिक है।

(५) उपर्युक्त तीनों धातुओं के अतिरिक्त आ पूर्वक दा धातु से भी आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति की गई है।

प्रमाणार्थ ऐतरेयारण्यक सायण भाष्य में लिखा है -- 'स्वप्नावस्था-यामयं जीवो जागरणस्थपदार्थवासना: सर्वा आदत्ते तथाच वाजसनेयिन: पठन्ति स यत्र प्रस्वापित्यस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य' इत्यादी (वृ०४।३।९) यहाँ पर अपादाय शब्द से अभिप्राय है कि वासनाओं को लेशरूप में ग्रहण करने वाला आत्मा है। इससे चौथा अर्थ भी आङ्+पूर्वक दा का आत्मा के अर्थ में संगत होता है। ऐसी अवस्था में श्लोकार्थ को कल्पित बताना कैसे संगत हो सकता है।

(६) आत् धातु की पूर्व वैदिक कालिक सत्ता का क्या आधार है? तथा तामिल आदि द्रविड भाषाओं एवं ज्ञानेश्वरी की मराठी के भूत-कालिका 'आतला' प्रयोग और 'आत्' धातु के साम्य के आधार के लिये किस भाषा शास्त्रीय या भाषा-विज्ञान का प्रमाण प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त आत् धातु के अर्थ को अस् एवं भू के बीच का सिद्ध करना भी प्रमाणापेक्षित है

अर्थात् इसका क्या आधार है? अस् और भू की मध्यावस्था सूक्ष्म रूप से सगुण ही है, उसे पृथक मानने की आवश्यकता ही क्या है कि जिसके लिये आत् धातु की वाच्यता स्वीकार करनी पड़े, क्योंकि विचार से सगुण एवं निर्गुण के अतिरिक्त भिन्नावस्था कोई प्रतीत नहीं होती। ऐसे ही 'आनन्दमयोऽभ्यासात्त सूत्र' के भाष्य में श्री शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है। यदि 'आत्' के स्वीकार का ही आग्रह हो तो भी अत् धातु से उक्त सभी कार्य हो सकते हैं, क्योंकि अत् का सातत्य गमन अर्थ होने से सभी अर्थों में वह अनुगत है। स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही उसके वाच्य हो सकते हैं। इसलिये आत् की कल्पना का अवसर ही नहीं रहता। इस कल्पना से पूर्व के आचार्यों के अर्थ से विरोध प्रदर्शन के सिवा और कोई अर्थ प्रतीत नहीं होता। भूमन् शब्द की व्युत्पत्ति के अवसर पर यह जो कहा गया है कि बहु शब्द मूल में भू धातु का ही रूप है, यह भी विवादास्पद है। भू धातु सत्ता के अर्थ में एवं बहु शब्द 'वहि वृद्धौ' से बना है।

'लङ्घिधवह्योर्न लोपश्च' इस उणादि सूत्र से उ प्रत्यय द्वारा बहु शब्द की सिद्धि की गई है। प्रभूत, भूरि, भूयिष्ठ आदि बहु वाचक शब्दों की व्युत्पत्ति भू धातू से होती है, यह किंचित् धर्म मात्र के साम्य का प्रयोग है। 'वहुस्यात् त्र्यादि संख्यासु विपुलेऽभ्यभिधेयवत्' इस विश्व कोष के प्रणाम से बहु शब्द तीन से लेकर अधिक संख्या का भी वाचक है। ऐसा ही भू का भी संख्या अर्थ होता है, 'भूम्नि: असव: प्राणा:' इत्यादि।

इसीलिये बहु के स्थान पर भू का आदेश किया गया है तथापि मूलतः भूसत्तायां और वहि वृद्धौ भिन्नार्थक है। जैसे सलिल, अम्बु, पानीय शब्दों के भिन्नार्थ होते भी कोश में सामान्यतः जल के अर्थ में ही इनका प्रयोग किया गया है। 'वहोर्लोपो भूच वही' इस सूत्र में पाणिनी ने इसी साम्य में इसी साम्य में बहु के स्थान में भू या भूमा का आदेश किया है।

'भूमासम्प्रसादादध्युपदेशात्' (१-३-७) इस सूत्र का अर्थ वेदान्त दीप में श्री रामानुजाचार्य ने 'निरतिशयवैपुल्यविशिष्टसुखस्वरूपः आत्मा' ऐसा किया है। अस् और भू का जो अस्ति भवति के रूप में प्रयोग भेद लोक में प्रसिद्व है, लौकिक दृष्टि की अपेक्षा से ही है। वास्तव में तो 'अस्तेर्भू' इस पाणिनि सूत्र में भूतकाल में भू और अस् का रूप एक ही है। दोनों धातुओं के एक होने पर अर्थ में किंचित् भेद रहते हुए भी ऐक्य है ही। इस अवस्था में आत् धातु की क्या स्थिति होगी ?

ब्रह्म शब्द भी बहिबृद्धौ' से बनता है । आपके लेखानुसार ब्रह्म निर्गुण का वाचक है, परन्तु धात्वर्थ के अनुसार वह सगुण का द्योतक प्रतीत होता है। ऐतरेयोपरिनिषद् के प्रथम मंत्र में 'आत्मा वा इदमेक एवासीत् नान्यतकिंचिन्मिषत्'। इस मंत्र से तो आत्मा शब्द निर्गुण अर्थ का बताने वाला सिद्ध होता है। मंत्र के निषेधांश से गुण का निषेध होकर सगुणगर्भ निर्गुण के अर्थ से विरूद्ध पड़ता है। इत्यादि वक्तव्य वृत्ति के इस भाग के अवलोकन से हृदय में ये भाव उत्पन्न हुए हैं जिन्हें आपको सूचित

करना उचित समझकर निवेदन किया है। यद्यपि 'ईशावास्यामिदं सर्वम्' के अनुसार सब विरोध हट कर एकता में मिल जाते हैं। तथापि शब्दकृत अर्थों का विचार होना आवश्यक है, क्योंकि अर्थावगति का साधन शब्द विचार है। 'सरस्वती'।

श्री संत विनोबा का उत्तर, भूदान समिति, कर्नूल ।

आन्ध्र प्रदेश (६-४-५६)

आपका बहुत सुन्दर पत्र मिला। आपकी अध्ययन प्रवृत्ति देखकर आनन्द हुआ । मैंने एक सुझाव मात्र पेश किया है, जिसने अनेकों को चिन्तन- प्रवृत्त किया । आत्मा "अततेर्वा, आप्तेर्वा" इत्यादि जहाँ बोला जाता है वहाँ उसकी व्युत्पत्ति के बारे में निर्णय सूचित नहीं होता है, बल्कि संशय ही सूचित होता है ऐसा मुझे लगता है । लेकिन मेरे सुझाव के बारे में मतभेद की गुंजाइश तो है ही, यद्यपि ईशावास्य के तात्पर्य के साथ उसका बहुत सम्बन्ध नहीं हैं।

अन्त में आपने सगुण-निगुण की भी चर्चा की है। इस विषय में गीता-प्रवचन के १२ वें अध्याय में मैने अपना अनुभव कह दिया है। जो वस्तु शब्द से परे है उसको शब्दों से प्रकट करने के प्रयत्न में कुछ न कुछ न्यूनता आ ही जाती है। क्या किया जाय। विनोबा के प्रणाम।

॥ ॐ शम् ॥

२१. परोपासना

माया अविद्या के प्रभाव से जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है, प्रतिकूल वेदनीयता से सांसारिक क्लेश अविद्या के प्रभाव से ही हो रहे हैं जिससे छुटकारा पाने के लिये वह अहर्निश प्रयत्नशील हो रहा हैं इसके लिये लौकिक अनेक उपायों को कर रहा है, तथापि उसकी निवृत्ति नहीं हो रही है इसी की सिद्धि के लिये तथा लौकिक विषयानन्द से पराङ्मुख होकर नित्य निरतिशय सुख की प्राप्ति के लिये उपासना विधि के प्रतिपादक शास्त्रों की प्रवृत्ति है। एक सच्चिदानन्द परब्रह्म ही पूर्ण नित्यानन्द स्वरूप वाला है। जीव उसको प्राप्त करने पर ही परम सुखी होसकता है। यह शास्त्र का परम लक्ष्य है। उपासना तत्व के रहस्यज्ञ महात्माओं का अनुभव भी उक्त सिद्धान्त को पुष्ट करने वाला है। उपासना सम्बन्धी सभी क्रियायें गुरु मूलक ही हैं ऐसा कहा गया है। सगुण निर्गुण भेद एवं अभेद के प्रकार से उसका अनुष्ठान किया जाता है। प्रकृत परोपासना जो अजपा जप के नाम से साधकों में प्रसिद्ध हैं, वह अभेद या अद्वैत सिद्धान्त की साधना हैं। अजपा से विषय में तन्त्र सार में कहा है कि जो श्वास प्रश्वास के गमनागमन से सम्पन्न होती है। उच्चारण द्वारा जिसका जप नहीं होता है उसे ही अजपा जप कहते हैं। ''हंस मंत्र'' से इसका अभ्यास होता है जिसका उद्धार इस प्रकार है:-

वियदर्धेन्दु लसितस्तदादिसर्गसंयुतः।
अजपाख्यो मनुःप्रोक्त द्वयक्षरः सुरपादपः॥

चन्द्र विन्दु युक्त हकार और सकार के मिलने से हंस मंत्र बनता है जो साधकों के लिये कल्प वृक्ष के समान है। गुरु रूप शिव के ध्यान में इस तत्व का साक्षात्कार होता है। ध्यान इस प्रकार है:-

उद्यद्‌भानुस्फुरित्तडिदाकारमूर्द्धाम्बिकेशं।
पाशीभीतिं वरद परशुं संदधानं कराब्जैः॥
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः शोभितं विश्वमूलं।
सौम्याग्नेयं वपुरवतु नश्चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम्॥

अर्थ - उदय काल के सूर्य के समान एवं चमकती हुई बिजली के समान मस्तक पर जटा जूट शोभित हैं ऐसे अम्बिका के स्वामी जी अपनी चारों भुजाओं में क्रमशः पाश, अभयमुद्रा, वरमुद्रा एवं परशु धारण किए हुए है, जो दिव्य माणिमय सिंहासन पर विराजमान हैं, जो विश्व के मूल कारण हैं ऐसे चन्द्रधारी त्रिनयन शंकर भगवान जो चन्द्र अग्नि स्वरूपी हैं वह हमारी रक्षा करें।

दक्षिणा मूर्ति संहिता में लिखा है-

अथवक्ष्ये महेशानि प्रत्यहं प्रजपेन्नरः।
मोह बन्धं न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते॥
श्री गुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते यदा।
उछ्‌वास-निश्वासतया तदा बन्धक्षयो भवेत्॥
उछ्‌वासैरेव निश्वासैर्हंस इत्यक्षारद्वयम्।
तस्मात्प्राणाख्य हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः॥

नाभेरुछ्वासनिश्वासात् हृदयाग्रे व्यवस्थितः।
षष्ठिस्वासैर्भवेत् प्राणः षट् प्राणाः नाडिका मतः ॥
षष्ठिनाड्या ह्यहोरात्रं जपसंख्या क्रमो मतः।
एकविंशति साहस्त्रं षट्शताधिकमीश्वरि॥
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम्।
उत्पत्तिर्जपमारम्भो मृत्युस्तत्र निवेदनम्॥
बिना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।
अजपेयं ततः प्रोक्त भवपाशनिकृन्तनीं॥

अर्थ - स्वाभाविक श्वास प्रश्वास के रूप में जीव जिस मंत्र का जप करता है उसे ही हंस अथवा अजपा मन्त्र कहा गया है। सांसरिक मोहपाश में बद्ध अज्ञानी जीव जब तक इस परा विद्या को नहीं जानता तब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। जब श्रीगुरुदेव की कृपा से इस विद्या को वह जान लेता है एवं तदानुसार साधना करता है तभी उसकी सांसारिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त होती है, श्वास की स्वाभाविक वहिर्गमन एवं अन्तरगमन की क्रिया में हंस इन दो अक्षरों का जप चलता रहता है इसीलिये प्राण को हंस कहते हैं और वही आत्म स्वरूप है। श्वास क्रिया नाभि से प्रारंभ होती है उसी के अनुसार हृदय चक्र (अनाहत) में प्राण की स्थिति है। ६० श्वास क्रिया होने पर उसकी संज्ञा प्राण होती है। ६ प्राणों की एक नाड़ी का एक पूर्ण दिन रात इस प्रकार ६०X६X६० = २१६०० इक्कीस हजार छः सौ श्वास ही इस मंत्र की जप संख्या है इस प्रकार प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन इस परमानन्द स्वरूपिणी परा विद्या का जप करता रहता है। श्वास प्रश्वास के

रूप में इस जप का प्रारंभ जन्म लेते ही हो जाता है। तथा मृत्यु के समय जप की समाप्ति होती है। इस प्रकार यह जन्म से लेकर मरण पर्यन्त एक अखंड साधना है। इस उपासना में बिना जप किये ही साधक का जप चलता रहता है अतः संसार बन्धन को नष्ट करने वाला यह अजपा जप के नाम से विख्यात है। यह जप किस चक्र में कितने समय में कितनी संख्या में होता है तथा उसके कौन देवता हैं इसके लिये निम्न लिखित तालिका दी जा रही है जिसके दो क्रम हैं निम्न प्रकार से एक है आरोह तथा दूसरा है अवरोह।

आरोह क्रम

चक्र	श्वास संख्या	समय	देवता
मूलाधार	६००	४० मिनट	गणेश
स्वाधिष्ठान	६०००	६ घंटा ४० मिनट	ब्रह्मा
मणिपूर	६०००	६ घंटा ४० मिनट	विष्णु
अनाहत	६०००	६ घंटा ४० मिनट	शिव
विशुद्धि	१०००	१ घंटा ४० मिनट ४० से०	जीव
आज्ञा	१०००	१ घंटा ४० मिनट ४० से०	गुरु
सहस्रार	१०००	१ घंटा ६ मिनट ४० से०	परमात्मा
योग	२१६००	२४ घंटा	

अवरोह क्रम

चक्र	श्वास संख्या	समय	देवता
सहस्रार	१०००	१ घंटा ६ मिनट ४० से०	परमात्मा
आज्ञा	१०००	१ घंटा ६ मिनट ४० से०	गुरु
विशुद्धि	१०००	१ घंटा ६ मिनट ४० से०	जीव
अनाहत	६०००	६ घंटा ४० मिनट	शिव
मणिपूर	६०००	६ घंटा ४० मिनट	विष्णु
स्वाधिष्ठान	६०००	६ घंटा ४० मिनट	ब्रह्मा
मूलाधार	६००	४० मिनट	गणेश
योग	२१६००	२४ घंटा	

इन क्रमों में प्रथम आरोह क्रम में हंस का जप होता है तथा दूसरे अवरोह क्रम में सोहं मंत्र का जप किया जाता है।तालिका के अनुसार भावना के प्रकार में निम्न श्लोक है:-

हंसो गणेशो विधिरेव हंसो हंसो हरिर्हंसमयश्च शंभुः।
हंसो हि जीव गुरुरेव हंसः हंसो ममात्मा परमात्मा हंसः॥

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो नाम सदाशिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोहं भावेन पूजयेत्॥
अहंदेवो न चान्योस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।

सच्चिदानन्दरूपोहमात्मानमिति भावयेत्।।
हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसात्मिकां भगवतीं जीवो जपति सर्वदा।।

अर्थः-

इस मन्त्र के प्रतिपाद्य, देवता आधारादि चक्रों के अनुसार, क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, जीव, गुरु एवं आत्मा, परमात्मा हैं इन सभी रूपों का विकास हंस मंत्र से ही होता है अतः यही सब कारण है तथा इन सभी रूपों का समन्वय इसी मंत्र में है। शरीर रूपी मन्दिर में सदाशिव ही जीव रूप से निवास करते हैं, इस मन्त्र के द्वारा अज्ञान रूपी निर्माल्य ( )जो चण्डाधिकार होने से त्याज्य है) छोड़ने पर ही हंस सोहं रूप में परिणत हो जाता है। इसी के अनुसार भावनाइस प्रकार है कि मैं ही साक्षात् ब्रह्म हूँ, मैं सभी शोकों से मुक्त हूँ तथा सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ इस प्रकार स्वयं को ब्रह्म रूप मानना चाहिये। श्वास के बहिर्गमन में हकार का उच्चारण होता है तथा अन्तर्गमन में सकार का। इस प्रकार जीव हंस स्वरूपिणी भगवती का जप करता रहता है। ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दु के रूप में बिन्दु कारण तत्व की स्थिति है। ऊर्ध्व में शक्ति रूप विसर्ग एवं अधोभाग में शिव बिन्दु की स्थिति है उसे ही हंस शब्द से कहा गया है। अवरोह क्रम में सोहं रूप से भी इसे ही कहा गया है इसी को परमात्मा मन्त्र भी कहते है।

साधन क्रम

प्रात: काल ब्राह्म मूहर्त में शैय्या से उठकर साधक को गुरु मंत्र इष्टदेव का मंत्र, गुरु मंत्र का अभ्यास करना चाहिये तथा इष्टदेव के मन्त्र का जप करने के पश्चात अपने (जीव) स्वरूप को इष्टदेव एवं श्री गुरु के स्वरूप में लय भावना का चिन्तन करना चहिये। आधार चक्र में सुप्त कुण्डलिनी महाशक्ति को श्री गुरु द्वारा प्रदत्त क्रिया से जगाना चाहिये। साढ़े तीन वलय में कुण्डलिनी के स्वरूप को, हूँ या हंस मन्त्र के द्वारा एवं भस्त्रा प्रणायाम द्वारा सीधा करके विशुद्ध चक्र में स्थित अणु रूप जीव को आधार चक्र में लाकर कुण्डलिनी मे मुख में स्थित करना चाहिये। इसके पश्चात् षट् चक्र में क्रमश: आधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा में होती हुई प्राण शक्ति के ऊर्ध्व गति के साथ मानस चक्र में पहुँचाना होता है। वास्तविक योग आज्ञा चक्र से ही आरम्भ होता है। सहस्त्रार में परबिन्दु स्थित शक्ति व्यापिका और निबोधिका से ऊपर निर्वाण शक्ति के भी ऊपर महा शून्य में उसकी समाप्ति होती हैं। महाशून्य के अन्दर हंस मंत्र का मूल विसर्ग और बिन्दु की स्थिति है जिसके चारों और साढ़े तीन फेरे में ऊर्ध्व कुण्डलिनी का साक्षात्कार होता है। नीचे की कुण्डलिनी और ऊर्ध्व कुण्डलिनी का ऐक्य ही इस महायोग की पूर्णता है। जिस प्रकार अधोकुण्डलिनी को मूलाधार कहते हैं इसी प्रकार ऊर्ध्व कुण्डलिनी भी मूलाधार है। ''ऊर्ध्वमूलमध:शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्'' इसे भगवत गीता के पुरुषोत्तम योग में माना गया है। कठोपनिषद में

"ऊर्ध्वमूलमबाक्शाखा" इत्यादि मन्त्र में इसे ही माना गया है। इन दोनों शक्तियों का योग भगवान शिव के स्वरूप में माना गया है। जिसे अम्बिका एंव श्री गंगा के स्वरूप से कहा गया है। इसे ही निर्वाण के नाम से बौद्ध धर्म में माना गया है। श्री भगवत गीता में "स्थित्वास्यामन्तकालेपि ब्रह्म निर्वाणमिच्छति" कहा गया है। वैदिक योग एवं बौद्ध योग में भवाभाव रूप से बताने में भेद है। यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म है इसीलिये इसे श्रीगुरू कृपा द्वारा ही प्राप्त होना बताया गया है। ऊर्ध्व एवं अध : क्रम से इसका आरम्भ होता है इसीलिये दोनों क्रम अवरोह एवं आरोह अभ्यास में माने गये हैं। श्री विद्या की साधना में सृष्टि एवं संहार क्रम के नाम से इसे बताया गया है। श्री विद्या क्रम में श्वास प्रश्वास कर विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है।

श्री विद्या में अजपा साधन

उक्त २१६०० श्वासों का विवरण श्रीचक्र के देवताओं में किस प्रकार विभाजित है इसे यहाँ लिखा जा रहा है। इसके पूर्व साधक को आत्माष्टाक्षर मन्त्र तथा अजपा गायत्री का जप जानना आवश्यक है जिसका विनियोग निम्न प्रकार का है- **ॐ अस्य श्री अजपा मन्त्रस्य हंस ऋषिः अव्यक्ता गायत्री छन्दः परमात्मा देवता हं बीजम् सः शक्तिः सोहं कीलकम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।**

ह् सां ह् सीं ह् सूं ह् सैं ह् सौः ह् सः इससे हृदयन्यास एवं करन्यास करना चाहिये इसके पश्चात् ॐ भूर्भवः स्वः

इसके द्वारा दिग्बन्ध करना चाहिये। ध्यान: -

अग्नीसोमगुरुद्वय प्रणवकं विन्दुत्रिनेत्रोज्वलं,
भास्वद्रूपमुखं शिवांघ्रि युगलं पार्श्वस्थसूर्यानलम्।
उद्यद्भास्करकोटिकोटिसदृशं हंसं जगद् व्यापिनम्,
शब्दाब्रह्ममयं हृदम्बुजपरे नीडे सदा संस्मरेत्।।
ॐ ह्रीं हंसः सोहं स्वाहा आत्माष्टाक्षर मन्त्र।

'हंस हंसाय विद्महे सोहं हंसाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्' - गायत्री- इस प्रकार दोनों मन्त्रों के जप के पश्चात् पूर्व तालिका के अनुसार गत दिन के जप का सभी चक्रों के देवताओं को समर्पण करे। श्री विद्या के उपासकों के मत से उक्त २१६०० श्वासों की योजना इस प्रकार की जाती है- पूर्ण मंडलाक्षर रूप श्वासों की संख्या ५७६ है अकार और क से लेकर क्षकार पर्यन्त ३६ अक्षर माने गये हैं। अ से अः पर्यन्त १६ स्वर के वर्णो को ३६ के साथ गुणित करने से ३६ गुणित १६=५७६ पूर्ण मंडलाक्षर की संख्या होती है। एक मास में ३६ दिन संख्या को पूर्ण मंडलाक्षर से गुणित करने पर २०७३६ श्वास संख्या हो जाती है प्रकाशानन्द नाथ से लेकर शुभगानन्द नाथ पर्यन्त ९ नाथ हैं जिन्हें अ, लृ, क, च, ट, त, प, य, ष इन नव अक्षरों से कहा जाता है। शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्वों के श्वास की संख्या ३६ मानी गई है। कामेश्वरी नित्या से लेकर चित्रा नित्या पर्यन्त १६ नित्याओं की संख्या १६

श्वास की होती है। ५ दिन में पूर्ण होने वाली घड़ियों की संख्या अ, ए, च, त, य इन पांच अक्षरों से मानी गई है। घड़ी के अनुसार जिनकी संख्या ६० होती है। मेषादि राशियों की संख्या १२ है इसलिये राशि संख्या के श्वास १२ है इसीलिये राशि संख्या के श्वास १२ लिये गये हैं। सूर्य आदि नवग्रहों की संख्या ९, तत्वों की संख्या ५, मातृकाओं की संख्या ५०, इसके अनन्तर श्री चक्र में आये हुये ९१ शक्तिआवरण देवताओं की श्वास संख्या ९१ लिये जाते हैं। इस प्रकार ५७६+२०७३६+९+२३+१६+६०+१२+९+ ५+५०+९१=कुल योग २१६०० श्वास संख्या आती है। एक निश्चित समय से अजपा का प्रारंभ करना चाहिये और उसी के अनुसार समय विभाग करके अभ्यास करना अत्यन्त उपयोगी है जिस चक्र का जो समय आता हो उसी का ध्यान करते हुये जप चलना चाहिये। उक्त प्रकार से अभ्यास करने से उपासक शीघ्र ही आत्मा के स्वरूप के साथ तादात्म्य लाभ करके समस्त क्लेशों से छूट जाता है। इसकी प्रशंसा में शारदा तिलक में कहा जाता है कि:-

हंसः पदं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः।
मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते॥
श्री गुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते ततः।
तस्माच्छ्वासैश्च निश्वासैस्तदा बन्धक्षयो भवेत्॥
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
तस्याविज्ञान मात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते॥

अनया सदृशी विद्या चानया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥

अर्थः-

हे भगवती यह वही हंस पद है जिसका मनुष्य प्रतिदिन जप करता है। मोह में पड़कर जो मनुष्य इस मन्त्र को नहीं जानता उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। जब श्री गुरुदेव की कृपा से जान लेता है एवं जप करता है तब इस श्वास की साधारण क्रिया जो अनायास ही संपन्न होती रहती है उसी के द्वारा संसार बन्धन से छूट जाता है। योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाली इस अजपा मन्त्र की पूर्वोक्त गायत्री के ज्ञान मात्र से संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं न तो इस विद्या के समान कोई विद्या है और न इसके जैसा कोई जप। इस विद्या के समान पवित्र साधना आज तक नहीं हुई और न होगी अर्थात् यह सर्व श्रेष्ठ उपासना है।

॥ ॐ शम् ॥

२२. अमेरिका को संस्कृत में पत्र

सन् १९६० में भारत से गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक श्री पं० विद्यानिवास मिश्रा अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन-हेतु गये थे। इस निमित उन्हें वहाँ वर्कले नगर में प्रवास करना पड़ा। उनकी भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान में स्वाभाविक रूचि रही है और वे वहाँ भी गये अपने इस ध्येय को उन्होंने कभी नहीं भुलाया। हिन्दी संसार श्री मिश्राजी की लेखनी में भली भाँति परिचित है। उनका राष्ट्र भाषा प्रेम एवं देवभाषा के प्रति समादर इससे ही प्रकट हो जाता है कि अमेरिका से उन्होंने हिन्दी में ही पत्र लिखे तथा अब कुछ निवेदन का प्रयोजन दतिया के श्री स्वामी जी महाराज से रहा, तो श्री चरणों को उनके पत्र संस्कृत भाषा में उपलब्ध हुये।

श्री मिश्रा जी का सहज स्नेह मुझे मिला है और श्री स्वामी जी महाराज का भी मैं कृपा-भाजन रहा हूं। इस निमित्त भाई मिश्र जी तथा पूज्य चरण के बीच होने वाले पत्र-व्यवहार का मैं ही माध्यम हुआ। इस प्रकार के पत्रों की संग्रह-प्रवृत्ति के कारण मैंने उन्हें संवार कर रखा था, जो आज जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ प्रकाश में ला रहा हूँ।

यद्यपि यहाँ श्री स्वामी जी महाराज के पत्रों का ही प्रकाशन अभिप्रेत है, फिर भी उन्हें समझने के लिये पूर्व प्रसंग अपेक्षित है। इस निमित्त श्री मिश्र जी का एक संस्कृत पत्र यहाँ उद्धृत हैं।

--श्री वासुदेव गोस्वामी

पं० विद्यानिवास मिश्र का वर्कले (अमेरिका) से दतिया को श्री स्वामी जी की सेवा में प्रेषित पत्र--

॥श्रीः॥

वर्कले नगरात्
दिसम्बर ६/६०

श्री चरणेषु

सादरं प्रणतयः

भवदीयं कृपा पत्रं भारते निवसत्येव मयाधिगतं तच्च महत्यै सान्त्वनायै आसीत्। सम्प्रति अस्मिन् भोगैश्वर्य-प्रसक्तेजीवनक्रमे आत्मानं निरुपायमेकाकिनं चमन्यमानो न सुखेन वर्ते। श्रीमद्भगवद्गीतायाः पारायणमपि न भूयसे चित्तोपशमाय।

अतएव भवन्तं प्रार्थये मार्गनिर्देशार्थम्। को मन्त्रो जपनीयः कश्च तस्य विधिरिति सूचयितुमनुगृह्णन्तु। अस्य देशस्य आन्तरिकी रिक्तता चेतो दुनोति। ब्राह्मणोचिताचारस्य निर्वाहोऽपि कष्टेन सिध्यति तदत्रभवन्त एवं अर्हन्ति मां निर्देष्टुम्।

मन्ये भवद्भ्य एव सा शक्तिरधिगमिष्यते या मामत्र सङ्कटेभ्यः पारयिष्यति।

वासुदेव गोस्वामिनो माध्यमेन पत्रस्य कृपापूर्वकमुत्तरं प्रेषितुमर्हन्ति श्री चरणाः।

जिज्ञासा चैका, श्रीमच्छङ्कराचार्याणां प्रस्थाने भदन्त

नागार्जुनस्य च माध्यमिक प्रस्थाने को मुख्यो भेदः। पाश्चात्या विद्वांसोऽत्र विप्रतिपन्नाः स्वदेशेऽपि नप्राचीनैरस्मिन् विषये समाधायि। तत्संक्षेपेण यदि भवन्तो भेदं विवृण्यन्तु तर्हि कृतार्थोऽयं जनः स्यादिति भूयोभूयः प्रणम्य।

शुभाशिषां भाजनं
विद्या निवासः

उक्त पत्र का दतिया से प्रेषित श्री स्वामी जी का उत्तर --

ॐ तत्सत्

श्री पीताम्बरा पीठम्
बनखण्डी, दतिया (म०प्र०) भारत
बुधवासरः, दिनाङ्कितम् १ फरवरी ६१

श्रीमन्मिश्र महोदयाः

सादरं नारायण-स्मरणम्।

भवदीयं 'केलिफोर्निया महाविद्यालयातः' (बर्कले-नगरात्) कुशलक्षेमावबोधकं पत्रं बहुपूर्वमेवाधिगतम् तथापि श्री पंडित वासुदेव गोस्वामिनः समागम इदानीं जातः। अतएव प्रश्नोत्तर-प्रदाने विलम्बितः। मन्त्र ग्रहण विषये यन्निर्दिष्टं तस्मिन विषये वक्तव्यमेवमस्ति यज्जन्मकुण्डली पत्राल्लग्नस्थानतः पञ्चमं स्थानं परिशोध्य मन्त्रग्रहणं समीचीनं भवति। तथापि केचिन्मन्त्रा एतादृशा अपि विद्यन्ते, येषां कृते किंमपि स्थानशोधनादिकं नापेक्षते स्वतः सिद्धत्वात्तेषां, केवलं जपमात्रमेव कृतं भवति यथा दक्षिणामूर्त्यादयः। दक्षिणामूर्तेसम्यगनुष्ठिते साधकः सर्वज्ञतां प्राप्नोति। जिज्ञासूनां कृते दक्षिणामूर्तिरेव ज्यायान् इति में निर्णयः।

मन्त्रश्च- "ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रज्ञां प्रयच्छ स्वाहा।"

२४ अक्षराणि, गायत्री छन्दः, सदाशिवो देवता इत्थं विनियुज्यते तथापि विनियोगध्यानादिकमकृत्वापि केवलं जपमात्रेण कर्तुं सुशकम्।

श्रीशङ्कराचार्यश्रीनागार्जुनयोः सिद्धान्तेषु वैदिकावैदिकत्वाद् भेदः। अद्वैतवादो वैदिकः शून्यवादो अवैदिकः। सर्वेषां भावनां निःस्वभावत्वात् शून्यत्वमिति विग्रहव्यावर्तिन्यां नागार्जुनेन साधितम्।

शांकरमते व्यवहारदशायां जगतः सत्यत्वमापेक्षिकसत्यत्वं चाभ्युपगतम् भदन्तनागार्जुनोपि व्यवहारदशायामेवमेव स्वीचक्रे यथा-अपि च न वयं व्यवहार-सत्यत्वं प्रत्याख्याय व्यवहार-सत्यत्वमनभ्युपगम्य कथयामः शून्याः स्वभावा इति (वि० २८) 'नहि व्यवहार सत्यत्वमनागम्य शक्याधर्मदेशनाः कर्तुम्' माध्यमिक कारिकायाम् 'चत्वारः प्रत्यया हेतुश्चालम्बनमनन्तरम्। तथैवाधिपतेयं च प्रत्ययोनास्ति पञ्चमः (मा० २)' एतट्टीकायाम् "ईश्वरादयश्च प्रत्यया एव न सम्भवन्ति" इति चन्द्रकीर्तिः। ईश्वरादीनां प्रत्ययत्वेनास्वीकारो नागार्जुन मते। परं शांकरमते ईश्वरादीनां स्वीकारः सर्वत्र वेदान्तग्रन्थेषु दृश्यते शांकरमते श्रुति-स्मृतिपुराणादीनां प्रामाण्यं सर्वोत्कृष्टरूपेण स्वीकृतम्। नागार्जुन-मते केवला बुद्धधर्मदेशना एवं प्रामाण्यमर्हतिप्रतीत्यसमुत्पाद-रूपा। अतएव शून्यवादोऽवैदिक सिद्धान्तः अनात्मवादत्वादद्वैतवादात्पृथग्भवति। शून्य वादं सम्यक् पर्यालोच्य इदानींतना अद्वैतमतस्यैव रूपान्तरं मन्यन्ते।

एतच्चसमन्वय-मतम् उभयोरैक्य-सम्पादनार्थ भवतुतावदिदम्। बुद्धदेशना अपि श्रौत मतस्योपजीवकत्वात् स्वातन्त्र्यं लब्धुं नार्हति वैदिक-मतमतीव प्राचीनं तदनुसृत्यैव बुद्धमतस्य प्रचारः समजनि। माध्यमिक कारिकायां शून्यस्य लक्षणं शिवरूपेण नागार्जुनः अकार्षीत् यः प्रतीत्य समुत्पादं प्रपंचोपशमं शिवम्। देशयामास सम्बुद्धस्तं वन्दे वदतां वरम्।'' प्रपञ्चोपशमं शिवमिति पदं माण्डुक्योपनिषदि शिवरूपस्य ब्रह्मणोऽर्थे व्यवहृतम्, नूनं नागार्जुनेन तदेवानुसृत्य शून्यार्थे प्रयुक्तम्। शाङ्करं मतं माण्डूक्य कारिका ग्रन्थमाश्रित्य सिद्धान्तितमिति नाति-तिरोहितं तद्विदाम् पुराणादिषु च वेदान्त सिद्धान्त-रूपेण शांकरमतमेवादृतं सूत-संहितायां चैतत्स्फुटम् अतएव शांकर मतं प्रच्छन्नबौद्धरूपमिति प्रवादो न विश्वसनीय एव। अन्यच्च ऋग्वेदेनासदीय-सूक्तेन्द्रसूक्तादिषु चाद्वैतवाद एवोपलभ्यते तच्च सर्वथा शांकरमतानुकूलमेव, सायणाचार्येण इत्थमेव व्याख्यातम्। खण्डनखण्ड खाद्यादिषु अनेकायुक्तयः शून्यवादाद्वैतवादयोः साम्यं भजन्ते ता सर्वा बौद्धानां सन्ति इति विवेक्तुं न पार्यते बुद्धि वैचित्र्य-जन्यत्वात् युक्तीनाम्। सर्वप्रथमे नागार्जुनग्रन्थेषु तल्लब्ध त्वात् तथापि वेदान्त ग्रंथेष्वपि सम्भाव्यत्वान्मन्तुं नोचितमिति वक्तुं न शक्यते।

क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञान धर्मेषुतायिनः। सर्वधर्मास्तथा ज्ञानं नैतद् बुद्धेन भाषितम्। माण्डूक अलात शान्ति प्रकरणे ९९।

इति कारिका व्यख्याने श्री आचार्येण स्वमतं बुद्धात्पृथक् कृतम्। सम्प्रदाय विदः, बुद्धाः, बुद्धम्, वेदान्तेषु, निश्चितम् इत्यादि शब्दाः कारिकासु आगताः ते सर्वे

वेदान्त-सम्प्रदायमभिलक्ष्यैव व्यवहृता: सन्ति।

श्री गौड़पादाचार्य: वेदान्त सिद्धान्तै: सह बौद्धानामपि सिद्धान्त: अवोचत् तथापि कारिकासु आत्मवाद एव मुख्य: सिद्धान्त प्राचीन-वेदान्तिनां युक्तीनां संग्रह एव गौडपादेन अकारि न तु गौड़पाद निर्मित: अद्वैत सिद्धान्त:। अमेरिका से मिश्र जी का दूसरा पत्र मिला--

जिसके उत्तर में श्री स्वामी जी महाराज का अग्र लिखित पत्र भेजा गया था--

पीताम्बरा पीठम्,

वनखण्डी, दतिया, ५-४-६१

श्रीमन् मिश्र महोदया:

सादरं नारायणस्मरणम्।

भवदीयं पत्रं प्राप्तं वृत्तं चावगतम्। भवज्जन्मकुण्डलीपत्रीयं पञ्चमं स्थानं गुरु ग्रहस्य मीन राशि-गतं तच्च प्रदत्त श्री दक्षिणामूर्ति मन्त्रस्य कृतेऽतीव शोभनं सर्वथानुकूलं च विद्यते। श्री भगवान् दक्षिणामूर्तिरपि साधना क्षेत्रे गुरुरूपेण संकीर्त्यते। दक्षिणामूर्ति नाम्नी एका उपनिषदपि १०८ उपनिषत्सु परिगण्यते। प्रात: काले रात्रो वा अभ्यासं कर्तुं समुपयोगाय अथवा यदा कदाचित् यथावसरं कर्तुं शक्यते समयानुसारम्।

२ प्रत्यभिज्ञा शैवमतं चतुर्षु शैवमतेष्वन्यतमम्। अद्वैतमत-प्रतिपादकं सत्कार्यवादानुसारि च श्री माधवाचार्येण 'सर्व-दर्शन-संग्रहे' अभिनवं शैवमतमिदमितिसूचितम्। इदं त्रिकमतमपि कथ्यते पाशुपतसूत्र-भूमिकायां श्री आर०एस० शास्त्री महोदयेनास्मतस्य वर्णनमित्थं कृतम्-

'दि काश्मीर शैविज्म आन अदर हैण्ड गेव मोर प्रामीनेंस टू उमा दैन लार्डशिव। वसुगुप्त एण्ड सोमानन्द वेयर दि फाउण्डर आफ दिस।'

इदं शैवमतं सदपि शक्ति-प्राधान्यतः शाक्तमतमिति वक्तुं सुशकम्। प्रत्यभिज्ञाहृदयं, परा प्रवेशिका, कामकला विलासादि शक्ति प्रधानमेवास्य रूपं दृश्यते।

शांकरमतेऽपि शाक्तोपासना शक्तिशक्तिमतोरभेदमास्थाय ब्रह्म रूपेण प्रचलति। चतुर्षु मठेषु सर्वत्र श्री यन्त्र पूजनं विहितमास्ते आद्य शंकराचार्यैरिति विश्रुतम्। श्री शंकराचार्यात्प्राक् श्री गौडपादाचार्यैः शाक्तमतमनुसृत्य श्री विद्या रत्न सूत्रं सुंभगोदय स्तोत्रं च प्रणीतम्। ततः पश्चात् श्री शंकराचार्यैः स्व सम्प्रदाये प्रवर्तितं पूर्वतनं सर्वशाक्त साहित्यं समुच्चित्य सौन्दर्य लहरी प्रणीता, तत्र प्रायेण प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्ताः एव प्रतिपादिताः सन्ति। शाक्ताद्वैतस्या चिन्त्यभेदाभेद इति संज्ञान्तरं भविष्यति। अचिन्त्यभेदाभेदेतिनाम्ना श्रीकृष्णचैतन्य मतमपि तज्ज्ञैरुच्यते। श्रीकृष्ण चैतन्योऽपि श्री विद्यां समुपास्ते स्म इति हासविदो मन्यन्ते। तथापि वेदान्तभाष्यादौ सत्कार्य वादानुसारि अद्वैत मतं नोपलभ्यते विवर्तमतानुकूलमेव

वेदान्त ग्रन्थेषु अद्वैतप्रतिपादनं दृश्यते। युक्ति-विरहितत्वात्त्यक्तमिदं मतामिति अनुमीयते केवला शाक्तोपासना एव स्वीकृता। तथैव विशिष्टाद्वैत मतादयः शैव वैष्णवानां च परित्यक्ताः उपासना च शिवविष्णुदेवयोरादृता।

श्री शङ्कराचार्यस्य गुरवो गोविन्द भगवत्पादारसेश्वर शैवमतानुयायिनः आसन्। सन्यास धर्मस्य पर्यवसानं यद्यपि वैष्णवे विद्यते, तथापि साम्प्रतं शैवं शाक्तमतमपि तदनुयायिनः सन्यासिनोगृहस्थाश्च आचरन्ति। इत्थं शैव शाक्तमतानां सम्बन्धः शांकरमते विद्यते।

३ बौद्ध सिद्धान्ता अपि शैव-सिद्धान्तान् आश्रित्य प्रवर्तिताः। पाणिनि सूत्रेषु बौद्ध मतमाश्रित्य एकमपि सूत्रं नास्ति तत्र शैवमतमाश्रित्य 'शिवादिभ्योऽण' इति शैव-मतीयं सूत्र मत एव शैवमतं बुद्धमतात्प्राचीनं तदनुसरणं बौद्धानां नवीनत्वात् सम्भाव्यते। शैव वातुलनाथ सूत्रेष्वपि शिव रूपस्य ब्रह्मणेऽर्थे शून्यपदं प्रयुक्तं तथा हठयोग प्रदीपिकायां 'सुषुम्ना शून्य पदवी ब्रह्मरन्ध्र महापथः ३-४ इत्यत्र ब्रह्मणोऽर्थे शून्यपदं दृश्यते। हठयोगिषु यथा गोरक्षादयो महात्मानः तथा बुद्धोऽपि विद्यते गणनायाम्। अतः शैवमतस्यनुकरणं भवितुमर्हति हठयोगिनोऽपि शैवमतानुयायिनो भवन्ति। योगिनी हृदये शाक्तग्रंथेऽपि ब्रह्मण्यपि शून्यपद प्रयुँजन् दृश्यते ग्रन्थकारः एतत्सर्वमाकृति शून्यत्वं निराकार ब्रह्मणोऽर्थे समञ्जसं भवति। असत्ता बोधकं शून्यपदं बुद्धानामस्ति, कुत्रचित् शून्यस्य सत्यत्वमपि तैः प्रतिपाद्यते।

इत्यं माध्यमिक विरुद्ध वंचासि दृष्ट्वा श्री आचार्यैः पूर्व पक्ष रूपेणापि नांगीकृतं माध्यमिक शून्यवादमतम्। वेदान्त दर्शने २-२-३१ दृष्टव्यम्।।

पं० विद्या निवास मिश्र का बर्कले (अमेरिका) से दतिया को श्री स्वामीजी महाराज की सेवा में प्रेषित पत्र--

बर्कले नगर

दिसम्बर ६-६०

श्री चरणों में सादर प्रणाम?

आपका कृपा पत्र भारत में ही प्राप्त हो चुका था, जिससे बड़ी सान्त्वना मिली। इस समय इस भोग और ऐश्वर्य से युक्त जीवन-क्रम में अपने को निरुपाय एवं एकाकी मानता हुआ सुखपूर्वक नहीं हूँ। श्रीमद्भगवत् गीता के पारायण से भी चित्त को शान्ति नहीं मिलती है। इसलिये आपसे मार्ग निर्देश की प्रार्थना करता हूँ। किस मन्त्र को जपना चाहिये और उसका विधान क्या है यह सूचित कर अनुगृहीत करें। इस देश की आन्तरिक शून्यता चित्त को दुःख देती है, ब्राह्मणोचित आचार का निर्वाह भी कष्ट से होता है। इसलिये अब आप ही मुझे निर्देश दीजिये। मैं मानता हूँ कि आपसे ही वह शक्ति प्राप्त होगी जो मुझे यहाँ पर सङ्कटों से पार करेगी। वासुदेव गोस्वामी के माध्यम से श्री चरण पत्रोत्तर देने की कृपा करें।

और एक जिज्ञासा है। श्री शंकराचार्य के ''प्रस्थान'' में तथा भदन्त नागार्जुन के ''माध्यमिक प्रस्थान'' में कौन से मुख्य भेद हैं। पाश्चात्य विद्वानों को इस विषय में निश्चित जानकारी नहीं

है। स्वदेश में भी प्राचीन लोगों ने इसका समाधान नहीं किया। इसलिए संक्षेप में यदि आप (दोनों मतों में) भेद का विवरण दें तो यह जन कृत्यर्थ होगा।

बारम्बार नमस्कार करके शुभाशीर्वाद पात्र--

विद्यानिवास।

उक्त पत्र का दतिया से प्रेषित श्री स्वामी जी महाराज का उत्तर-

ॐ तत्सत्

श्री पीताम्बरा पीठ,
वनखण्डी, दतिया (म.प्र.) भारत
बुधवार, दिनांक १-२-६१

श्रीमान् मिश्र महोदय,

सादर नारायण स्मरण।

आपका "केलिफोर्निया महाविद्यालय" बर्कले नगर से कुशल क्षेम का परिचायक पत्र बहुत पूर्व ही प्राप्त हो गया था तथापि पं० वासुदेव गोस्वामी से समागम अभी हुआ है। अतएव प्रश्न का उत्तर देने में विलम्ब हुआ। मन्त्रग्रहण के विषय में जो निर्देश है, उस विषय में यह कथनीय है कि जन्म कुण्डली से लग्नस्थान से पञ्चम स्थान का परिशोधन कर मन्त्रग्रहण ठीक होता है। तथापि कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं, जिनके लिये स्थान-शोधन आदि किसी की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वे मन्त्र स्वतः सिद्ध हैं। उनके लिये जपमात्र पर्याप्त है, जैसे दक्षिणामूर्ति आदि।

दक्षिणामूर्ति का सम्यक् अनुष्ठान करके साधक सर्वज्ञाता प्राप्त करता है। जिज्ञासुओं के लिये दक्षिणामूर्ति ही श्रेष्ठ हैं, ऐसा मेरा निर्णय है। मन्त्र यह है - **ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधा प्रज्ञां प्रयच्छ स्वाहा** २४ अक्षर, गायत्रीछंद, सदाशिवदेवता, इस प्रकार विनियोग होता है। तथापि विनियोग ध्यान न करके भी केवल जपमात्र कर सकते है।

श्री शंकराचार्य एवं श्री नागार्जुन के सिद्धान्तों में वैदिक, अवैदिक का भेद है। अद्वैतवाद वैदिक है, शून्यवाद अवैदिक है। सब भाव (पदार्थ) नि:स्वाभाव हैं, अत: वे शून्य हैं, ऐसे विग्रह व्यावर्तिनी ग्रन्थ में नागार्जुन ने सिद्ध किया है। शांकर मत में व्यवहार दशा में जगत् को सत्य एवं आपेक्षिक सत्य स्वीकार किया है। भदन्त नागार्जुन ने भी व्यवहार दशा में यही स्वीकार किया है। जैसे -- "हम सब व्यवहार सत्यत्व का खण्डन करके एवं व्यावहारिक सत्यत्व को अस्वीकार करके नहीं करते हैं कि स्वभाव शून्य है" (वि०२८) **"व्यवहार सत्यत्व अस्वीकार करके धर्म देशना भी सम्भव नहीं है"।**

माध्यमिक कारिका में "प्रत्यय (कारण) चार होते हैं; हेतु, आलम्बन, अनन्तर और अधिपतेय। इन चार के अतिरिक्त पांचवां कोई प्रत्यय नहीं है" इसकी टीका में चन्द्रकीर्ति ने कहा है कि "ईश्वर आदि प्रत्यय (कारण) ही नहीं हो सकते है"। नागार्जुन मत में ईश्वर आदि का प्रत्ययत्व स्वीकार नहीं किया गया है, परन्तु शांकर मत में ईश्वर आदि को सर्वत्र

वेदान्त ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है। शाङ्कर मत में श्रुति स्मृति एवं पुराण आदि का प्रामाण्य सर्वोत्कृष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। नागार्जुन मत में प्रतीत्य समुत्पादरूपा बुद्धधर्म देशना ही प्रामाणिक है, इसलिये शून्यवाद अनात्मवादी होने से अवैदिक सिद्धान्त है, और यह अद्वैतवाद से प्रथक है। शून्यवाद का सम्यक पर्यालोचन करके आधुनिक विद्वान शून्यवाद को अद्वैतमत का ही रूपान्तर मानते हैं। यह (विचार) समन्वय मत के अनुसार दोनों मतो के ऐक्य संपादन मात्र के लिये हो सकता है।

बुद्ध के उपदेश भी वैदिक मत के आश्रित हैं, वे स्वतन्त्र नहीं हो सकते। वैदिक मत अतिप्राचीन है, उसका अनुसरण करके बुद्धमत का प्रचार हुआ। माध्यमिक कारिका में शून्य का लक्षण नागार्जुन ने शिवरूप में किया है-- "जिसने प्रतीत्य समुत्पाद रूप प्रपञ्चोपशम शिव का उपदेश दिया, उस उपदेश देने वालों में श्रेष्ठ की मै वन्दना करता हूँ"। "प्रपञ्चोपशम शिव" यह पद माण्डूक्योपनिषद् में शिवरूप ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, निश्चय ही नागार्जुन ने उसका अनुसरण करके शून्य के अर्थ में प्रयुक्त किया है। शांकरमत माण्डूक्य कारिका ग्रन्थ पर ही आधारित है, यह इस विषय के जानकार जानते हैं। पुराणादि में वेदान्त सिद्धान्त रूप से शांकरमत ही आदृत है। सूत संहिता में यह स्पष्ट है, इसलिये शांकरमत प्रच्छन्न बौद्धरूप है, इस प्रकार का प्रवाद विश्वसनीय नहीं है।

ऋग्वेद में नासदीय एवं इन्द्रसूक्तादि में अद्वैतवाद ही उपलब्ध होता है, और वह सर्वथा शांकरमत के अनुकूल हैं। सायणाचार्य ने इसी प्रकार व्याख्या की है। खण्डनखण्ड खाद्यादि ग्रन्थों में अनेक युक्तियां शून्यवाद और अद्वैतवाद में समान है। सभी युक्तियां बौद्धों की हैं, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि युक्तियाँ तो बुद्धि वैचित्र्य से प्रादुर्भूत होती हैं।

सर्वप्रथम नागार्जुन ग्रन्थों में ये युक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तथापि वेदान्त ग्रन्थों में भी उनकी सम्भावना की जा सकती है।

"आकाश सदृश प्रज्ञावान परमार्थदर्शी का ज्ञान धर्मो में विषयांतरों में संक्रमित नहीं होता, परन्तु ऐसा ज्ञान बुद्धदेव ने नहीं कहा"

इस कारिका की व्याख्या में श्री आचार्य ने अपने मत को बौद्ध मत से पृथक किया है। 'सम्प्रदायविद:' 'बुद्धा:' 'बुद्धम्' 'वेदान्तेषु निश्चितम्' इत्यादि शब्द कारिकाओं में आये हैं, वे सब वेदान्त सम्प्रदाय को ही लक्ष्यकर व्यवहृत किये गये हैं, बुद्ध को नहीं।

श्री गौड़पादाचार्य ने वेदान्त सिद्धान्तों के साथ बौद्धसिद्धातों को भी कहा है, तथापि कारिकाओं में आत्मवाद ही मुख्य सिद्धान्त है। गौड़पाद ने प्राचीन वेदान्त की युक्तियों का संग्रह ही किया है। अद्वैतवाद-वेदान्त गौड़पाद के द्वारा निर्मित नहीं है।

अमेरिका से मिश्र जी का दूसरा पत्र मिला जिसके उत्तर में श्री स्वामीजी महाराज का अग्रलिखित पत्र भेजा गया था।

श्री पीताम्बरा पीठ,
वनखण्डी, दतिया
९-४-६१

श्रीमान मिश्र महोदय,

सादर नारायण स्मरण।

आपका पत्र प्राप्त हुआ। समाचार ज्ञात हुए। आपकी जन्मकुण्डली में पंचम स्थान में गुरु है, जो मीन राशि का है, और वह आपको दिये गये दक्षिणामूर्ति मन्त्र के लिये अतीव शोभन एवं सर्वथा अनुकूल है। श्री भगवान् दक्षिणामूर्ति भी साधना क्षेत्र में गुरु रूप से जाने जाते है। दक्षिणामूर्ति नाम की एक उपनिषद् भी १०८ उपनिषदों में परिगणित है। प्रात:काल या रात्रि में अभ्यास करना ठीक है, अथवा समयानुसार कभी भी कर सकते है।

प्रत्यभिज्ञा शैवमत चार शैव मतों में से एक है। सर्वदर्शनसंग्रह में श्री माधवाचार्य ने इसको अद्वैतमत का प्रतिपादक एवं सत्कार्यवाद का अनुयायी नवीन शैवमत बताया है। यह त्रिक मत भी कहा जाता है। पाशुपत सूत्र की भूमिका में श्री आर०एस० शास्त्री ने इस मत का वर्णन इस प्रकार किया है ''काश्मीर शैवमत उमा (शक्ति) को अधिक महत्व देता है, अपेक्षाकृत शिव के। वसुगुप्त और सोमानन्द इस मत के प्रवर्तक थे''।

यह शैवमत शक्तिप्रधान होने से शाक्तमत भी कहा जा सकता है। प्रत्यभिज्ञाहृदय:, पराप्रवेशिका, कामकला विलास आदि इसके शक्ति प्रधान रूप दिखाई देते हैं। शांकरमत में भी शाक्त उपासना शक्ति एवं शक्तिमान् में अभेद मानकर ब्रह्मरूप से प्रचलित है। चारों मठों में सर्वत्र श्रीयन्त्र के पूजन का विधान आद्यशंकराचार्य के द्वारा किया गया है, ऐसा प्रसिद्ध है। श्रीशंकराचार्य से पूर्व श्रीगौड़पादाचार्य ने शाक्तमत का अनुसरण करके श्री विद्या रत्नसूत्र एवं सुभगोदय स्तोत्र की रचना की। उसके पश्चात् श्री शंकराचार्य ने स्वसम्प्रदाय में प्रचलित पूर्व के समस्त शाक्त साहित्य का संचयन कर सौन्दर्य लहरी की रचना की; वहाँ पर प्राय: प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त ही प्रतिपादित हैं। शाक्तद्वैत का अचिन्त्य भेदाभेद यह दूसरा नाम है। श्री कृष्णचैतन्य मत को भी उस मत के जानकार अचिन्त्य भेदाभेद नाम से कहते हैं। श्रीकृष्णचैतन्य भी श्री विद्या की उपासना करते थे ऐसा इतिहास जानने वाले मानते हैं, तथापि वेदान्त भाष्य आदि में सत्कार्यवाद के अनुसार अद्वैतमत प्राप्त नहीं होता है, विवर्तमत के अनुकूल ही वेदान्त ग्रन्थों में अद्वैत का प्रतिपादन दिखाई देता है। यह (शैव) मत युक्ति के अभाव में छोड़ दिया गया है, ऐसा अनुमान किया जाता है। केवल शाक्त उपासना ही स्वीकार की गई। इसी प्रकार शैव और वैष्णवों के विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धान्तों को नहीं माना गया, उनकी शिव और विष्णु की उपासना को स्वीकार कर लिया गया। श्री शंकराचार्य के गुरु गोविन्द भगवत्पाद रसेश्वर शैवमत के अनुयायी थे।

सन्यास धर्म का पर्यवसान यद्यपि विष्णु में होता है, तथापि इस समय शांकरमत के सन्यासी एवं गृहस्थ दोनों शैवशाक्तमत के अनुयायी हैं। इस प्रकार शैव शाक्त मतों का सम्बन्ध शांकरमत में विद्यमान हैं। बौद्ध सिद्धान्त भी शैव सिद्धान्तों का आश्रय लेकर प्रवृत्त हुए हैं। पाणिनि सूत्रों में बौद्धमत का आश्रय लेकर एक भी सूत्र नहीं हैं। वहाँ पर शैवमत का आश्रय लेकर "शिवादिभ्योऽण" यह शैवमत का सूत्र उपलब्ध होता है। अत: शैवमत बुद्धमत से प्राचीन है। शैवमत के पश्चात् होने के कारण बौद्धों ने उसका (शैवमत का) अनुसरण किया और वे नवीन हैं। शैव वातुलनाथ सूत्रों में भी शिवरूप का ब्रह्म के अर्थ में शून्यपद का प्रयोग किया है। उसी प्रकार हठयोग प्रदीपिका में "सुषुम्ना शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्र महापथ:" ३-४ यहाँ पर ब्रह्म के अर्थ में शून्यपद दिखाई देता है। हठयोगियों में जैसे गोरक्ष आदि महात्मा हुए, उसी प्रकार बुद्ध भी गणना में आते है। अत: शैवमत का अनुकरण संभव है। हठयोगी भी शैवमतानुयायी होते हैं। योगिनी हृदय शाक्त ग्रन्थ में ब्रह्म को भी ग्रन्थकार ने शून्यपद से प्रयुक्त किया है। यह सब आकृतिशून्य निराकार ब्रह्म के अर्थ में संगत हो सकता है। असत्ताबोधक शून्यपद बौद्धों का है। कहीं पर शून्य की सत्ता का प्रतिपादन भी उन्होंने किया है।

इस प्रकार के माध्यमिक विरूद्ध वचनों को देखकर आचार्य ने माध्यमिक शून्यवाद को पूर्वपक्ष के रूप में भी स्वीकृत नहीं किया। वेदान्त दर्शन में २-२-३१ देखना चाहिये।

।। ॐ शम् ।।

२३. शाक्त दर्शन

वैष्णव और शैव दर्शनों में शक्ति पदार्थ ब्रह्म पदार्थ में अन्वित माना जाता है। उनमें प्रधानता ब्रह्म की है, शक्ति पदार्थ गौण है, परन्तु शाक्त-मत में शक्ति मुख्य तथा स्वतन्त्र है। प्रत्यभिज्ञा सूत्र में कहा है-- 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः' अर्थात् विश्व का कारण शक्ति तत्व स्वतन्त्र है। कहा है 'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्व रूपिणी, स्फुरत्तामात्मनः पश्चेत्तदा चक्रस्य सम्भवः' अर्थात् जहाँ वह विश्व रूप धारण करने वाली पराशक्ति अपनी इच्छा से अपने में स्फुरण करती है तब संसार चक्र की उत्पत्ति होती है। कार्य-कारण-भाव से सारे पदार्थों को एक पराशक्ति ही व्याप्त कर रखा है इसलिये श्रुति कहती है, ईशावास्यमिदं सर्वं यद् किंच जगत्यां जगत् (यजु० ४०-१) अर्थात् जो कुछ भी नाम रूपात्मक जगत् इस संसार में है, उसे उस ईशा पराशक्ति (ईशाया आवास्यम् ईशावास्यम) ने व्याप्त कर रखा है। इसी के अनुसार सप्तशती में कहा गया है 'देव्या यथा ततमिदं जगतदात्मशक्त्या' तथा श्रीमद्भागवत में इसी के अनुसार कहा है--'आत्मावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' (भा० स्कंध ८-१-१०)।

इन प्रमाणों से शक्तिकारणवाद सिद्ध होता है। यही शक्तिपदार्थ शिवशक्ति रूप धारण करके जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण है। इसे ही परावाक् या सांविदी कला भी कहते है। इसका यह रूप मनवाणी से अगोचर स्वसंवेद्य है। इससे ही

शाक्त तथा शैव मतों में माने जाने वाले छत्तीस तत्त्वों का अविर्भाव होता है। जिसे काम कला विलास में कहा है। 'षट्त्रिंशत्तत्वात्मा तत्वातीता च केवला विद्या' अर्थात् छत्तीस तत्वों का रूप धारण करने वाली महाशक्ति तत्वों से परे केवल शुद्ध स्वरूप वाली भी है। श्रुति में कहा है 'या प्राणेन सम्भवति अदितिर्देवतामयी गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूते भिध्यजायत एतद् वै तत्' (कठ० २-४-७) अर्थात् प्राणात्मा के समस्त देवमयी अदिति आदि शक्ति समस्त प्राणियों की बुद्धि रूप गुहा में स्थित है। समस्त भूतों के साथ उसकी भी व्यक्ति होती है। मरने के बाद क्या शेष रहता है। हे नचिकेता, जिसे तुमने पूछा है, वही यह तत्व है।

शक्ति-कारणवाद वेदान्त सूत्रों में भी महर्षि व्यास देव ने माना है 'अक्षराम्बरान्तधृतेः तथा सा च प्रशासनात् (वे०अ० १-३-१०-११) इन सूत्रों का भाष्य आचार्य भगवत्पाद तथा श्री पञ्चानन भट्टाचार्य ने विशद् रूप से शाक्तवाद के ही अनुकूल किया है। शक्तिवाद के प्रतिपादक चारों वेदों में अनेक प्रसङ्ग हैं। देवी सूक्त, रात्रि आदि ऋग्वेद में, कृत्या, राष्ट्री, विद्युत सूक्त से अथर्व में, ताण्ड्य ब्राह्मण तथा सामवेद संहिता यजुर्वेद (शुक्ल-कृष्ण) के अनेक मन्त्रों में, वहवृचोपनिषद्, छान्दोऽग्योपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद्, (सांख्यायन शाखा) में स्फुटरूप से शाक्त-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। महानारायणोपनिषद्, नारदपरिव्राजकोपनिषद् में ३६ तत्वों का उपदेश दिया गया है इस मत में तत्व विचार तीन प्रकारों में विभक्त हैं, शुद्ध, शुद्धाशुद्ध, अशुद्ध। शिवपुराण में कहा है--

'शक्तिः साक्षान्महादेवी महादेवस्तु शक्तिमान्।
तयोर्विभूतिलेशो वै सर्वमेतच्चराचरम्।
वस्तुकिंचिदचिद् रूपम् किंचिद्वस्तु चिदात्मकम्।
इदं शुद्धमशुद्धं च परं चापरमेव च।
यत् संसरति चिच्चक्रमचिच्चक्र समन्वितम्।
तदेवाशुद्धमपरिमितस्तु परं शुभम्।
अपरं च परं चैव द्वयं चिद्चिदात्मकम्।
शिवस्य शिवायाश्च स्वाभयं चैतत् स्वभावतः।
यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्र चन्द्रिकयोरिव।'

(शिवार्कमणिदीपिका)

अर्थात् शक्ति साक्षात् महादेवी है और महादेव शिव ही शक्तिमान हैं। इन दोनों के विभूति अंश से ही यह चाराचर सारा जगत् है। कोई वस्तु चेतन है, कोई अचेतन है। इन्हीं दोनों तत्वों को जड़, चेतन एवं शुद्ध और अशुद्ध भी कहते हैं, पर और अपर भी इनकी संज्ञा है। अचिंद्-चक्र के साथ चिद् (जीव) संसार का अनुभव कर रहा है इसे ही अशुद्ध कहते हैं। इससे भिन्न तत्व है। चिद् अचिंद् तत्वों पर शिव एवं शिवा का ही आधिपत्य है। जैसे शिव है वैसे ही शक्ति है। इन दोनों की एकता चन्द्र और चन्द्रिका की तरह है।

पराशक्ति के आनन्दांश से शिव और शक्ति तत्व व्यक्त होते हैं। चिदंश से सदाशिव ईश्वर और विद्यातत्व व्यक्त

होते हैं। यही पाँचों शुद्ध तत्व कहे जाते है। शेष एक तीस तत्व सदंश से प्रकट होते हैं। माया, कला, अविद्या, राग, काल, नियति और पुरुष से सात शुद्धाशुद्ध कहे जाते हैं। प्रकृति से लेकर पृथ्वीपर्यन्त शेष चौबीस तत्वों को जिनका निरूपण सांख्य दर्शन करता है उसे अशुद्ध तत्व कहते हैं। इनका विशद निरूपण माण्डूक्य भाष्य में हैं।

॥ ॐ शम्॥

२४. शुद्ध तत्व-वर्णन

जब सृष्टि क्रम प्रवृत्त होने लगता है तब पराशक्ति इच्छारूप से ज्ञान और क्रिया इन दो शक्तियों को व्यक्त करती हैं, ज्ञान शक्ति अन्तरङ्ग और क्रिया शक्ति बहिरङ्गमानी जाती है। उसी ज्ञान शक्ति में तत्व अभिमान करने से 'मैं सर्वज्ञ हूँ' जब ऐसा समझता है, तब उसे शिव कहते हैं। वही पराशक्ति जब क्रिया शक्ति में लीन होकर 'मैं सबका कर्त्ता हूँ' ऐसा व्यवहार करती है तब उसे शक्ति तत्व कहते हैं। श्री नरनानन्दनाथ ने कहा है--

'अत्र शिव शब्देन ज्ञान शक्तिरभिधीयते ज्ञान शक्त्यधिष्ठितत्वात् शिव तत्वस्य, शक्ति शब्देनापि क्रियाशक्तिरभिधीयते, क्रियाशक्त्यधिष्ठितत्वाच्छक्ति तत्त्वस्य चिदानन्दस्वरूपिण्याः सर्वत्रज्ञानक्रियाभ्यामेव प्रपञ्चनिर्माण दर्शनात्' (कामकला विलास की टीका) अर्थात् इस शास्त्र में शिव शब्द से ज्ञान शक्ति तथा क्रियापद से शक्ति तत्व लिया जाता है, क्योंकि शिवतत्व ज्ञान का अधिष्ठाता एवं क्रिया की अधिष्ठात्री शक्ति है।

सच्चिदानन्दस्वरूपिणी पराशक्ति ज्ञान और क्रिया इन दोनों शक्तियों से प्रपञ्च बनाती है।

शिव-शक्ति का भेद केवल व्यावहारिक है। वास्तव में दोनों अभिन्न हैं। इसे ही सामरस्य कहते हैं। आचार्य श्री शंङ्कर स्वामी ने कहा है 'अतः शेषः शेषीत्ययमुभय साधारण तथा स्थितः सम्बन्धी वा समर सपरानन्दपरयोः (सौ०ल०३४) अर्थात अन्त में जो तत्व बचा रहता है, वही शेष एवं शेषी (अङ्गी) दोनों साधारण रूप से कहा जाता है, क्योंकि समस्त परानन्द स्वरूप से ही शिव-शक्ति

का सम्बन्ध है। परातत्व शिवशक्ति उभयात्मक है। यही समयि मत है। देवी भागवत में कहा गया है 'सगुण निर्गुण चाहं समये शंकरोत्तमा। सदाहं कारणं शम्भो न च कार्य कदाचन्, सगुणा कारणत्वाद् वै निर्गुण पुरुषान्तिके। (दे०भा० ३, ६), शिव-शक्तिरिति ह्मं कं तत्वमाहुर्मनीषिण:। शिवाभिन्नापराशक्ति: सर्वकर्म शरीरिणी' 'न शिवेन बिना देवी न देव्या च विना शिव:' इन शास्त्रीय वचनों का तात्पर्य शिव-शक्ति के अभेद बोधन में ही है।

कितने ही दार्शनिक शक्ति तत्व को कारण नहीं मानते हैं। उनके मत से निरपेक्ष ब्रह्म कारणवाद ही सम्मत है, परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। शक्ति के बिना ब्रह्म कारणवाद असंगत है। इसलिये कहा है। 'तत्वारूढ: स भगवान शिव परमकारणम्। शिव: सर्वस्य कर्तेयं शक्ति: कारणमुच्यते' अर्थात् तत्वारूढ भगवान शिव तथा शक्ति ही जगत के कर्त्ता तथा कारण हैं। सृष्टि के लिये उन्मुख दोनों तत्वों के आदिसमागम को ही महा बिंदु कहते हैं। इसी से नादतत्व व्यक्त होता है। वही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीरूप धारण कर लेता है। 'एकोऽहं बहुस्याम' इस श्रुति में कहा गया हैं। आनन्दरूप लीलार्थ ही यह शिव शक्तिमय सारा विश्व चेष्टा कर रहा है। कार्य कारण का अभेद होने से यह जगत् ब्रह्मरूप ही है। 'एकोऽहम्' यह वाकय शब्द ब्रह्म ले.सं १२

एवं सामरस्य शिव शक्ति रूपात्मक अद्वैत का एक सा ही बोधन करता है।

"अकार; सर्व वर्णाग्रय: प्रकाश: परम शिव:। हकारोऽन्त्य: कलारूपों विमर्शाख्य: प्रकीर्तित:" अर्थात् शिव को प्रकाश तथा शक्ति को विमर्श कहते हैं। समस्त वर्णों के आदि वर्ण आकार को शिव की वाचकता, सबके अन्त में हकार को शक्ति बोधकता है। इसी को जानने वाला संक्षेप में अहंपद है यही नाद ब्रह्म या शब्द ब्रह्म का श्रेष्ठ रूप है। इसी से सम्पूर्ण ज्ञान की अधिष्ठात्री मातृकाएँ व्यक्त होती हैं, जिन्हें वाच्य-वाचक भाव को बोधक कहते हैं। 'नाद:सर्ववर्णोत्पत्तिहेतुर्वर्ण:' अर्थात् नाद ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी होता है। इन चारों वाणियों की अधिष्ठात्री भी शक्ति तत्व है। इनके अनुकूल ही उसे भी चार नामों से कहा जाता है। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका उसकी संज्ञायें हैं। कामकला विलास में तथा उसकी टीका में कहा गया है--"वामा नाम स्वान्त: स्थितप्रपञ्चवमनात् विश्वजनयित्री, ज्येष्ठा सर्वमंगलकारिणी, रौद्री सर्व रोग विद्राविणी, अम्बिका सर्वेष्टप्रदा शक्ति:' परा वाक् अम्बिका तथा इच्छा, ज्ञान, क्रियाशक्तिक्रम से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप कही जाती है।

नाद तत्व से श्वेत बिन्दु (शिवात्मक) तथा रक्त बिन्दु (शक्त्यात्मक) व्यक्त होते हैं। श्वेत में रक्त मिलकर मिश्र इन तीनों बिन्दुओं से ही यह दृश्यमान सारा जगत उत्पन्न होता है, जिसे कहा है, 'वागथौ' नित्ययुतौ परस्परं शिवशक्तिमयौ एतौ। सृष्टिस्थितिलयभेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिबीजरूपेण' (का०वि०१२) अर्थात् शब्द और अर्थ शिव शक्तिमय परस्पर नित्य सम्बन्ध वाले हैं। 'वर्ण: कलापदं तत्वं

मन्त्रोभुवनमेव च। इत्यध्वषट्कं देवेशि भाति त्वयि चिदात्मनि।।' अर्थात् वर्ण, पद और मन्त्र ये तीन शब्दाध्व कहे जाते हैं। इन तीनों का अविर्भाव नादतत्व से होता है। कला, तत्व और भुवन ये तीन अर्थाध्व कहे जाते है शब्दाध्व के वर्ण, पद और मन्त्र के अनन्त प्रकार हैं। अर्थाध्व में कला, भुवन और तत्व के प्रकार भी अनेक हैं। कला के पाँच प्रकार है-- निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता। तत्व छत्तीस हैं, जिनका वर्णन इस निबन्ध में क्रमशः किया जायेगा। भुवन दो सौ चौवीस हैं, जिनका सम्बन्ध तत्वों से ही हैं ! कला भी तत्वों के ही अन्तर्गत है। यही षडध्व का संक्षिप्त रूप है।

(वर्णमाला नामक पुस्तक में इसे बताया गया है)

इनकी भी उत्पत्ति शक्तितत्व से ही हुई है, जिन्हें 'वागथौ नित्ययुतौ' इस श्लोक से कहा गया है। इस प्रकार शब्दमय और अर्थमय इन द्विविध सृष्टियों का कारण शक्ति तत्व है।

शक्ति तत्व इच्छा शक्ति की अन्तरङ्गभूत ज्ञान शक्ति में प्रवेश कर जिस प्रकार जल में भिगोने से चना उच्छूनभाव फूलकर अंकुरायमाण होता है वैसे ही प्रपञ्च को उद्देश्य कर 'अहमिदम्' मैं यह प्रपञ्च हूँ इस प्रकार अभिमान युक्त हो जाता है। वही सदाशिव या सदाख्यतत्व कहा जाता है। क्रियाशक्ति में प्रविष्ट होकर अंकुरित प्रपञ्च को 'अहमिदम्' रूप से अभिमान करने से शक्ति तत्व को ईश्वर तत्व कहते है। इसलिये अन्तरहन्ता सदाशिव और बहिरहन्ता ईश्वर कहा जाता है। जल तरंग न्याय से यही शक्तितत्व अहं शब्द वाच्य अहंकार और इदं शब्द वाच्य प्रपञ्च

इन दोनों में रहने वाले अभेद ज्ञान से युक्त होकर शुद्ध विद्या तत्व कहलाता है। यही शास्त्र गुरु द्वारा प्राप्त होने पर मोक्ष का साधन होता है। ये पांचों तत्व शब्द कहे जाते हैं।

शुद्धाशुद्ध तत्व

शुद्धाशुद्ध तत्व में पहला तत्व माया है, जो शुद्ध विद्या तत्व से परिणत होकर अपने में लीन मायिपञ्च के निर्माण के कारण सूक्ष्म पदार्थों में अन्योन्याभावरूप भेदबुद्धि के प्राधान्य से माया तत्व कहा जाता है। षट्त्रिंशत् तत्व संदोह में कहा है- 'मायाविभेद बुद्धिर्निजांश जातेषु निखिलजीवेषु। नित्यं तस्य निरंकुशविभवं वेलेव वारिधे रून्धे' अर्थात् जिस प्रकार वेला (तट) समुद्र द्वारा अवरुद्ध रहती है इसी प्रकार माया समस्त जीवों में भेद- बुद्धि रूप रहती है। कला, विद्या, राग, काल और नियति ये पुरुष के पञ्चकञ्चुक हैं। इन्हीं पांचों आवरणों से पुरुष (जीव) में सुख-दु:ख-बन्ध अल्पज्ञत्व आदि भावों की प्रतीति होती रहती है। मायामल से आवृत्त होकर पुरुष अपनी सर्वज्ञता, पूर्णता, नित्यता आदि को भूलकर सुख-दु:ख आदि को मानने लगता है, उसका कारण किञ्चित् कर्तव्यरूप शक्ति का पहिला कंचुक कला तत्व है।

अपूर्ण किञ्चित्ज्ञत्वरूप ही अविद्या या विद्यातत्व हैं। अपूर्ण रूप शक्ति, जो विषयों में प्रीति रूप है, उसे राग कहते हैं। सृष्टि प्रलय रूप व्यवहार को व्यक्त करती हुई परिच्छेद्-क्रिया की सम्पादक शक्ति को काल कहते हैं। अवश आत्मा का कृत्याकृत्य में नियम पूर्वक जो शक्ति नियमन करती है, उसे नियति कहते हैं। जैसे अग्नि से अनेक चिनगारियाँ उत्पन्न होकर पृथक प्रतीत

होती है, ऐसे ही, परतत्व से इच्छाशक्ति के योग से अविर्भूत होने वाला तत्व पुरुष कहा जाता है। वह पराशक्ति का अंशभूत है। आणव, कार्मण, माया इन त्रिविध मलों के आवृत्त होने के कारण वह संसारी कहा जाता है। इसका परिणाम अणु है। कई ग्रन्थों में प्रतिबिम्ब या आभास भी माना गया है। जैसे देवी गीता में कहा है 'अविद्यायां तु यत् किञ्चित्प्रतिबिम्बं नगाधिप। तदेव जीव संज्ञा स्यात् सर्व दुःखसमाश्रयः' (दे०भा०स्कं० ७-३१-४५) अर्थात् अविद्या में प्रतिबिम्ब ही जीव तत्व है और वह दुखः-सुख से समन्वित है। यह शुद्धाशुद्ध तत्वों का संक्षेप से निरूपण है।

अशुद्ध तत्व

कार्योन्मुख गर्भित इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति में रहने वाला भेद जैसे ज्ञान क्रिया नहीं तथा क्रिया ज्ञान नहीं इस प्रकार वाले मायातत्व से स्फुरित होने वाले तथा सत्व-रज-तम इन गुणों की साम्यावस्था वाले तत्व को प्रकृतितत्व कहते हैं, जो बुद्धि अहंकरादि तेईस तत्वों को जनक है। यह ऐसा ही है इस प्रकार के निश्चयात्मक ज्ञान को बुद्धि कहते है। अहंकार ममाकार के कारण को अहंकार तत्व कहते हैं। संकल्प विकल्पात्मक ज्ञान को मनस्तत्व कहते हैं। इन्हें अन्तःकरण भी कहते हैं। अन्तःकरण रूप से परिणत शक्ति तत्व शब्द ज्ञान का साधन होने से श्रोत्र तत्व कहलाता है। स्पर्श का ज्ञान करने से त्वक्तत्व तथा रूप ज्ञान का हेतु नेत्रतत्व है। रस ज्ञान का हेतु जिव्हातत्व एवं गन्ध ज्ञान का हेतु घ्राणतत्व है। इन्हें पञ्चज्ञानेन्द्रिय

रूप से परिणत शक्ति तत्व उच्चारण क्रिया का साधन होने से वाक्तत्त्व कहलाता है। दानादान का साधन पाणितत्व ओर गमनागमन-क्रिया का हेतु पाद तत्व कहा जाता है।

मलत्याग का साधन पायुत्व एवं मूत्र, वीर्य के विसर्ग का साधन उपस्थतत्व है। इन्हें पञ्च कर्मेन्द्रिया भी कहते हैं। ये तेरह तत्व इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति प्रधान हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों के क्रम से ग्राह्य, शब्द तत्व, स्पर्शतत्व, रूपतत्व, रसतत्व तथा गन्धतत्व कहे जाते हैं। शक्तितत्व पञ्चतत्वों के सूक्ष्म रूप पञ्चतन्मात्राओं द्वारा स्थूल पञ्च महाभूत रूप से परिणत होकर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी रूप धारण करके यह दृश्यमान स्थूल प्रपञ्च रूप से प्रतीत हो रहा है। यही अशुद्ध तत्व कहा जाता है।

जगत की उत्पत्ति, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह ये पांचों कृत्य जगन्निष्ठ हैं, लीला परमेश्वर में है। जैसे योगी बिना उपादान के ही वस्तुओं को बना लेता है ऐसे ही परातत्व इच्छा मात्र से ही जगत की रचना करता है। इसमें किसी प्रयोजन की उत्प्रेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा हृदय में कहा है 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति तथा स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगरत्युद्गिरत्यपि इत्यादि।

प्रत्यभिज्ञा मतानुसार ही शाक्त मत भी मानता है। पृथ्वी तत्व से लेकर शिव पर्यन्त तत्वों का लय होता है। अन्त में विमर्श तत्व भी 'अहम्' में लय हो जाता है। इसे ही वेदान्त में 'अहंब्रह्मास्मि' नाम से कहते हैं। यही शिव शक्ति के सामरस्य

का बोधक सर्वोत्कृष्ट महावाक्य रूप प्रमाण है। जीव भी शिव का ही रूप है। इसका भी अभेद यह वाक्य बताता है। जगत इस मत में सत्य है। देवी गीता में मिथ्या भी माना है। इसलिये ब्रह्मपरिणामवाद एवं विवर्तवाद दोनों इस मत में सम्मत मालूम होते हैं।

॥ ॐ शम् ॥

२५. शाक्त साधना

अनादिकाल से जीव अविद्या में पड़कर अज्ञानात्मक द्वैत के अधीन होकर अनेक योनियों में भ्रमण कर रहा है। इसे वास्तविक अद्वैत का बोध न होने से ही संसार के दु:ख सहन करने पड़ रहे हैं। जब 'अहम्' रूप से शिवशक्ति की एकता का अनुभव कर लेता है तब अविद्या से निवृत्त होकर जीव शुद्ध तत्वों में पहुँच जाता है अथवा ब्रह्म रूप से अपने को जान लेता है। तभी उसे मुक्ति प्राप्त होती है। शाक्त मत से अनुभूत इसके प्रधान उपाय यहां लिखे जाते हैं। जिस पराशक्ति ने सारी सृष्टि रचना की है, वही प्रत्येक शरीर में कुण्डलिनी रूप से विद्यमान है। आधार चक्रम में सोये हुये सर्प के समान साढे तीन फेरे मे इसका स्वरूप है। जब तक यह सोई हुई रहती है तब तक जीव की अज्ञानावस्था है। इसके जागने पर ही यथार्थ ज्ञान होता है। सद्गुरु की कृपा द्वारा पराशक्ति का मन्त्रात्मक स्वरूप दीक्षातत्व के साथ अनुग्रह रूप आधार (आश्रय) प्राप्त करना साधक को अविद्या के परिधि से निकलने के लिये प्रधान उपाय है। जो शब्द तत्व प्रत्येक प्राणी के शरीर के अन्दर समस्त ज्ञान के कारण रूप से व्यक्त हो रहा है, उसी के विचित्र योगों से मन्त्रों के स्वरूप बनते हैं। अर्थ रूप से वही पराशक्ति प्रत्येक मन्त्र की अधिष्ठात्री है। प्रधानत: दश महाविद्या स्वरूप से उसकी व्यक्ति शाक्त सम्प्रदाय में मानी जाती है।

प्रथमत: क्रिया योग पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्धि, देवता का साक्षात्कार करना होता है। पश्चात् क्रम दीक्षा स्वक्रम के मन्त्र

तथा अपने से भिन्न अन्य शक्तियों का योग प्राप्त कर दशों महाविद्याओं के अंग उपांगों सहित मन्त्रों का जप करना होता है। तान्त्रिक शक्तिसाधना की पूर्णता पूर्णाभिषेक द्वारा होती है। यह सारी उपासना परिपाटी सगुण या सम्भूति नाम से वेद में कही गई है। इसके आगे असंभूति उपासना है, जिसे ऊर्ध्वाम्नाय में 'हंस : सोऽहम् ह् सौः स्हौः' आदि क्रम से उपास्य कहा है। 'सम्भूति च विनाशं च यस्तद् वेदोभय सह' अर्थात् सम्भूति-असम्भूति इन दोनों की एक साथ ही उपासना करने से अमृत की प्राप्ति होती है। केवल एक की उपासना न्यून ही है। सगुण उपासना में क्रम का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक हैं। जब तक क्रम प्राप्त न होगा तब तक शक्ति उपासना का कोई विशेष फल नहीं हो सकता। काली, तारा, षोडशी, छिन्नमस्ता और बगला के स्वतन्त्र क्रम हैं। छिन्नमस्ता का तारा में, बगला का षोडशी में अन्तर्भाव होकर काली, तारा और षोडशी के ही तीन क्रम प्रधान हैं। छान्दोग्य मधुविद्या प्रसंग में षडाम्नाय का वैदिक रूप कहा गया है। श्री गौडपादाचार्य ने श्री विद्यारत्न सूत्रों में आम्नाय का स्वरूप स्पष्ट रूप से कहा है।

इन दोनों उपासनाओं का रहस्य बिना कुण्डलिनी के जाग्रत हुये नहीं ज्ञात हो सकता। मन्त्रपुरश्चरण, संस्कार, अन्तर्याग, बहिर्याग, न्यास, ध्यान आदि द्वारा मन्त्रचैतन्य होकर परमभाव को प्राप्त करना तथा पशुभाव से अत्यन्त निवृत्त होना ही इस साध ना के कर्मयोग का रहस्यात्मक स्वरूप है। कुण्डलिनी का स्वरूप ऐसा माना गया है-

'मित्रावरुण सदनाद् वायुनिरोधेन स्वाधिष्ठानादि कमल भेद पुरःसरं' द्वादशान्तार विन्द्वासनस्थ परमशिवांकमुपसर्पन्ती महामातृका कुण्डलिनी बहुविधनादात्मिका या अनुभूयते समाधि समाधिगत सर्वार्थैमहा माहेश्वरैः स्वात्मत्वेन मन्यते नवनादमयीति' (का०वि०२७) अर्थात् आधार स्थान से वायु निरोध कर स्वाधि ष्ठानादि कमलों का भेदन करके द्वादश दल कमल में स्थित परम शिव के अंक में जाती हुई महामातृका कुण्डलिनी नवनाद रूप वाली समाधिभावापत्र माहेश्वर योगियों से अनुभूत होती है। उसे वे लोग स्वात्म रूप से मानते हैं। सिद्धासन से बैठकर प्राण-अपान के ऐक्य द्वारा मूलाधार से वायु को उठाकर स्वाधिष्ठान में प्रदक्षिणा करते हुये मणिपुर में जाकर अनाहत चक्र एवं विशुद्ध में वायु का निरोध कर आज्ञाचक्र में शीघ्र गति से पहुँचकर ब्रह्मरन्ध्र से ज्योति का साधन करने के पश्चात् पुनः मूलाधार में लौटाना चाहिए।

इसे ही कुलपथ या ब्रह्मपथ कहते हैं। इसके मालूम होने पर ही साधक यथार्थ कौल होता है।

इसलिये कहा है 'कौलात्परतरंनहि।' यहीं ब्रह्म का यथार्थ साक्षात्कार होता है। इस मार्ग में नवनाद का अनुभव योगी करता है। जो कि चिणी, चिणचिणी, घण्टानाद, शंखनाद, तन्त्रीनाद, मृदंगनाद, वेणुभेरी और मेघ रूप से है। इसके अभ्यास से लय योग की सिद्धि होती है। हठयोग प्राण निरोध का सम्पादक है। प्राण निरुद्ध होने ही नादानुभूति होती है। कुण्डलिनी का स्वरूप वर्णात्मक भी है। उसके भी नौ वर्ग हैं। अ वर्ग, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य वर्ग, ष वर्ग और ल वर्ग यह ५१

मातृकाओं का समुदाय है। यही समस्त मातृका मण्डल कुण्डलिनी का रूप है। इसका निरूपण ज्ञानार्णव में भगवान शिव ने बहुत ही सुन्दर रूप से किया है। देवता का स्वरूप कुण्डलिनी है मन्त्र उसका अनुभावक है। इस प्रकार दृढ अभ्यास से साधक शक्ति तत्व के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सभी ऐश्वर्य एवं निःश्रेयस को प्राप्त करता है। यह शाक्त साधना का संक्षिप्त सार है।

शाक्त दर्शन इसी परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अग्रसर है।

॥ ॐ शम् ॥

२६. षट्-पारायण-विधि

प्रातः सन्ध्या

मूलमन्त्र से आचमन करके मूलमन्त्र से ही तीन बार प्राणायाम करें। फिर संकल्प करें। यथा-

ममोपात्त समस्त-दुरित-क्षय-द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं (देशकालौ संकीर्त्य) श्री राजराजेश्वरीप्रीत्यर्थ (देवीमानरीत्या संकल्प्य) श्रीविद्याप्रातः संध्यामुपासिष्ये।

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।।
वीरान्द्वयष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकं।
श्रीमन्मालिनि मंत्रराजसहितं वंदे गुरोर्मण्डलं।।

श्रीगुरुपादुका मन्त्र का उच्चारण कर, सुमुखादि पाँचों मुद्राओं का प्रदर्शन कर, श्री गुरुदेवता को प्रणाम कर, मूलमन्त्र से ऋष्यादि न्यास कर ध्यान करें। अपने आगे धेनुमुद्रा से जल को अमृतमय कर, मूलविद्या से आठ बार अभिमन्त्रित कर उस जल से सोलह स्वरों (बिन्दु सहित) (अं नमः, आं नमः............अः नमः तक से) मार्जन करे। तत्पश्चात् दाहिने हाथ में जल लेकर 'क' से लेकर 'म' तक मूलविद्या-समेत (कं नमः खं नमः..............मं नमः क-५ ह-६ स-४ तक) से अभिमन्त्रित कर आचमन करें। फिर 'य' से 'क्ष' पर्यन्त (यं नमः रं नमः.......क्षं नमः क-५ ह-६ स-४) से शिर का प्रोक्षण कर सूर्य मण्डल में देवी का निम्न प्रकार ध्यान करें-

सकुंकुम-विलेपनामलिक-चुम्बि- कस्तूरिकां।
समन्द-हसितेक्षणं स-शर-चाप-पाशांकुशाम्॥
अशेष-जन-मोहिनीमरुणमाल्यभूषाम्बरां।
जपा-कुसुमभासुरां जपविधौ स्मरेदम्बिकाम्॥
चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे कुचोन्नते कुंकुमरागशोणे।
पुंड्रेक्षुपाशांकुशपुष्पबाणहस्ते नमस्ते जगतेकमातः॥

ध्यान करने के बाद दाहिने हाथ में जल लेकर 'लं वं रं यं हं' से तीन बार अभिमन्त्रित कर 'क-५ ह-६ स-४' से भी तीन बार अभिमन्त्रित कर उस जल को बायें हाथ के अंगुष्ठ व अनामिका से 'क-५ ह-६ स-४' से अपने शिर का तीन बार प्रोक्षण करे। शेष जल को बायें हाथ में रखकर उस तेज रूप जल को बायें नासापुट से अन्दर खींचकर अपने देह के अन्दर स्थित सकल कलुष के प्रक्षालन की भावना कर दाहिने नासापुट से निकालकर उस जल को फिर दाहिने हाथ में लेकर अपने वायीं तरफ जलती हुई वज्रशिला का ध्यान कर '४ श्लीं पशुं हुं फट्' से उस शिला पर पटके ! तब हाथ धोकर मूलविद्या से लेकर क-१५' से जो स्वर चल रहा हो, सहस्त्रदलकमल से निकलते हुए उस जल को बायें हाथ में रखकर 'अमृतमालिनी स्वाहा' मन्त्र से सब अंगुलियों से उस जल से अपने शिर का तीन बार प्रोक्षण करे।

४ क-५ आत्मतत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ ह-६ विद्यातत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ स-४ शिवतत्व शोधयाम स्वाहा, ४ स-४ शिवतत्व शोधयामि

स्वाहा, ४ ह-६ विद्यातत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ क-५ आत्मतत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ क- ५ आत्मतत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ क- १५ सर्वतत्वं शोधयामि स्वाहा।

तीन या नौ बार आचमन करे। अर्घ्य को अञ्जली में लेकर खड़े होकर 'क- ५ वाग्भवेश्वरि विद्महे, ह-६ कामेश्वरि च धीमहि, स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै एषोऽर्घ्यः स्वाहा' से तीन बार अर्घ्य देकर 'ह्रां ह्रीं ह्रूं सः श्री सूर्य एष ते अर्घ्यः स्वाहा' से सूर्य की तरफ मुख करके तीन बार अर्घ्याञ्जलि देकर 'क-१५ श्री महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकाँ तर्पयामि नमः' से तीन बार तर्पण कर 'ह्रां ह्रीं ह्रूं हंसः श्री सूर्य तर्पयामि नमः' से सूर्य का तीन बार तर्पण कर मूलाधार में मूलविद्या के प्रथम कूट का कोटि विद्युत के समान चिन्तन कर उस तेज को सुषुम्ना से ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर बहते हुये से आकाश में वन्हिमण्डल का आवाहन कर उस तेज से उत्पन्न वाग्भवेश्वरी का ध्यान करें। यथा-

पीतां पीताम्बराँ पीतस्त्रग्विभूषानुलेपनाम्।
तडित्कोटिसमाभासां बालामक्षस्त्रगुज्ज्वलाम्।।
पुस्ताभयकराम्भोजाँ बह्निपीठे निषेदुषीम्।
वाग्मिनीं वाग्भवोद्भूताँ त्रीक्षणां सुस्मितां स्मरेत्।।

तत्पश्चात् 'क-५ त्रिपुरा वागीश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः' से गन्ध-पुष्प-अक्षत से तीन बार पूजन करें। 'ऐं त्रिपुरादेवि विद्महे वाग्भवेश्वरि धीमहि, तन्नो मुक्तिः प्रचोदयात्, श्रीत्रिपुरा वागीश्वरी

श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' से वाग्भव गायत्री का उच्चारण कर तीन बार अर्घ्याञ्जलि को ऊपर की ओर फेंक कर प्रथम कूट का उच्चारण कर 'त्रिपुरा वागीश्वरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' से तीन बार तर्पण कर श्री गुरुपादुका मन्त्र का ध्यान कर तीन बार प्राणायाम कर मातृका न्यास करें। फिर ऋष्यादि कर षडङ्गन्यास कर '४ क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे, ह-६ कामेश्वरि च धीमहि, स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्'--ऐसी तुरीय गायत्री का, फिर 'ऐं त्रिपुरादेवि विद्महे, वाग्भवेश्वरि धीमहि, तन्नो मुक्तिः प्रचोदयात्' - ऐसी वाग्भव कूट गायत्री का और फिर मूलविद्या का, फिर वाग्भवकूट का यथाशक्ति जप करे। सन्ध्या के पश्चात् नाथ-पारायण का संकल्प कर ध्यान पारायण करे।

मूलाधार-स्थित चतुर्दल-कमल में विद्युत्पटल के समान भासुर वर्णवाली, पुष्प-बाण-इक्षु-कोदण्ड-पाश और अंकुश धारण करने वाली, युगाक्षर और नित्याक्षरमयी भगवती के चारों ओर अपने करों में ज्ञान मुद्रा और वरमुद्रा को धारण किये हुये वाग्भव बीज 'ऐं' की उपासना में तत्पर मूल पंकज-स्थित योनिमण्डल में नव-नाथों का ध्यान करें। यथा-

प्रातर्मूलाधारगते कमले वह्निमण्डले
वाग्वीजरूपाँ नित्यां तां विद्युत्पटलभासुराम्।
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशांकुशलसत्कराम्।
स्वेच्छागृहीतवपुषं युगनित्याक्षरात्मिकाम्।।

घटिकावरणोपेतां परितः प्राञ्जलीनाथ।
ज्ञानमुद्रावरकरान् वाग्भवोपास्ति-तत्परान्।
नवनाथान् स्मरेन्मूलपंकजे योनिमण्डले॥

१- नाथ पारायण

इस प्रकार ध्यान कर देवीमान वर्ष, मास और दिवसपूर्वक नाथ पारायण करें। यथा-

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अं आँ इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ह्रीं श्रीं अं प्रकाशानन्दनाथरूपिणीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ह्रीं श्रीं लृं विमर्शानन्दनाथरूपिणी श्रीमहा०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः कं खं गं घं ङं ह्रीं श्रीं कं आनन्दानन्दनाथ०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः चं छं जं झं ञं ह्रीं श्रीं चं ज्ञानानन्दनाथ०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः टं ठं डं ढं णं ह्रीं श्रीं टं सत्यानन्दनाथ०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः तं थं दं धं नं ह्रीं श्रीं तं पूर्णानन्दनाथ०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः पं फं बं भं मं ह्रीं श्रीं पं स्वभावानन्दनाथ०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः यं रं लं. वं शं ह्रीं श्रीं शं यं प्रतिभानन्दनाथ०।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः षं सं हं लं क्षं ह्रीं श्रीं षं सुभगानन्दनाथ०।

इस प्रकार नवनाथात्मिका मूलविद्या का जप करे। इसके उपरान्त यथाशक्ति तद्दिन नित्यविद्या का भी जप करें इस प्रकार नाथ पारायण समाप्त हो जाता है।

२- घटिका पारायण

संकल्प में घटिका-पारायण का योग कर देना चाहिये।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः यकारादिघटिका रूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी पूजायामि नमः।

४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः रकारादि घटिकारूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी पूजयामि नमः।

इसी प्रकार क्षकारादि पर्यन्त तत्पश्चात् अकारादि से क्षकारादि पर्यन्त कर लेना चाहिये।

घटिका पारायण 'अ ए च त य' के क्रम से प्रारम्भ होता है। यहाँ 'य' से, जो वर्ष के प्रथम दिन की घटिका थी, उसी क्रम से लिख दिया गया हैं। इसी प्रकार उपयुक्त क्रम से घटिका पारायण कर लेना चाहिये।

उपस्थान

त्रिपुरा सर्वरूपाणि चराणि स्थावराणि च।
सायं प्रातस्तु मध्याह्ने सर्वदा सा परा स्थिता॥
उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवी यथा सुखम्॥

गुं गुरुभ्यो नमः। दुं दुर्गायै नमः। गं गणपतये नमः। क्षं क्षेत्रपालाय नमः। सं सरस्वत्यै नमः। पं परमात्मने नमः।

श्रीशिवाचार्यवर्याद्यां शंकराचार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥
दिव्यश्रीपादुकां धात्वा परितुष्याम्यहं सदा।
श्रीगुरुं परमं वन्दे पश्चात्तं परमं गुरुम्॥
परमेष्ठिगुरुं वन्दे परापरगुरुं भजे।
आनन्दाख्यगुरुं वन्दे तच्छिष्यस्तत्कृपावशः॥

सम्प्रदाय-क्रम से श्रीनाथ आदि की पूजा कर परमेष्ठि गुरु, परापर गुरु, परम गुरु व गुरु के नाम के आगे 'आनन्दनाथ' शब्द जोड़कर उच्चारण करे - आनन्दस्वच्छन्दचिद्रूपानन्दगोत्रः अमुकानन्दनाथ अमुकशर्माहं भो अभिवादये।

० इति प्रातः संध्या-विधिः ०

माध्याह्निक संध्या

प्राणायाम से सूर्य-तर्पण तक प्रायः सन्ध्या के समान मध्याह्न सन्ध्या करे।

अनाहत में मूलविद्या के द्वितीय कूट को रक्तवर्ण जैसा ध्यान करे। उस तेज को सुषुम्नामार्ग ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर बहते हुए नासापुट के मार्ग से निकाल कर सूर्य मण्डल में आवाहन कर कामेश्वरी का ध्यान करे। यथा-

रक्तां सुरक्ताम्बर, भूषणाढ्यां,
पाशांकुशाभीतिवरान् दधानाम्।
शुचिस्मितामुत्कटयौवनाढ्यां,
कामेश्वरीं संस्मरेत् त्रिनेत्राम्॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह-६ श्री त्रिपुरा कामेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः- इस मन्त्र से तीन बार पूजन कर 'क्लीं' त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि च धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्'- से कामराज कूट गायत्री का उच्चारण कर 'श्री त्रिपुरा कामेश्वरी श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' से तीन बार अर्घ्याञ्जलि देकर फिर कामराज कूट का उच्चारण कर 'श्री त्रिपुरा कामेश्वरी श्रीपादुकाँ तर्पयामि नमः' से तीन बार तर्पण कर श्रीगुरु पादुकाओं का ध्यान कर प्राणायाम तीन बार कर पहले की भांति मातृकान्यास कर फिर ऋष्यादि-करषडंगन्यास करें। फिर '४ क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे ह-६ कामेश्वरि च धीमहि स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' -से तुरीय गायत्री का, फिर 'क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि च धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्' से कामराज कूट गायत्री का, फिर मूलविद्या का, फिर कामराज कूट का यथाशक्ति जप करे। संकल्प में तत्व-पारायण का योग कर देना चाहिये।

ध्यान

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले।
कामराजात्मिकां देवीमलक्तकुसुमारुणाम्॥
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षुचापपाशांकुशान्विताम्।
परितः स्वात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्वशक्तिभिः॥
रक्तमाल्याम्बरालेपभूषाभिः परिवारिताम्।
युगनित्याक्षरमयीं घटिकावरणां स्मरेत्॥

इस प्रकार देवी का ध्यान कर तत्व-पारायण करे।

३ - तत्व-पारायण

४ क-१५ ङ अं अ ऊं विजया हंसः अं शिवतत्वस्वरूपिणी श्री महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

४ क-१५ ङ अं अ ऊं विजया हंसः कं शक्तितत्वस्वरूपिणी श्री महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

४ क-१५ ङ अं अ ऊं विजया हंसः खं सदाशिवतत्वस्वरूपिणी श्री महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

इसी प्रकार '४ क-१५ ङ अं अ ऊं विजया हंसः क्षं पृथ्वी तत्वस्वरूपिणी श्री महात्रिपुरसुन्दरीं श्री पादुकां पूजयामि नमः' तक कर लेना चाहिये।

'अं कं ' से लेकर 'लं क्षं' पर्यन्त शिव-शक्ति-सदाशिव आदि से पृथ्वीतत्व पर्यन्त तत्व-पारायण उपर्युक्त प्रक्रिया से किया जाता है।

अब उपस्थान प्रातः सन्ध्यावत् करे-

त्रिपुरा सर्वरूपाणि.......................अभिवादये।

॥ इति माध्याह्निक विधिः॥

सायं सन्ध्या

प्राणायाम आदि से तर्पण-पर्यन्त प्रातः सन्ध्या की भाँति करे। फिर आज्ञाचक्र में (ह क्ष) के बीच में मूलविद्या के तृतीय कूट को शुद्ध स्फटिक वर्ण जैसा ध्यान कर उस तेज को सुषुम्ना के मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर बहते हुए नासापुटाकाश में स्थित सोममण्डल का आवाहन कर उससे उत्पन्न अमृतेश्वरी वृद्धा का ध्यान करें। यथा-

शुक्लां शुक्लाम्बरालेपस्त्रग्विभूषाविभूषिताम्।
जटाजूटत्रयां नेत्रत्रयोद्भासि मुखाम्बुजाम्॥
ईषत्स्फुटितदंष्ट्रां च भैरवीरूपमास्थिताम्।
जरापलितसंकीर्णा लम्बमानपयोधराम्॥
पाशांकुशौ पुस्तकं च स्फटिकाक्षस्त्रजं करैः।
दधानां शक्तिबीजोत्थां पूर्णेन्दोर्मण्डले स्थिताम्॥
ध्यायेदाद्यां परां शक्ति शक्तिमद्भिर्निषेविताम्।
भोगमोक्षप्रदां शान्तामनताममृतेश्वरीम्॥

अर्थात् पूर्णेन्दुमण्डल में शक्तिबीज से समुत्थित, शुक्लवस्त्रा, शुक्लालङ्कारयुक्त, तीन नेत्र और तीन जटाजूटवाली भैरवी रूप में स्थित, जरा से पलित, लटकते हुये पयोधरोंवाली आद्या

पराशक्ति भोग मोक्षप्रदा शान्ता अमृतेश्वरी का ध्यान करना चाहिये।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स-४ श्रीत्रिपुराऽमृतेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः इस मन्त्र से तीन बार पूजन कर फिर 'सौः त्रिपुरादेवि विद्महे' शक्तीश्वरि च धीमहि, तन्नोऽमृता प्रचोदयात्' -- इस तीसरी गायत्री का उच्चारण कर 'श्रीत्रिपुराऽमृतेश्वरी श्रीपादुकायै अर्घ्यम् कल्पयामि स्वाहा' इस मन्त्र से तीन बार अर्घ्याञ्जलि देकर फिर शक्तिकूट का उच्चारण कर 'श्रीत्रिपुराऽमृतेश्वरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' इस मन्त्र से तीन बार तर्पण कर श्री गुरु पादकाओं का ध्यान कर तीन बार प्राणायाम करे। फिर पहिले की भाँति मातृकान्यास कर पुनः ऋष्यादि कर षडङ्गन्यास करे। तत्पश्चात् '४ क-५ वाग्भवेश्वरी विद्महे ह-६ कामेश्वरि च धीमहि स-४ तन्न शक्तिः प्रचोदयात्' - इस तुरीय गायत्री को तथा 'सौः त्रिपुरादेवि विद्महे शक्तिश्वरि च धीमहि। तन्नोऽमृता प्रचोदयात' - इस शक्तिकूट गायत्री का, मूल विद्या का, फिर शक्तिकूट का जप करें। सन्ध्या के पश्चात् तिथि नित्या के पारायण का संकल्प कर पारायण करे। संकल्प में तिथिनित्या पारायण का योग कर देना चाहिए।

४ - नित्या पारायण

१) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अं ऐं सकल ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः अं कामेश्वरी नित्यारूपिणी श्री महात्रिपुरसुंदरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

२) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः आं ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवंशकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावण अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं भें ब्लूं हें ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं आं भगमालिनी नित्यारूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

३) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ईं ओं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा इं नित्यक्लिन्ना नित्यरूपिणी श्री महात्रिपुरसुंदरी श्रीपादुकां पुज० नमः।

४) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ईं ओं क्रों भ्रों क्रौं झौं छौं ज्रौं स्वाहा ईं भेरुण्डानित्या-रूपिणी श्री महात्रिपुरसुंदरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

५) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ई उं ओं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः उं वह्निवासिनी नित्या-रूपिणी श्री महात्रिपुरसुंदरी०

६) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ऊं ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं ऊं महावज्रेश्वरी नित्यारूपिणी श्री महात्रिपुर०।

७) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः ऋं शिवदूती नित्या-रूपिणी श्री महात्रिपुर०।

८) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ॠं ओं ह्रीं हुं खे च छे क्षः स्त्रीं हुँ क्षें ह्रीं फट् ॠं त्वरिता नित्या-रूपिणी श्री महात्रिपुर०।

९) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः लृं ऐं क्लीं सौः लृं कुल सुन्दरी नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर० सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

१०) ४ क- १५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः लृं हस्क्लरडैं हस्क्लरडीं हस्क्लरडौः लृं नित्या नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर०सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

११) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः एं ह्रीं फ्रें स्त्रूं क्रों आं क्ली ऐं ब्लूं नित्यमदद्रवे हूँ फ्रें ह्रीं ऐं नीलपताका नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर० सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

१२) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ऐं भमरयूं ऐं विजया नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर० सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

१३) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ओं स्वौं ओं सर्वमंगला नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर० सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

१४) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः औं ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि देव देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं र र र र र र र हूँ फट् स्वाहा औं ज्वालामालिनी नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर० सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

१५) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अं च्कों अं चित्रा नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर० सुन्दरी श्री पादुका पूजयामि नमः।

१६) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अः क-१५ अः ललितामहानित्यारूपिणी श्री महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः। अब उपस्थान प्रातः सन्ध्यावत् करे-

त्रिपुरा सर्वरूपाणि..................अभिवादये।

तुरीय सन्ध्या

प्राणायाम आदि से तत्व आचमन-पर्यन्त प्रातः संध्यावत् करे।

सहस्त्रार कमल में पद्मराग के समान प्रभावाले मूलविद्या के त्रयोदशाक्षररूप तुरीय कूट का ध्यान कर बहते हुये नासापुट तारकमण्डल में परमाकाश में आवाहान कर उससे उत्पन्न तेजरूप भगवती का ध्यान करे।

'हसकल हसकहल सकल ह्रीं' इस तुरीय कूट का उच्चारण कर 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पुजयामि नमः' -इस मन्त्र से तीन बार पूजन कर फिर 'क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे, ह-६ कामेश्वरि च धीमहि स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' - इस तुरीय गायत्री का उच्चारण करे। फिर 'श्रीमहात्रिपुरासुन्दरी श्रीपादुकायै अर्घ्य कल्पयामि स्वाहा' इस मन्त्र से तीन कूट का उच्चारण कर 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि' इस मन्त्र से तीन बार तर्पण कर श्रीगुरुपादुका का उच्चारण कर फिर तुरीय गायत्री का, फिर मूलविद्या का, फिर तुरीयकूट का यथाशक्ति जप करे। सन्ध्या के पश्चात् नाम पारायण का संकल्प कर नाम पारायण का ध्यान करना चाहिये। यथा-

रक्तां रक्तांम्बरां रक्तस्त्रग्विभूषानुलेपनाम्।
पाशांकुशेक्षु-कोदण्ड-प्रसून-विशिखां स्मरेत्॥

इस प्रकार हृदय में कालनित्या का ध्यान कर पुनः हृदय में काल चक्र के मध्य में श्रीचक्र की भावना कर काल नित्याओं से वेष्टित पाश, अंकुश इक्षु, कोदण्ड को धारण करनेवाली रक्तवर्णा, रक्ताम्बरा, रक्तमाल्य-विभूषणा महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करे।

५ - नाम पारायण

आई पल्लवितै: परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमादक्षरै:।
काद्यै: क्षांतगतै: स्वरादिभिरथ क्षांतैश्च तै: सस्वरै:॥
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते।
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्त्रोभ्य: परेभ्यो नम:॥

निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में '४ क-१५ ङ अं अ ऊं विजया हंस: अ' और अन्त में 'हंस:' जोड़ कर पारायण करे। यथा-

४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंस: अ काई हंस:।

खाई, गाई, घाई, ङाई, चाई, छाई, जाई, ञाई, टाई, ठाई, डाई, ढाई, णाई, ताई, थाई, दाई, धाई, नाई, पाई, फाई, बाई, भाई, माई, याई, राई, लाई, वाई, शाई, षाई, साई, हाई, ळाई, क्षाई। अर्थात्।

पहले दिन का पारायण -

१) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंस: अ काई हंस: से अ क्षाई हंस: तक=३५।

२) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंस: आ काई हंस: से आ क्षाई हंस: तक=३५।

३) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंस: इ काई हंस: से इ क्षाई हंस: तक=३५।

४) क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ई काई हंसः से ई क्षाई हंसः तक=३५।

इसी प्रकार क्रम से......................अः काई हंसः से अः क्षाई हंसः तक=३५ x १६=५६० यह पहिले दिन का नाम पारायण हुआ।

दूसरे दिन का पारायण -

१) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अ क काई हंसः से अ क क्षाई हंसः तक=३५।

२) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः आ क काई हंसः से आ क क्षाई हंसः तक=३५।

इसी प्रकार क्रम से ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अः क. काई हंसः से अः क क्षाई हंसः। ३५ x १६=५६०

तीसरे दिन का पारायण -

१) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अ ख काई हंसः से अ ख क्षाई हंसः तक=३५।

२) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः आ ख काई हंसः से आ ख क्षाई हंसः तक=३५।

इसी प्रकार क्रम से ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अः ख काई हंसः से अः ख क्षाई हंसः। ३५ x १६=५६०

इसी प्रकार क्रम से ३६ दिनों का पारायण समझ लेना चाहिये।

३६ दिन के ५६० X ३६=२०१६० नाम हुये।

यदि पहले दिन के नाम पारायण में ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अ आई हंसः से अ क्षाई तक=३६ के क्रम से प्रारम्भ किया जावे तो पहले दिन ५७६ नाम हुये और इसी प्रकार ३६ दिन के २०७३६ नाम हुये।

६ - मन्त्र पारायण

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी।
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी॥
शक्तिः शंकरवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी।
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारी ह्यसि॥

माया = ह्रीं, कुण्डलिनी = ऐं, क्रिया - क्लीं, मधुमती -मातृका वर्ण। मातृका चार प्रकार से ली जाती है--

१) शुद्ध मातृका अ आ ळ क्ष पर्यन्त।

२) बिन्दु युक्त अं आं ळ क्षं पर्यन्त।

३) विसर्ग युक्त अः आः ळः क्षः पर्यन्त।

४) बिन्दु-विसर्ग-युक्त अंः आंः ळ क्षंः पर्यन्त।

शक्तिः सौः, शंकरवल्लभा=ह् स्त्रीं, त्रिनयना=वौषट्, वाग्वादिनी=वद

वद वाग्वादिनी स्वाहा, भैरवी= ह् स्त्रैं ह् स्क्लरीं, ह् स्त्रौः, ह्रींकारी=ह्रीं, त्रिपुरा =क-१५, परापरमयीं=ह् सौः स्हौः, माता=हस्क्लर् डैं हस्क्लर् डीं, हस्कलर डौं कुमारी=ऐं क्लीं सौः। इस प्रकार से जप क्रम आरम्भ करें।

१) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं अं काली ऐं क्लीं सौः से आरम्भ करके ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं क्ष काली ऐं क्लीं सौः पर्यन्त ५१ बार **शुद्ध मातृका** सहित जप करे।

तत्पश्चात्

२) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं अं काली ऐं क्लीं सौः, से आरम्भ करके ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं क्ष काली ऐं क्लीं सौः पर्यन्त ५१ बार **सविन्दु मातृका** सहित जप करे।

तत्पश्चात्

३) ४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं अं काली ऐं क्लीं सौः, से आरम्भ करके ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं क्ष काली ऐं क्लीं सौः पर्यन्त ५१ बार **विसर्गयुक्त मातृका** का जप करे।

तत्पश्चात्

४) '४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं अंः काली ऐं क्लीं सौः से आरम्भ करके ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ह्रीं क्षं काली ऐं क्लीं सौः पर्यन्त बिन्दु-विसर्ग का ५१ बार जप करे। इस प्रकार ह्रीं बीजयुक्त कुल २०४ बार जप करें। तदुपरान्त इसी प्रकार (जहाँ पर 'ह्रीं' सम्पुट किया गया) 'ऐं' बीजयुक्त ऊपर

लिखे अनुसार २०४ बार जप करें। तत्पश्चात् 'क्लीं' बीजयुक्त' भी २०४ बार जप करे। इसी प्रकार कुल ६१२ जय काली विद्या के साथ होता है। इसी प्रकार काली के स्थान पर कला (६१२) मालिनी (६१२) मातङ्गी (६१२) विजया (६१२) जया (६१२) भगवती (६१२) देवी (६१२) शिवा (६१२) शांभवी (६१२) का जप करें। इनका कुल योग ६१२० जप एक दिन का पारायण है।

दूसरे दिन शक्ति का मन्त्र 'सौः' (जहाँ पर -'ऐं क्लीं सौः' सम्पुटित है) लगाकर दशों विद्याओं के साथ ऊपर लिखे अनुसार ६१२० बार जप करे।

तीसरे दिन शंकरवल्लभा का मन्त्र 'ह् स्त्रीं' लगाकर दशों विद्याओं के साथ ऊपर लिखे अनुसार ६१२० बार जप करे।

चौथे दिन त्रिनयना का मन्त्र 'वौषट्' लगाकर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

पाँचवें दिन वाग्वादिनी का मन्त्र 'वद वद वाग्वादिनि स्वाहा' लगा कर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

छठवें दिन भैरवी का मन्त्र हस्त्रैं ह्स्कलरीं 'ह् स्त्रौ;' लगाकर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

सातवें दिन ह्रींकारी का मन्त्र 'ह्रीं' लगाकर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

आठवें दिन त्रिपुरा का मन्त्र 'कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं' लगाकर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

नवें दिन परापरमयी का मन्त्र 'ह् सौः स्हौः' लगाकर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

दसवें दिन माता का मन्त्र 'ह् स्क्ल्र डैं ह् स्क्ल्रडीं हस्क्ल्रडौ;' लगा कर दशों विद्याओं के साथ ६१२० बार जप करे।

दशों दिन का जप ६१,२०० का एक पर्याय कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य महाविद्याओं के साथ पारायण प्रवृत्त होता है।

इसके बाद उपस्थान प्रातःसन्ध्यावत् करे।

७ - चक्रेश्वरी पारायण

नाथ-पारायण के पश्चात् बहुत से साधक चक्रेश्वरी पारायण भी करते हैं। नियमानुसार चक्रेश्वरी पारायण का संकल्प करके पारायण करना चाहिये।

- ध्यान -

अरुणां करुणातरंगिताक्षीं, धृतपाशांकुशचापबाणहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखै-रहमित्येव विभावये भवानीम्॥

१) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ह्रीं श्री अं आं सौः **त्रिपुराचक्रेश्वरी** श्रीपादुका पूजयामि नमः।

२) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः **त्रिपुरेशी चक्रेश्वरी** श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

३) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः कं खं गं घं ङं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः **त्रिपुरसुन्दरी चक्रेश्वरी०।**

४) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः चं छं जं झं ञं ह्रीं श्रीं ह् क्लीं ह् सौ; **त्रिपुरवासिनी चक्रेश्वरी०।**

५) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः टं ठं डं ढं णं ह्रीं श्रीं ह् सैंः ह् स्क्लीं ह् सौ; **त्रिपुरा चक्रेश्वरी०।**

६) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः तं थं दं धं नं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लें **त्रिपुरमालिनी चक्रेश्वरी०।**

७) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः पं फं बं भं मं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं सौः **त्रिपुरा सिद्धा चक्रेश्वरी०।**

८) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः यं रं लं वं शं ह्रीं श्रीं हस्त्रैं हस्क्लरीं हस्रौ **त्रिपुराम्ब चक्रेश्वरी०।**

९) ४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः षं सं हं ळं क्षं ह्रीं श्रीं मूलं **श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी चक्रेश्वरी०।**

इति चक्रेश्वरी पारायणम्

चिर कालनित्या का १०८ बार, मूल का १०८ बार, प्रथमकूट का १०८ बार जप कर तीन प्राणायाम कर ऋष्यादि कर - षडङ्गन्यास भी करे।

८ - आम्नाय पारायण

नियमानुसार आम्नाय पारायण का संकल्प करके आम्नाय पारायण करे । मास के प्रथम वर्ण के साथ प्रत्येक मन्त्र का योग करे। त्रितारी दिननित्या 'आं' के बाद मूलमन्त्र को जोड़ अन्त में 'दुं हंस;' लगाना चाहिए।

ध्यान-

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपति पीठत्रयं भैरवं।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्॥
वीरान्द्वयष्टचतुष्कषष्ठिनवकं वीरावलीपञ्चक्म्।
श्रीमन्मालिनि मंत्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥

१–पूर्वाम्नाय की निम्नलिखित एकादश शक्तियों का जप करना चाहिये–

१) शुद्धविद्या, २) बाला, ३) द्वादशार्धा, ४) हसन्तिका ५) मातङ्गी,

६) शुका, ७) सारिका, ८) वीणा, ९) वेणु, १०) लघु श्यामा, ११) पूर्वाम्नाय समयेश्वरी।

२–दक्षिणाम्नाय में ६ शक्तियों का जप करना चाहिये– १) सौभाग्यविद्या, २) बगला, ३) वाराही, ४)वटुक, ५) तिरस्करिणी, ६) दक्षिण समयेश्वरी।

३–पश्चिमाम्नाय में ५ शक्तियों का जप करना चाहिये–१) लोपामुद्रा, २) भुवनेश्वरी, ३) अन्नपूर्णा, ४) महाकामकला, ५) पश्चिमाम्नाय समयेश्वरी।

४–उत्तराम्नाय में ६ शक्तियों का जप करना चाहिये– १) तुरीयाम्बा २) महार्धाम्बा, ३) अश्वारूढ़ा, ४) मिश्राम्बा, ५) वाग्वादिनी, ६) समयेश्वरी (उत्तराम्नाय की)।

५–ऊर्ध्वाम्नाय में ८ शक्तियों का जप करना चाहिये– १) पराप्रसाद, २) पराभट्टारिका, ३) पराशाम्भवी, ४) पराषोडशी, ५) महाषोडशी, ६) अनुत्तर अम्बिका, ७) कालकर्षिणी, ८) समयेश्वरी (ऊर्ध्वाम्नाय की)।

॥ ॐ शम् ॥

२७. अहंपद तत्व

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥

(अथर्ववेद ४-३०-१)

शब्दार्थ - मैं रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेवे आदि देवों के साथ (विचरण) अपना कार्य करती हूँ। मेरे ही सामर्थ्य से ये देवता कार्य कर रहे हैं मैं ही मित्रावरुण के प्रकाश को धारण करती हूँ और मैं ही इन्द्राग्नि ओर अश्विनी कुमार के प्रकाश को भी धारण करती हूँ।

व्याख्या

वैदिकतत्वज्ञान में अहं पद को जान लेना ही अन्तिम उद्देश्य माना गया है। दृश्यमान यह सारा संसार अहं पद का ही कैलाश है। भगवद्गीता के दशम अध्याय में इस अहं पद की व्याख्या बड़े विस्तार से की गई है। उपनिषदों का अन्तिम पर्य्यवसान अहं पद में ही है जिसे ''अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों के द्वारा कहा गया है। उसी अहं का निरूपण इस राष्ट्रीय सूक्त में भी बताया गया है शैवशाक्त सिद्धान्तों में भी अहं शब्द का निरूपण है। इस मत में अन्तिम तत्त्व का पय्यर्वसान शिवशक्ति रूप में बताया गया है। जिसे संकेत पद्धति में इस प्रकार कहा गया है।

अकारः सर्ववर्णाग्र्य; प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यः कलारूपः विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः ॥१॥

सब वर्णों के अग्र में आया हुआ अकार शिव का वाचक है और सब वर्णों के अन्त में आया हुआ हकार शक्ति का

वाचक है। शिवशक्ति का अभेद ही अहं पद बताता है। इसी अहं पद से समस्त जगत् का सृष्टिक्रम प्रवृत्त हुआ है, इसी तत्व को मंत्र में कहा गया है। इसी अहं से एकादश-रुद्र, अष्टवसु और द्वादश आदित्य उत्पन्न होकर सृष्टि को चला रहे हैं -

ग्यारह रुद्र :१. अजैक पाद, २. अहिर्वुध्न्य, ३. पिनाकी, ४. अपराजित, ५. ऋत, ६. पितृरूप, ७. त्र्यम्बक, ८. महेश्वर, ९. वृषा कपि, १०. शम्भू, ११. हवन।

बारह आदित्य : १. अंश, २ भग, ३. मित्र, ४ वरुण, ५. धाता, ६. अर्यमा ७. जयन्त, ८. भास्कर, ९. टवाटटा, १०. पूषन, ११. इन्द्र, १२. विष्णु। **आठ वसु** १. धरा, २. ध्रुव, ३. सोम, ४. सवितृ, ५. अनिल, ६. अनल, ७. प्रत्यूष, ८. प्रभास। अनेक संख्या में गणरूप से जो विश्वेदेव मित्रावरुण, इन्द्राग्नि और अश्विनीकुमार आदि देवता हैं सब एक ही ब्रह्म का विस्तार है। 'एकोऽहं बहुस्याम' इस वाक्य में जो बताया गया है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः॥२॥

मैं (आदि शक्ति) राष्ट्र के रक्षार्थ राष्ट्री नाम से कही जाती हूँ। उपासकों को अनेक प्रकार के ऐश्वर्य मैं ही देती हूँ। मैं ही यज्ञों के लिए पूर्ण ज्ञानस्वरूपिणी हूँ। ऐसे स्वरूपवाली मुझे जान कर विद्वान् लोगा उपासना करते है। देवता लोग मेरी ही तुष्टि के लिये अनेक प्रकार के कार्य करते है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामृत मानुषाणाम्।
यं कामये तन्तुमुग्रं कृणोति तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३॥

मैं ही विद्वानों की कामना के अनुसार उन्हें विद्वान ब्रह्मवेता कर देती हूँ। मैं हीं सब मनुष्यों को आनन्द प्राप्ति अर्थ जगत् रूप से सब कार्य करती हूँ। जिस-जिस कामना के लिये मनुष्य जो-जो काम करते हैं। वही मैं उन्हें प्रदान करती हूँ। ब्रह्मा, ऋषि, सुमेधा मैं ही बनाया करती हूँ। (प्रसिद्ध दुर्गापाठ में भी मेधा ऋषि के द्वारा श्री भगवती का उपदेश दिया गया है।)

मया सोऽन्नमत्तियो विपश्यति यः प्राणाति य ईंश्रृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥

सभी ऐश्वर्यों को मेरे द्वारा ही मनुष्य प्राप्त करते हैं और जीवित हैं। जो (ईं) ऐसी कामकला को गुरुमुख से श्रवण कर मुझे जानते हैं वे ही यथार्थ ज्ञाता हैं और जो नहीं जानते हैं वे यथार्थ ज्ञाता नहीं है। हे मनुष्य! तेरी सिद्धि के लिये मैं उपदेश देती हूँ।

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाउ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५॥

मै रुद्र के लिये धनुष का पराक्रम प्रदान करती हूँ जिसे पिनाकी कहा गया है। ईश्वर विरोधियों का मैं संहार तथा मैं वीर पुरुषों के लिए पुरुषार्थ प्रदान करती हूँ, मैं ही स्वर्ग, मृत्यु लोक में अन्तर्यामी रूप से तथा प्रविष्ट हो रहीं हूँ।

अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राध्या यजमानाय सुन्वते ॥६॥

देवाताओं की पुष्टि के लिये मैं ही सोम नामक पदार्थ धारण करती हूँ। त्वष्टा, भग, पूषा इ. देवातओं को मैं ही धारण

करती हूँ। देवताओं को सुंदर आहुतियों से तृप्त करने की यजमानों द्वारा आहुतियाँ भी मैं ही धारण करती हूँ।

अहं सुवेपितरमस्य मूर्धन् मम् योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोष स्पृशामि॥७॥

इस सृष्टि के नियामक जो पितर हैं उन्हें मैं बनाती हूँ। सृष्टि का कारणभूत जो मैं हूँ उसकी जो योनि है वह भी मैं हूँ जिससे तमाम चीजें पैदा हैं उसकी नियामक भी मैं हूँ।

अहमेव वातइव प्रवाभ्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
पुरा दिवा पर एना पृथिव्यैताणतीमहिम्ना संबभूव ॥८॥

जिस प्रकार वायु किसी से प्रेरित न होकर स्वेच्छा से चलती है उसी प्रकार मैं भी किसी अन्य की सहायता न लेकर सम्पूर्ण विश्व को बनाती हूँ। द्युलोक, पृथवी लोक इससे जो परे लोक हैं वह भी मुझ में ही समाये हुए हैं।

उक्त देवी सूक्त में आये हुए अहं पद में शिवशक्ति का समान रूप से अर्थ बताया गया है तथापि सृष्टि के कार्य में शक्ति की प्रधानता होने से शक्ति तत्व को मुख्य मानकर ही इस देवी (राष्ट्रीय) सूक्त की प्रधानता बताई गई हैं, क्योंकि शक्ति के बिना सृष्टि नहीं होती है, परमार्थ भी बिना शक्ति के नहीं होता है। सृष्टि के सभी कार्यो की नियामक शक्ति पदार्थ ही है अस्तु तत्व का मनन करना चाहिए और शास्त्रोक्त विधि से उसकी उपासना करनी चाहिये।

॥ ॐ शम् ॥

२८. पुनर्जन्म

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः।
जीवंम् व्रातम् सचेमहि॥
(ऋ० १०-५७-५; यजु० ३-५५)

शब्दार्थ - मैं पुनः पुनः माता - पिता को प्राप्त करूं।
दिव्य जन होकर जीव के विग्रह को प्राप्त करूं॥

व्याख्या

प्राचीनसमय से ही पुनर्जन्म के सिद्धान्त में मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोग यह मानते हैं कि शरीर के मरने पर आत्मा भी मर जाता है और कुछ लोगों का मत है कि मृत्यु शरीर की ही होती है, आत्मा अमर हैं, नित्य सच्चिदानन्दस्वरूप है। इसी का निर्णय कराने के लिए नचिकेता ने यम से कहा था, जिसे-

'अस्तीति एके नायमस्तीति चैके।'

(कठ० १-१-२०)

इस कठ श्रुति द्वारा व्यक्त किया गया है। मृत्यु तत्त्व के अधिष्ठाता यम ने नचिकेता के प्रश्न की कठिनता को जानकर अनेक प्रलोभनों द्वारा उसे इस प्रश्न से हटाकर किसी अन्य वरदान के लिए कहा, क्योंकि यह प्रश्न बहुत ही दुरूह है एवं सर्व साधारण इसे नहीं समझ सकते। यह विषय कठोपनिषद् के प्रथमाध्याय की प्रथमवल्ली में बताया गया है। इस विषय को ब्रह्मविद्या प्राप्त होने पर योग विधि के द्वारा ही जाना जा सकता है। इसकों अनेक उदाहरणों द्वारा बताया गया है। इसलिए अन्त में कहा है --

विद्यामेता योगविधिं च कृत्स्नम्।

(कठ० २६-१८)

योगदर्शन में इस विषय के सूत्र पर कहा गया है --

संस्कार साक्षात् करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।

(३-१८)

'संस्कारों के साक्षात्कार होने पर ही पूर्व जाति का ज्ञान होता है।' जो लोग इस पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर केवल पुस्तकों के पठन मात्र से या सुनी-सुनायी बातों द्वारा अपनी राय दिया करते हैं, उसका कथन वास्तव में भ्रान्ति से रहित नहीं हो सकता। बहुत-से लोग तर्क द्वारा इसे जानना चाहते हैं। तर्क तत्त्व निर्णय का एक साधन अवश्य है, तथापि सारे विषयों का निर्णय तर्क से ही नहीं हो सकता। इस पुनर्जन्म के विषय में तर्क की अनुपयोगिता बतायी गई है। 'नेषां तर्केण मातिरापनेया' (कठ० २-९) कहा गया है। पुनर्जन्म की प्रत्यक्ष घटनायें भी घटती रहती हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। विद्वानों ने तर्क से भी इसे सिद्ध किया है।

एक बार प्लेटों ने सुकरात से पूछा कि, आप सभी विद्यार्थियों को एक-सा ही पाठ पढ़ाते हैं, तथापि कोई विद्यार्थी एक बार में, कोई दो बार में, कोई तीन-तीन बार में पाठ को जान पाते है, और कोई दस बार में भी नहीं समझ पाते, इसका क्या कारण है, सुकरात ने इसका उत्तर दिया कि जिन

लोगों ने पहले से ही अभ्यास किया है उन्हें जल्दी ही समझ में आ जाता है और जिन्होंने कम किया है। उन्हें समझने में देर लगती है तथा जिन्होंने समझना आरम्भ ही किया है, उन्हें और भी अधिक देर लगती है।' यह कथन पुनर्जन्म से ही सम्बन्धित है। बिना पुनर्जन्म माने इस भेद का युक्तिसंगत उत्तर नहीं हो सकता। इस्लाम और ईसाई धर्मों में पुनर्जन्म न मानने का कारण योग एवं आत्मविद्या का अभाव ही है, तथापि पुनर्जन्म की घटनाएं तो उनके सामने भी आती हैं।

भारतवर्ष में जैन, बौद्ध अवैदिक मतों में भी पुनर्जन्म स्वीकार किया गया है। केवल चार्वाक ने अर्थकाम दृष्टि की मुख्यता से धर्म एवं मोक्ष को स्वीकार नहीं किया है। चार्वाक-दर्शन में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विरोध किया गया हैं। विदेशों में भी मार्क्स के सिद्धांत के अनुसार पुनर्जन्म के सिद्धांत को व्यर्थ व झूठा बताया गया है। बहुत से पाश्चात्य विद्वानों ने भी आर्य जाति के मान्य वैदिक ग्रन्थों में भी ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'पुनर्जन्म' का यह सिद्धान्त प्राचीन समय का नहीं है, क्योंकि वैदिक संहिता-ग्रन्थों में इसे नहीं माना गया है इस सिद्धान्त को बाद में साम्राज्यवादी क्षत्रियों ने स्वीकार करके साम्राज्यवाद एवं कैपटलिस्टवाद के आश्रम रूप से प्रवृत्त किया है, क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् के अश्वपति-जैवालि-संवाद में एवं श्रीमद्भगवद्गीता (२-२२) में भी उसी का अनुसरण किया गया है। 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' आदि श्लोक श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के संवाद में

बताये गये हैं। यह भी क्षत्रियों का सिद्धान्त है, जो कि क्षत्रियों द्वारा ही समर्पित है।

परन्तु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है कि, पुनर्जन्म का सिद्धान्त साम्राज्यवादियों एवं कैपिटलिस्टों का है। वैदिक संहिता-ग्रन्थों में यह सिद्धान्त नहीं है:- यह कथन भी प्रमाण रहित है। अथर्ववेद के अठारहवें काण्ड में अनेक मन्त्र पुनर्जन्म के समर्थक आये हैं, जिनका पाठ ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में भी आया है। यहां पर एक मन्त्र उदाहरण के रूप में लिखा जा रहा है। जिससे यह सिद्धान्त स्पष्ट ज्ञात होगा। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में भी इसका पाठ आया है।

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः।
जीवम व्रातं सचेमहि।।

(ऋ० १०-५७-५, यजु० ३-५५)

मैं पुनःपुनः माता-पिता को प्राप्त करूं, दिव्यजन होकर जीव के विग्रह को प्राप्त करूं। गीता (४-९) में भी दिव्य जीवन की बात कही गयी है:- 'जन्मकर्म च मे दिव्यम्' आदि श्लोक में नारायण के दिव्य पुनर्जन्म की कथाएं अनादि काल से ही प्रसिद्ध हैं। अन्तर केवल इतना है कि जीव अविद्या में है ईश्वर अविद्या से मुक्त है। बार-बार जन्म दोनों के होते हैं।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि च तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४-५)

हे अर्जुन! हमारे और तुम्हारे बहुत-से जन्म व्यतीत हो चुके हैं, उन सबको मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते। (क्योंकि मैं विद्यातत्व से युक्त हूँ और तुम अविद्या में हो।)

यह क्षत्रियों का ही सिद्धान्त है, यह कथन सर्वथा अयुक्त है। कठोपनिषद्, मुंडक आदि उपनिषदों में क्षत्रियों एवं कैपिटलिस्टों का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें पुनर्जन्म के सिद्धान्त स्पष्ट रूप से बताये गये हैं वास्तव में यह एक पूर्ण सत्य है, जिसका किसी वर्ग विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जीव का स्वरूप और पुनर्जन्म-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

(ऋ० १-१६४-२०, मुण्डक ३-१-१)

दो पक्षी एक वृक्ष पर बैठे हुए हैं। एक वृक्ष के स्वादिष्ट फलों को खा रहा है, दूसरा केवल साक्षी रूप से देख रहा है, इस मन्त्र में ईश्वर एवं जीव का स्वरूप बताया गया है, राग द्वेषमय अविद्या के साथ अध्यास होकर अहं मम के अभिमान से जीव सांसारिक सुख-दु:खों में बंधा हुआ है व्यवहार कब से हुआ, इसके आरम्भ का ज्ञान न होने से इसे अनादि बताया गया है :-

'नान्तो ननादिर्न च संप्रतिष्ठा।' (कठ० १-२-५)

बार-बार रागद्वेषात्मक कर्मफलों में आसक्त रहने से जीव जन्म मरण के चक्र में पड़े रहकर हमारे वश में रहते हैं। जो लोग सात्त्विककर्म करते है उन्हें ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है। राजस लोग

मध्यम गतिवाले है तथा तामस लोग जघन्य योनियों को प्राप्त होते है। छान्दोग्योपनिषद् में पञ्चाग्नि विद्यारूप से यह विषय बताया गया है। यदि पुनर्जन्म नहीं माना जावेगा तो सांसारिक व्यवस्था सम-विषम रूप से जो चल रही है, उसका कोई ठीक समाधान हो नही सकता। किसी भी भौतिक उपाय से यह असम्भव है। संसार में जहां कहीं विषय चल रहा है, वहां भी स्वाभाविक भेदभाव विद्यमान है, क्योंकि भेद ही सृष्टि का आधार है। भेद के निवृत्त होने पर सृष्टि नहीं रहेगी। पुनर्जन्म न माननेवालों के सामने अकृतस्यागम कृतप्रणाशनामक दोष पूर्व के विद्वानों ने रखा है, जिसका अर्थ यह है कि यदि पुनर्जन्म न माना जायेगा तो जो कुछ मनुष्य को इस जीवन में मिल रहा है वह बिना किये हुए ही है। कोई बुद्धिमान, कोई मूर्ख, कोई धनी, कोई गरीब, कोई महात्मा, कोई दुष्ट आदि भेदों को समाधान नहीं होगा। वर्तमान में जो महात्मा शुभ कार्य कर रहे हैं, अधर्मी, पापी जो पाप करते हैं, उसका फल उन्हें नहीं मिलेगा, क्योंकि मरने के पश्चात् फिर जन्म न होने से दोनों एक से ही होंगे। इस अव्यवस्था को सुलझाने का उपाय पुनर्जन्म है। यह अभिप्राय उक्त युक्ति का है।

आगम के अनुसार जीव का स्वरूप

'न जायते म्रियते वा कदाचित्' - इस गीता वाक्य (२-२२) से आत्मा की उत्पत्ति एवं मरण का निषेध किया गया है। इस पर यह प्रश्न होता है 'तो फिर जन्म-मरण किसका है?' इसके लिए यह अङ्गीकार किया गया है कि

जन्म-मरण जीवात्मा का है। वास्तव में जीव भी जन्म-मरण से रहित ही है। कर्म फल भोगने के लिए शरीरों का ही जन्म-मरण होता है, तथापि शरीर से सम्बन्ध होने से आत्मा में गौण रूप में जीवन-मरण स्वीकार किया गया है। इसके आविर्भाव का सिद्धान्त इस प्रकार बताया गया है। सहस्रार के ऊर्ध्व भाग में निर्वाण-शक्ति का ध्यान योगी करते हैं, शिवशक्ति सामरस्य भाव में आनन्द बिन्दु का आविर्भाव इसी शक्ति से होता है। जिसे इस प्रकार कहा गया है:-

ज्वलदग्नेर्यथा देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
तस्याश्च्यु तं परं बिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि॥
तदैव सहसा देवि संज्ञा युक्तो भवत्यपि।

जैसे प्रज्वलित अग्नि से छोटे-छोटे अग्निकण स्फुरित होते हैं जो प्रकार उस परमानन्द स्वरूपिणी से जीवकण उत्पन्न हुए। अविद्या में प्रतिफलित होने से उसके तमो अंश से आनन्दांश तिरोहित हो गया है। उसे (आनन्द) प्राप्त करने के लिए यह जीव सर्वदा लालयित रहता है। यथार्थ ज्ञान होने पर ही उसे प्राप्त कर सकता है। जब तक अद्वैत ज्ञान नहीं प्राप्त करता, तब तक पुनर्जन्म का चक्र चलता ही रहता है।

तदेतत्सत्यं तथा सुदीप्तात् पावकाद्
विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावा,
प्रजायन्ते तत्र नैवापियन्ति॥

(मु० २-१-१)

'हे प्रिय! यह केवल परम सत्य ब्रह्मतत्त्व है। उसीसे अनेक भाव प्रकट होकर पुनः उसी में लय हो जाते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि से अनेक चिनगारियां प्रकट होकर उसीमें समा जाती है।'

उपसंहार

संक्षिप्त रूप में पुनर्जनम के उपयोगी सिद्धान्तों का परिचय दिया गया है। विस्तृत रूप में पुराण ग्रन्थों में जो अनेक लोक-लोकान्तरों का वर्णन मिलता है, वह भी पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के ही आधार पर है। शुभ कर्म, उपासना, योग के द्वारा इन्हें जीवात्मा अपनी योग्यता के अनुसार प्राप्त करता है। दक्षिणायन एवं उत्तरायण गति का वर्णन भी इसी से भी सम्बन्ध रखता है। इन दोनों गतियों से भिन्न सगुण ब्रह्मलोक की प्राप्ति के भी सिद्धान्त हैं, जिन्हें जानकर सगुण ब्रह्मलोक प्राप्त करके अपने वास्तविक आनन्दरूप को प्राप्त कर सर्वदा के लिये सांसारिक दुःखों से जीव छूट जाता है। यही इस जीवन का लक्ष्य है। निराकार ब्रह्म की प्राप्ति भी, जिसे अद्वैत बोध रूप से बताया गया है। उसके लिये किसी लोक-लोकान्तर की अपेक्षा नहीं हैं।

॥ ॐ शम् ॥

२६. श्री सूर्यदेव का विवेचन

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवोयाति भुवनानि पश्यन्॥

(ऋग्वेद १।३५।२)

यह वैदिक मन्त्र भगवान सूर्य की पूजा में विनियुक्त है इसमें उनके धाम एवं स्थिति का वर्णन है। कृष्ण वर्ण रजोगुण के द्वारा वे संसार में अमृत और मरण दोनों के नियामक हैं हिरण्यरूप रथ के ऊपर बैठे हुये ऐसे सविता (देव) सब जगत् के प्रेक्षक एवं प्रेरक हैं। चौदह भुवनों को देखते हुये वे अपना व्यवहार कार्य कर रहे हैं। विद्वानों की मान्यता है कि काल का नियमन चन्द्र और सूर्य दोनों के द्वारा हो रहा है, सूर्य दिन के स्वामी तथा चद्रंमा रात्रि विशेषकर तिथि नक्षत्रों के स्वामी हैं। तिथियाँ सोलह हैं ये ही चन्द्रमा की षोडश कलाएँ हैं। सूर्य की द्वादश कलायें है जिनसे सौरपथ के बारह मास निर्मित होते हैं। प्रत्येक मास में कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष आते हैं। स्वरोदयशास्त्र में भी कृष्ण पक्ष सूर्य का और शुक्ल पक्ष चन्द्रमा का माना गया है। मन्त्र में जो 'आकृष्णेन' पद आया है उससे यह स्पष्ट होती है। योग शास्त्र में इडा-पिंगला जो दो नाड़ियाँ हैं, उनमें इडा चन्द्रमा की तथा पिङ्गला सूर्य की नाड़ी मानी गई है। नियमानुसार इन्हीं दो नाड़ियों में पांचों तत्वों का प्रवाह होता है। आनन्द और क्रिया के अधिष्ठान चन्द्र है ज्ञान के अधिष्ठान सूर्य है इन्हीं सूर्य के ध्यान में-

आदित्यं सर्वकर्त्तारं कलाद्वादशसंयुतम्।
पद्महस्तद्वयं वन्दे सर्वलोकैकभास्करम्॥

इत्यादि श्लोक कहे हैं, जो मन्त्रार्थ को स्पष्ट करते हैं इसलिये महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन के विभूति पाद, २६ में 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' सूर्य में संयम करने से भवनों का ज्ञान होता है। कहा है। यह मन्त्र में आये 'भुवनानि पश्यन्' पद को स्पष्ट करता है। सत्ताइस नक्षत्र, बारह राशियाँ और नवग्रह ये सब काल तत्व के सूचक हैं इनमें सूर्य प्रधान हैं। काल-तत्व इन्हीं के द्वारा नियमन करता है। भगवान सूर्य के दैविक पक्ष का यह परिचय हैं।

सूर्यआत्माजगतस्तुस्थुषश्च-सम्पूर्ण चराचर जगत् की आत्मा सूर्य है आध्यात्मिक पक्ष में जिसे साधना मार्ग में परालिङ्ग कहते हैं शिव का सर्वोत्कृष्ट रूप है इसमें शिव और विष्णु का अभेद रूप है। इसी को उपनिषदों तथा पुराणों में विष्णु का परम पद कहा है- 'तद् विष्णोः परमं पदम्' जब वही परमतत्व भक्तों की रक्षा, धर्म की स्थापना और दृष्टों के दमनार्थ चन्द्र मण्डल से आविर्भूत होता है तब उसे श्री कृष्ण कहते है सूर्य मण्डल से प्रकट होने वाला यही परम तत्व श्रीरामचन्द्र हैं। तंत्रसाधना में ऐसा माना जाता है कि चन्द्र मण्डल से आविर्भूत होनेवाला परमतत्व आनन्द भैरव हैं, सूर्य मण्डल से प्रकट होने वाले शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंग हैं, अग्निमण्डल की सप्तजिह्वाएँ हैं। इसका मुण्डकोपनिषद् में इस प्रकार वर्णन है-

काली कराली च मनोजवा च,
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
विस्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी,
लोलायमाना इति सप्त जिह्वा।। (२/४)

इनसे प्रकट होने वाले सप्त भैरव हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं- भैरव, फट्कार भैरव, षट्चक्र भैरव, एकात्म भैरव, हविर्भक्ष्य भैरव, चण्ड भैरव और भ्रमर भास्कर भैरव। महात्मा तुलसीदास ने रामायण में श्री रामजी एवं शिवजी का अभेद सम्बन्ध प्रतिपादन किया इसका पुराणों में भी स्पष्ट रूप से वर्णन आया है मंत्र में आये अमृत पद से उक्त आध्यात्मिक स्वरूप और मर्त्यपद से सारे संसार का जीवन-मरण स्वभावतः स्पष्ट है तान्त्रिक साधना में इसी परमतत्व को इसी प्रकार बताया गया हैं:-

चित्रभानु शशिभानु पूर्वकाः
त्रित्रिकेण नियतेषु वस्तुषु।
तत्तदात्मकतया विमर्शनं
तत्समष्टिगुरुपादुका जपः।।

(चिद्विलास २)

अग्नि, चन्द्र, सूर्य से ही त्रिबिन्दु प्रत्येक तत्व एवं पदार्थ में विद्यमान हैं इन तीनों का समष्टि रूप ही परब्रह्म स्वरूप गुरु का स्मरण है। चन्द्र-बिन्दु से श्री राम तथा अग्नि बिन्दु से श्री परशुराम के अवतार माने गये हैं। तीनों की एकता उस परमतत्व में बताई गई है इनका आराधन करने से जीव का सर्वप्रकार का कल्याण होता है। शब्द ब्रह्म का आविर्भाव भी उक्त तीनों मण्डलों से हुआ है। चन्द्रमण्डल से षोडशस्वर, सूर्य मण्डल से चौबीस व्यञ्जन तथा अग्नि मण्डल से आठ वर्ण तक आविर्भूत हुए हैं। मवर्ण बिन्दु स्थानीय है इसी शब्द ब्रह्म

से समस्त व्यावहारिक ज्ञान होता है। गीता (१५-१२) में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है-

यदादित्यगतं तेजो जगद्भास्यतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि में तेज है, वह मैं हूँ। वह मेरा ही स्वरूप है। (वस्तुतः सभी तेजस्वी पदार्थ उसीके तेज से अनुप्राणित हैं) 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' (म.पु.) मानसिक और बाह्य दोनों रोगों की निवृत्ति भगवान सूर्य की उपासना से हो जाती है। भगवान के अनेक और भी रहस्य हैं, जो साधना करने वालों को व्यक्त हो जाते हैं। अतः सूर्याराधन आवश्यक कर्तव्य है।

॥ ॐ शम् ॥

३०. गणेश विज्ञान

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठं राजां ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत, आनः श्रृण्वन्नूतिभिसीदनसीदम्॥

शब्दार्थ - हे गणपति, आपका हम स्वकार्य सिद्धि हेतु आव्हान करते हैं। आप सबकी प्रार्थना सुनने वाले हैं जितने संसार के गण हैं उनके आप सवामी हैं। विद्वानों के भी आप विद्वान हैं, आप सब ब्रह्म वेत्ताओं में ज्येष्ठ हैं आप हमारे हृदय रूपी आसन में आकर विराजमान हों।

व्याख्या

भगवान गजानन की मान्यता भारत वर्ष में बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। स्मार्त उपासना में भी गणेश की गणना की जाती है। यजुर्वेद में भी 'गणनान्त्वा गणपतिं हवामहें' इत्यादि मंत्र में गणपति का अर्थ ग्रहण किया गया है। यद्यपि वेदभाष्यकार उव्वट महीधर ने इस मंत्र का अर्थ प्रकरणानुसार अश्व किया है तथापि यास्कमुनि के कथनानुसार तप से वेदमंत्रों के अनेक अर्थ हो जाते हैं ऐसा सिद्धान्त होने से गणपति परक अर्थ की संभावना में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। अवैदिक जैन धर्म व बौद्ध धर्म में भी गणेश की मान्यता स्वीकारकी गई है। बहुत लोगों का ऐसा सिद्धान्त है कि गणेश पूजा अनार्यो से आर्यो में आयी है यह कथन सर्वथा अप्रामाणिक है। नेपाल, तिब्बत, कम्बोडिया, चीन, जापान, मंगोल आदि देशों में भी गणेश की प्रतिमाएँ मिली हैं जिससे इस उपासना की व्यापकता सिद्ध होती है और गणेश का विज्ञान व उपासना क्रम भारतवर्ष से ही इन देशों में गया है क्योंकि मनु महाराज ने कहा है-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्व मानवाः॥
(अध्याय २, श्लोक २०)

इस देश में पैदा हुए अग्रजन्मा ब्राह्मणों के द्वारा ही संसार के सभी को देशों के लोगों ने सभ्यता का ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिए इस गणेश विज्ञान को अनार्यों के सीखने का कोई प्रमाण नहीं हैं।

गणेश विज्ञान -

महाकवि कालिदास ने ''चिद्गगन चन्द्रिका'' में गणेश जी के आविर्भाव के सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक कहा है-

क्षीरोदं पौर्णमासी शशधर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरङ्गम।
चिद्व्योमस्कारनादं रुचिविसरसद्बिन्दुंनक्त्रोर्मिमलम।
आद्यस्कन्द स्वरूपः प्रथयति सकृदोङ्कारशुन्डः क्रिया दृक्,
दन्त्यास्योऽय हठाद्यः शमयतु दुरितं शक्तिजन्मा गणेशः॥

सर्वप्रथम चिद्शक्ति से स्फुरित होता हुआ क्षीर समुद्र पौर्णमासी चन्द्र के समान जो निस्तरंग स्फुरित हो रहा है। जहाँ कि चिद्व्योम में नादतत्व का फैलाव हो रहा है, जो तेजोमयी बिन्दुमाला धारण किये हुए है, आदि शिवशिक्त का स्पन्द जिसका स्वरूप है ॐ कार रूपी शुण्ड से जिसकी क्रिया शक्ति प्रकट हो रही है दन्त जिसके मुख से निकला हुआ है शक्ति से उत्पन होने वाले जो गणेश हैं वे हमारे क्लेशों को दूर करें।

(ॐ) इस श्लोक में शब्द ब्रह्मरूप ॐ कार का आविर्भाव बताया गया है और इसी पर से श्री गणेश जी की रचना की गई है- ॐ कार का प्रथम (अगला) भाग उदर, मध्य शुण्डाकार दण्ड, ऊपर अर्द्धचन्द्र दन्त बिन्दु मोदक बताया गया है।

एक ॐकार का स्वरूप व्यापारी लोग अपनी बहियों में बनाते हैं-

(卐) इसे स्वस्तिक कहते है, यही गणेशजी के चारों हाथ हैं और यही चतुर्मुख ॐकार भी है। सिद्धान्त कौमुदी के वैदिक प्रक्रिया के ५४६८ वे सूत्र (ओम भ्यादाने में ॐकार को पाणिनि जी ने प्लुत करके बताया है जिसकी आकृति ३ है इसी प्लुत स्वर को ही गणेश जी का मूषक वाहन बताया गया है। इन्हीं बातों को लेकर श्री गणेश जी की प्रतिमा का आविष्कार किया गया है जो कि भिन्न-भिन्न रूपों में देखी जाती है। जिसका योगी लोग मूलाधार चक्र में ध्यान करते हैं जिससे समस्त योग विघ्नों का नाश होता है। पातञ्जल दर्शन के २९ वें सूत्र 'ततः प्रत्येक चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तराया भावश्च' के अनुसार ॐकार के जप से शुद्ध ब्रह्म का साक्षात्कार एवं अन्तराय (विघ्नों) का अभाव होता है। ॐकार गणेश जी का ही स्वरूप है। अस्तु गणेश जी के जप से सभी अन्तराय (विघ्न) नष्ट हो जाते हैं। विघ्नविनाशक इनका नाम प्रसिद्ध ही है। इसका पुराणों में भी अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी अन्तिम गति के समय इसका स्मरण बताया गया है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

जो पुरुष ॐऐसे इस अक्षर रूप को ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग करता है वह परमगति को प्राप्त होता है। यही ॐकार ब्रह्म नादतत्व के अन्दर वर्णों का भी अभिव्यञ्जक है जिसे तंत्रशास्त्र में मातृकाएँ कहते हैं, ये मातृकाएँ ५२ हैं।

गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनीराशि रूपिणीम्।
देवीं मंत्रमयी चैव मातृकां पीठरूपिणीम्॥

इस ५२ मातृकाओं को लघुषोढान्यास के अन्तर्गत शक्ति सहित गणेश जी को बताया गया है:-

ऐं ह्रीं श्रींअं श्रींयुक्ताय विघ्नेशाय नमः शिरसि,

ऐं ह्रीं श्रीं आं ह्रींयुक्ताय विघ्नराजाय नमः मुखवृते,

ऐं ह्रीं श्रीं इं तुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः दक्षनेत्रे,

ऐं ह्रीं श्रीं ईं शान्तियुक्ताय शिवोत्तमाय नमः वामनेत्रे,

ऐं ह्रीं श्रीं उं पुष्टियुक्ताय विघ्नहृते नमः दक्षकर्णे,

ऐं ह्रीं श्रीं ऊं सरस्वतीयुक्ताय विघ्नकर्त्रे नमः वामकर्णे,

ऐं ह्रीं श्रीं ऋं रतियुक्ताय विघ्नराजे नमः दक्षनासापुटे,

ऐं ह्रीं श्रीं ॠं मेधायुक्ताय गणनायकाय नमः वाम नासापुटे

ऐं ह्रीं श्रीं लृं कांतियुक्ताय एकदन्ताय नमः दक्षगण्डे,

ऐं ह्लीं श्रीं ॡं कामिनीयुक्ताय द्विदन्ताय नमः वामगण्डे,

ऐं ह्लीं श्रीं एं मोहिनीयुक्ताय गजवक्त्राय नमः ऊर्ध्वोष्ठे,

ऐं ह्लीं श्रीं ऐं जटायुक्ताय निरञ्जनाय नमः अधरोष्ठे,

ऐं ह्लीं श्रीं ओं तीव्रायुक्ताय कपर्दभृते नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ,

ऐं ह्लीं श्रींऔं ज्वालिनियुक्ताय दीर्घ मुखाय नमः अधोदन्तपंक्तौ,

ऐं ह्लीं श्रीं अं नन्दायुक्ताय शंकुकर्णाय नमः जिव्हाग्रे,

ऐं ह्लीं श्रीं अः सुरसायुक्ताय वृषध्वजाय नमः कण्ठे,

ऐं ह्लीं श्रीं कं कामरूपिणीयुक्ताय गणनाथाय नमः दक्षबाहुमूले,

ऐं ह्लीं श्रीं खं सुभ्रुयुक्ताय गजेन्द्राय नमः दक्षकूर्परे,

ऐं ह्लीं श्रीं गं जापिनीयुक्ताय शूर्पकर्णाय नमः दक्षमणिबन्धे,

ऐं ह्लीं श्रीं घं सत्यायुक्ताय त्रिलोचनाय नमः दक्षकरांगुलिमूले,

ऐं ह्लीं श्रीं ङं विघ्नेशीयुक्ताय लम्बोदराय नमः दक्षकरांगुल्यग्रे,

ऐं ह्लीं श्रीं चं सुरूपायुक्ताय महानादाय नमः वामबाहुमूले,

ऐं ह्लीं श्रीं छं कामदायुक्ताय चतुर्मूर्तये नमः वामकूर्परे,

ऐं ह्लीं श्रीं जं मदविव्हलायुक्ताय सदाशिवाय नमः वाममणिबन्धे,

ऐं ह्लीं श्रीं झं विकटायुक्ताय आमोदाय नमः वामकरांगुल्यग्रे,

ऐं ह्लीं श्रीं ञं पूर्णायुक्ताय दुर्मुखाय नमः वामकरांगुल्यग्रे,

ऐं ह्लीं श्रीं टं भूतिदायुक्ताय सुमुखाय नमः दक्षोरुमूले,

ऐं ह्रीं श्रीं ठं भूमिक्ताय प्रमोदाय नमः दक्षजानुनि,

ऐं ह्रीं श्रीं डं शक्तीयुक्ताय एकपादाय नमः दक्षगुल्फे,

ऐं ह्रीं श्रीं ढं रमायुक्ताय द्विजिव्हाय नमः दक्षपादांगुलिमूले,

ऐं ह्रीं श्रीं णं मानुषी युक्ताय शूराय नमः दक्षपादांगुल्यग्रे,

ऐं ह्रीं श्रीं तं मकरध्वजायुक्ताय वीराय नमः वामोरुमूले,

ऐं ह्रीं श्रीं थं वारिणीयुक्ताय षण्मुखाय नमः वामजानुनि,

ऐं ह्रीं श्रीं दं भ्रकुटीयुक्ताय वरदाय नमः वामगुल्फे,

ऐं ह्रीं श्रीं धं लज्जायुक्ताय वामदेवाय नमः वामपादांगुलिमूले,

ऐं ह्रीं श्रीं नं दीर्घघोणायुक्ताय वक्रतुण्डाय नमः वामपादांगुल्यग्रे,

ऐं ह्रीं श्रीं पं धनुर्धरायुक्ताय द्विरण्डकाय नमः दक्षपार्श्वे,

ऐं ह्रीं श्रीं फं यामिनीयुक्ताय सेनान्ये नमः वामपार्श्वे,

ऐं ह्रीं श्रीं बं रात्रियुक्ताय ग्रामण्ये नमः पृष्ठे,

ऐं ह्रीं श्रीं भं चन्दिगकायुक्ताय मक्ताय नमः नाभौ,

ऐं ह्रीं श्रीं मं शशिप्रभायुक्ताय विमत्ताय नमः जठरे,

ऐं ह्रीं श्रीं यं लोलायुक्ताय मत्तवाहनाय नमः हृदये,

ऐं ह्रीं श्रीं रं चपलायुक्ताय जठिने नमः दक्षस्कन्धे,

ऐं ह्रीं श्रीं लं ऋध्युक्ताय मुण्डिने नमः गलपृष्ठे,

ऐं ह्रीं श्रीं वं दुर्भगायुक्त खड्गिने नमः वामस्कन्धे,

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः हृदयादि दक्षकरांगुल्यन्तम्,

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः हृदयादि वामकरांगुल्यन्तम्,

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्षप्रियाय नमः हृदयादि वामपादांगुल्यन्तम्,

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः हृदयादि वामपादांगुल्यन्तम्,

ऐं ह्रीं श्रीं ळं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः हृदयादि गुह्यान्तम्,

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः हृदयादि मूर्धान्तम,

इस प्रकार शब्द ब्रह्म ॐकार (श्री गणेश स्वरूप) का मातृकाओं के साथ विस्तार किया गया है इन्हीं के योग से अनेक स्तोत्र, मन्त्रों का अविर्भाव तन्त्र ग्रन्थों में किया गया है जिससे अनेक प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण में बताया गया है। गणेश अथर्वशीर्ष ग्रन्थ भी गणपतितत्व को बताता है उपनिषद ग्रन्थों में भी इस तत्व का विचार किया गया है।

।। ॐ नमों गणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवो नमोनमः।।

३१. शान्ति प्रार्थना

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष $^0U^0$ शान्तिः पृथिवी,
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति
वनस्पतयः शान्तिर्विशवेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म
शान्तिः सर्व $^0U^0$ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः,
सामा शान्तिरेधि॥ (यजु०आ०३३।१७)

शब्दार्थ - द्यौ लोक शान्त हो, अन्तरिक्ष भी शान्त हो, पृथ्वी शान्त हो, जल शान्त हो, औषधि, वनस्पति सभी देव शान्त हो, वेदत्रयो अथवा परब्रह्म शान्त हो, वह स्वरूप वाली शान्ति भी शान्त हो और हमें वह शान्ति प्राप्त हो.

व्याख्या

क्रिया का अधिकार जब तक चलता रहता है तब तक मनुष्य व्यस्त एवं व्यग्र रहता है इस अवस्था में एकाग्रता न होने से शान्ति उससे दूर रहती है। बिना शान्ति के जीवन अधूरा है इसलिये गीता में कहा गया है-- उच्च पद पर आरूढ़ होने के लिये कर्म योग की आवश्यकता है और कर्म मार्ग पर आरूढ़ होने पर शम या शांति की कारणता है। शांति आनन्द या सुख को व्यक्त करती है अतः सभी को इसकी आवश्यकता है क्योंकि सभी शान्ति को चाहते हैं- 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' मन्त्र में जड़-चेतन सम्बन्धी दोनों प्रकार की शान्ति कहीं गई है क्योंकि मनुष्य को सभी प्रकार की शान्ति की आवश्यकता है इसके सम्पन्न होने पर ही पूर्ण सुख की प्राप्ति है। द्यौ प्रकाशपूर्ण वह लोक है जहाँ सूर्य का उदय होता, अन्तरिक्ष लोक वह है जहां नक्षत्रों का प्रकाश होता हैं, पृथ्वी लोक

जिस पर हम सब चलते-फिरते हैं और जीवनपयोगी सभी कार्य का जो सम्पादक है। इन तीनों लोकों से हमें शांति मिले। दैविक तथा भौतिक अशान्ति से हमें जो अनेक प्रकार की अशान्ति होती है उसका निराकरण होकर पूर्ण शान्ति मिले। फल पाक होने पर जिसका अन्त हो जाता है उसे औषधि कहते हैं - गेहूँ, जौ, चना आदि वृक्ष लता गुल्मादि को वनस्पति कहते हैं ये सब शान्त हों तथा अपने गुणो द्वारा हमें पुष्टि, निरोग, स्वास्थ्य प्रदान करके शान्ति सुख के प्रदाता हों। जगत्सञ्चालन करने वाली परमात्मा की शक्तियों को देव संज्ञा दी गई हैं उनके द्वारा भी शांति प्राप्त हो, अथवा 'विद्वांसो वै देवा:' के अनुसार विद्वानों को भी देव कहते है। उनके सदुपदेशों से भी हमें शान्ति प्राप्त हो। ब्रह्मनाम वेद का है, वैदिक शान्ति देने वाले सूक्त या मंत्रों में जो अर्थ बताये गये हैं, वे हमें प्राप्त हों। ब्रह्म परमात्मा को भी कहते है। वह कृपा करके अपनी शान्ति हमें प्रदान करे सब को वह शान्ति प्राप्त हो, जो शान्ति अपने शान्ति स्वरूप से रहती हैं वह शान्ति हमें प्राप्त हो।

।। ओ३म् शान्ति:शान्ति:शान्ति ।।

राष्ट्रगुरुश्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज द्वारा रचित एवं श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

अ.क्र.	नाम		मूल्य
१.	श्री बगलामुखी रहस्यम्	संस्कृत	100=00
२.	पुरश्चरण पद्धति	हिन्दी	10=00
३.	अथर्ववेदीय ज्योतिषम्	हिन्दी टीका सहित	15=00
४.	नारदीय शिक्षा	संस्कृत टीका सहित	10=00
५.	शरभ तन्त्रम्	संस्कृत	70=00
६.	स्वरोदय विज्ञान	हिन्दी	15=00
७.	श्री मातृकाचक्र विवेक:	संस्कृत	45=00
८.	कामकला विलास	संस्कृत टीका सहित	20=00
९.	महाविद्या चतुष्टयम्	संस्कृत	25=00
१०.	तांत्रिक पंचांग		15=00
११.	वैदिक उपदेश	हिन्दी	25=00
१२.	वहबृचोपनिषद्		1=00
१३.	श्री विद्या रहस्य (चिद् विलास)	हिन्दी अ.स.	यन्त्रस्थ
१४.	वैदिक उपदेश (Vedic Updesh)	हिन्दी (अंग्रेजी अनुवाद सहित)	25=00
१५.	पञ्चोपनिषद	संस्कृत भाष्य सहित	20=00
१६.	प्रश्नोपनिषद	संस्कृत भाष्य सहित	05=00
१७.	घेरण्ड-संहिता	भाष्यानुवाद	20=00
१८.	योग-विज्ञान भाग १	हिन्दी	80=00
१९.	योग-विज्ञान भाग २	हिन्दी	यन्त्रस्थ
२०.	योग दर्शन	संस्कृत	10=00

अ.क्र नाम		मूल्य
२१. शिवसूत्रं भक्तिसूत्रंश्च	संस्कृत	10=00
२२. शिव सूत्रं एवं स्पन्दकारिका	हिन्दी अनु. सं.	8=00
२३. वातूलनाथ सूत्र	अनु. सं.	यन्त्रस्थ
२४. प्रत्यभिज्ञाहृदय		8=00
२५. सिद्धांत रहस्य	संस्कृत	10=00
२६. सिद्धांत रहस्य	मराठी	15=00
२७. श्री महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति	संस्कृत	50=00
२८. त्रिपुरा महिम्न स्तोत्रम्	हिन्दी	20=00
२९. लेख-संग्रह	हिन्दी	50=00
३०. सौन्दर्य लहरी (डिण्डिम भाष्य)	संस्कृत	20=00
३१. श्री विद्यारत्न सूत्रम्	संस्कृत	30=00
३२. वेदान्त प्रबोध	संस्कृत हिन्दी	15=00
३३. ईश्वर गीता		20=00
३४. सप्तविंशति रहस्य	संस्कृत हिन्दी	25=00
३५. सिद्धांत रहस्य	हिन्दी	18=00
३६. ताराकर्पूर राजस्तोत्रम्	संस्कृत	---
३७. छिन्नमस्ता नित्यार्चन	संस्कृत हिन्दी	20=00
३८. रेणुकातंत्रम्	संस्कृत	20=00
३९. परश्चरण	हिन्दी	5=00
४०. पंचस्तवी	संस्कृत	5=00
४१. पराप्रवेशिका	संस्कृत हिन्दी	---
४२. माण्डूक्योपनिषद्	संस्कृत हिन्दी	यन्त्रस्थ
४३. केनोपनिषद्	संस्कृत हिन्दी	,,

अ.क्र नाम		मूल्य
४४. ईशावास्योपनिषद्	संस्कृत हिन्दी	यन्त्रस्थ
४५. कठोपनिषद्	संस्कृत हिन्दी	,,
४६. माण्डकोपनिषद्	संस्कृत हिन्दी	,,
४७. सिद्धांत रहस्य	अंग्रेजी	,,
४८. ललिता सहस्त्रनाम स्तोत्रम्	(सौभाग्य भास्कर भाष्य)	---
४९. भैरव विज्ञान		30=00
५०. प्रश्नोपनिषद्	हिन्दी	यन्त्रस्थ
५१. लेख संग्रह	(अंग्रेजी अनुवाद)	40=00
५२. देवी सहस्त्रनाम संग्रह भाग १		20=00
५३. श्री स्वामी स्मृति ग्रन्थ (श्रद्धा खण्ड)		75=00
५४. निगमागम समन्वय	हिन्दी	20=00
५५. लघुस्तवराजः	हिन्दी संस्कृत	यन्त्रस्थ
५६. गुरूतत्त्व एवं गुरूपादुका पंचक	हिन्दी संस्कृत	25=00
५७. तीर्थ भारतम्	पद्य	20=00
५८. प्रश्नोपनिषद्	अंग्रेजी	10=00
५९. ज्योतिष तत्त्व विवेक	हिन्दी	---
६०. योगदर्शनम्	संस्कृत, अंग्रेजी	10=00
६१. शाक्त तंत्र साधना		100=00

सूचना : आवश्यकता होने पर मूल्य बढ़ाये जा सकते है।

श्री पीताम्बरा पीठ

ह्लीं

दतिया (म.प्र.)